॥ श्रीहरि: ॥

व्यवहार-शास्त्र

पहला खंड

लेखक

पं० रामानुग्रह शर्मा व्यास (कथावाचक)

अखिल-भारतवर्षीय सनातन-धर्म-महासभा (हिन्दूविश्वविद्यालय)

काशी के धर्मोपदेशक तथा संस्थापक राम वेद-विद्यालय (काशी)]

प्रकाशक

'राम'-कार्यालय, लंका, काशी

आवृत्ति १०००] सं० १९८९ वि० [मू० १)

प्रकाशक—

लक्ष्मण चौबे

'राम'-कार्यालय

पो० लंका, बनारस-सिटी

'राम'-कार्यालय की अन्य पुस्तकें

१—वर्तमान संसार (पद्य-बद्ध) १)

२—हनुमच्चरित्र (गद्य) १)

३—मोतियों की लड़ी (गद्य-पद्य) ।=)

४—त्रेता के दो वीर (पद्य) ≡)

५—माला फूल (पद्य) ॥)

६—मधुर वीणा (गायन) =)

७—करुण क्रन्दन (गायन) -)।

८—आदर्श जीवन (गद्य) ॥)

९—व्यवहार-शास्त्र (दूसरा खंड) १)

मुद्रक

बजरंगबली 'विशारद'

श्रीसीताराम प्रेस, जालिपादेवी, काशी

महामना माननीय महर्षि
पं० मदनमोहन मालवीयजी महाराज

Murari Art Press Delhi

अमरकीर्त्ति,

राष्ट्र के कुशल कर्णधार,

सनातन-धर्म के प्रकांड नेता,

देश-पूज्य, त्याग-मूर्त्ति, महामना,

माननीय महर्षि

श्रद्धेय पं० मदनमोहन मालवीयजी

के

यशोधन कर-कमलों में

सादर सविनय

समर्पित

विनीत

'रामानुग्रह'

दो शब्द

सुप्रसिद्ध कथावाचक पंडित रामानुग्रह शर्मा व्यास की इस पुस्तक को पढ़कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। अभी तक हिन्दी में ऐसी कोई पुस्तक मेरे देखने में नहीं आई। इस समय तो यह अपने ढंग की अकेली ही पुस्तक है। इस समय हमारे देश की जनता के लिये ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता है। सन्तोष की बात है कि व्यासजी इसका दूसरा और तीसरा खंड भी प्रकाशित करनेवाले हैं। विशेषतः गाँवों में इस पुस्तक का भली भाँति प्रचार होना चाहिये। आशा है कि हिन्दी-संसार की ओर से भी व्यासजी को पर्याप्त प्रोत्साहन प्राप्त होगा।

व्यासजी 'बलिया' जिले के निवासी हैं। ग्रामवासी होने के कारण ग्रामीणों के साथ आपकी बड़ी सच्ची सहानुभूति है। आपकी यह पुस्तक देखने से पता लगता है कि आपको ग्रामवासियों के अभावों का विशेष अनुभव है। ग्रामवासियों के हितार्थ आपने जितनी सामग्री इस पुस्तक में संकलित की है, सब बड़े काम की है। आशा है कि आगे के खंडों में अन्य आवश्यक विषयों का भी समावेश हो जायगा।

हिन्दी-पत्र-पत्रिकाओं में बहुत-से ऐसे उपयोगी लेख छपा करते हैं, जिनका अगर सदुपयोग किया जाय, तो जनता का विशेष उपकार हो सकता है। इस पुस्तक में इसका यथेष्ट प्रमाण मिलेगा। इसमें अनेक उपयोगी विचारों का एकत्र संकलन करके

व्यासजी ने बिखरे हुए रत्नों की ऐसी सुन्दर माला गूँथ दी है कि जो इसे धारण करेगा वही श्रीसम्पन्न हो जायगा। मैं व्यासजी की मधुपवृत्ति की प्रशंसा करता हूँ। ईश्वर की कृपा से यदि इस धर्मप्राण देश के कथावाचकों की मनोवृत्ति ऐसी ही हो जाय, तो राष्ट्रीय नेताओं का कार्य-भार बहुत हल्का हो सकता है।

व्यासजी से मेरा परिचय सन् १९१८ में हुआ था। उस समय मैं आरा (शाहाबाद, विहार) के टाउन-स्कूल में हिन्दी-शिक्षक था। व्यासजी ने अपनी ओजस्विनी कथा के प्रताप से आरा नगर और उसके आसपास के देहातों में बड़ी जागृति फैला दी थी। मैं उस समय नगर-सेवा-समिति का संयुक्त मन्त्री भी था। मुझे व्यासजी की कथाओं और जलूसो में प्रायः स्वयं-सेवकों की नियुक्ति करनी पड़ती थी। इसी व्याज से हमलोगों का परस्परपरिचय हुआ। व्यासजी के उद्योग और सहयोग से नगर में एक 'जिला-सुधार-सभा' स्थापित हुई। उसमें भी मुझे व्यासजी के साथ जन-सेवा का कुछ अवसर मिला था। उसी समय व्यासजी ने अपनी एक पुस्तक मुझे दिखलाई थी। मैंने उसे लोकोपयोगी समझकर प्रकाशित करने का अनुरोध किया। किन्तु कालचक्र के प्रभाव से वह आज तक रुकी पड़ी रही। आज उसे इस रूप में देखकर अत्यन्त सन्तोष हो रहा है। व्यासजी का अभीष्ट सिद्ध हो, यही ईश्वर से प्रार्थना है।

काशी
दीपावली १९८९ }

शिवपूजनसहाय

पं० रामानुग्रह शर्मा, व्यास धर्मोपदेशक ।

आवश्यक वक्तव्य

अशरण-शरण, दुखहरण, जिनकी शक्ति अगम अनन्त है।
जिस भक्तवत्सल ईश का गुणगान करते सन्त हैं॥
है कमल-नयन विशाल भुज घनधाम तन अभिराम है।
मम प्रेममय श्रीराम को नित कोटि-कोटि प्रणाम है॥

पाठको! मैं अपने जिन विचारों को बहुत दिनों से आपकी सेवा में उपस्थित करना चाहता था, वे आज इस पुस्तक के रूप में आपके सामने वर्तमान हैं। ये विचार बरसों से मेरे हृदय के अन्दर पलते रहे हैं, और आज इन्हें आपकी सेवा में नियुक्त करके मैं आपसे कुछ नम्र निवेदन करना चाहता हूँ।

पहला निवेदन यह है कि इस पुस्तक में लिखी हुई बातों को केवल पढ़कर ही न छोड़ दीजियेगा, इनपर अमल करने की कोशिश कीजियेगा। मुझे विश्वास है कि आप यदि धैर्य और शान्ति से काम लेंगे, तो अवश्य ही इन बातों को कार्य-रूप में परिणत कर सकेंगे।

दूसरा निवेदन यह है कि इस पुस्तक को पढ़ते समय इस बात का भी ध्यान रखियेगा कि संसार दिन-दिन नया होता जा रहा है और हर बात में वह बड़ी तेजी से आगे पाँव बढ़ा रहा है; इसलिये अब कालचक्र के प्रभाव से पिछली पीढ़ी की बहुत-सी पुरानी बातें बदलती जा रही हैं और संसार की गति के साथ

क़दम न मिलाने से तात्कालिक सफलता की घुड़दौड़ में पिछड़ जाना पड़ता है। अब हर-एक बात को नये ढंग से कहने का, हर-एक बात पर नई शैली से विचार करने का और हर-एक काम को नये तरीके से कर दिखाने का युग आ गया है। इस समय तो कवि का यह कथन ही ध्यान देने योग्य है—

प्राचीन हों कि नवीन छोड़ो रूढ़ियाँ जो हों बुरी।
बनकर विवेकी तुम दिखाओ हंस-जैसी चातुरी॥
प्राचीन बातें ही भली हैं, यह विचार अलीक है।
जैसी अवस्था हो जहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है॥१॥
है बदलता रहता समय उसकी सभी घातें नई।
कल काम में आती नहीं हैं आज की बातें कई॥
है सिद्धिमूल यही कि जब जैसा प्रकृति का रंग हो।
तब ठीक वैसा ही हमारी कार्यकृति का ढंग हो॥२॥

तीसरा निवेदन यह है कि इस पुस्तक में प्रकट किये हुए विचारों में कुछ विचार दूसरे सज्जनों के भी हैं, जो सामयिक पत्र-पत्रिकाओं से प्रसंगानुकूल संकलित किये गये हैं। वास्तव में विचार किसी के नये नहीं होते। एक ही बात को अनेक मनुष्य अनेक प्रकार से कहते हैं। देश, जाति, समाज, धर्म आदि पर अब उससे अधिक कोई क्या कहेगा जो कुछ दादाभाई नौरोजी, लोकमान्य तिळक, स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द आदि कह गये हैं। मैंने सबके विचारों का सारांश लेकर अपने ढंग से कहने की कोशिश की है, और उसको ऐसा सुबोध बनाने का

प्रयत्न किया है कि सर्वसाधारण जनता भलीभाँति समझ जाय। वस्तुत: एक कवि के कथनानुसार—

संसार के उद्यान में मधुमक्षिका हम हैं सही।
शुभ भाव और विचार की क्यारी भली है खिल रही॥
रस-गन्धमय मधु है किया संचय इसे अपनाइये।
सुस्वाद चखकर सरस सुन्दर पुष्प-गण-गुण गाइये॥

पुनश्च—

विविध रंग के पुष्प चयन कर माली उन्हें सजाता है।
सुन्दर नेत्रसुखद सौरभमय मनहर गुच्छ बनाता है॥
उसी भाँति नाना विचार के फूलों से सजकर डाली।
ग्रहण कीजिये, लाया है, एक विश्व-वाटिका का माली॥

अब, मै उन सभी विचारक और सुधारक सज्जनों के प्रति अपनी आन्तरिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके विचार-रत्नों की ज्योति से मुझे बहुत कुछ प्रकाश मिला है। जिन लेखकों और कवियों की रचनाओं के आवश्यक एवं उपयोगी अंश इस पुस्तक में प्रकरणानुसार संकलित हुए हैं, उन्हें सादर धन्यवाद देना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। जिन पत्र-पत्रिकाओ से आव-श्यक सामग्री संकलित की गई है, उनके सुयोग्य सम्पादकों के प्रति भी मैं बहुत कृतज्ञ हूँ। विश्वास है कि ये सभी महानुभाव मुझपर उदारतापूर्वक अनुग्रह करेंगे।

सहायक ग्रन्थों और पत्र-पत्रिकाओं की नामावली यहाँ दी जाती है—कविताकौमुदी, युवकसाहित्य, पशुचिकित्सा, ग्राम-

समस्या; प्रताप, भारत, आज, अभ्युदय, स्वदेश, कर्मवीर, स्वराज्य, विश्वमित्र, गृहस्थ, किसान, सैनिक, दरिद्रनारायण, जयाजी-प्रताप, आर्यमित्र, वेंकटेश्वर-समाचार, भारतमित्र, विशालभारत, सरस्वती, माधुरी, साहित्यपत्रिका और त्यागभूमि।

अन्त में मित्रवर शिवपूजनसहाय को आन्तरिक धन्यवाद और आशीर्वाद देना नहीं भूल सकता, जिन्होंने इस पुस्तक को प्रकाशित करने के लिये विशेष अनुरोध कर और अपनी ओर से 'दो शब्द' लिखकर मुझे बहुत उत्साहित किया।

आशा है, इस पुस्तक का दूसरा खंड लेकर मैं शीघ्र ही पाठकों की सेवा में उपस्थित हो सकूँगा।

अब आइये मिलजुल करें ईश्वर-विनय इस भाव से।
जिसमें कि भारत हो समुन्नत आत्मशक्ति प्रभाव से॥
हों वीर बालक देशप्रेमी, शिक्षिता हों नारियाँ।
त्यागी प्रतापी हों युवक, खिल जायँ सुख की क्यारियाँ॥

'राम'-कार्यालय, काशी
कार्त्तिक पूर्णिमा, १९८९

रामानुग्रह शर्मा व्यास
(कथावाचक)

'रहीम' के उपदेशप्रद दोहे

कदली, सीप, भुजंग-मुख, स्वाति एक गुन तीन।
जैसी संगति बैठिए, तैसोई फल दीन॥

काज परे कछु और है, काज सरे कछु और।
रहिमन भँवरी के भए, नदी सिरावत मौर॥

काम न काहू आवई, मोल रहीम न लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ॥

कैसे निबहैं निबल जन, करि सबलन सों गैर।
रहिमन बसि सागर विषे, करत मगर सों बैर॥

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गंग नाम भो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गए रहीम॥

खैर, खून, खाँसी, खुसी, बैर, प्रीति, मदपान।
रहिमन दाबे ना दबैं, जानत सकल जहान॥

गरज आपनी आपसों, रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुलबधू पर-घर जात लजाय॥

गुन तें लेत रहीम जन, सलिल कूप ते काढ़ि।
कूपहु ते कहुँ होत है, मन काहू को बाढ़ि॥

छिमा बड़न को चाहिए, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात॥

जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्त न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिँ न हित होय॥

जिहि अंचल दीपक दुरयो, हन्यो सो ताही गात।
रहिमन असमय के परे, मित्र सत्रु ह्वै जात॥

जे गरीब पर-हित करैं, ते रहीम बड़ लोग।
कहाँ सुदामा बापुरो, कृष्ण-मिताई जोग॥

जैसी जाकी बुद्धि है, तैसी कहै बनाय।
ताको बुरो न मानिये, लैन कहाँ सूँ जाय॥

जैसी परै सो सहि रहे, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह॥

जो बड़ेन को लघु कहे, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिं॥

जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग।
चंदन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग॥

जो रहीम गति दीप की, सुत सपूत की सोय।
बढ़े उजेरो तेहि रहे, गए अँधेरो होय॥

जो रहीम मन हाथ है, तो तन कहुँ किन जाहि।
जल में जो छाया परे, काया भीजति नाहिं॥

तरुवर फल नहिं खात हैं, सरवर पियहिं न पान।
कहि रहीम पर-काज-हित, संपति सँचहिं सुजान॥

थोथे बादर क्वार के, ज्यों रहीम घहरात।
धनी पुरुष निर्धन भये, करैं पाछिली बात॥

दादुर, मोर, किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
रहिमन चातक रटनि हू, सरवर को कोउ नाहिं॥
दीन सबन को लखत है, दीनहिं लखै न कोय।
जो रहीम दीनहिं लखै, दीनबंधु सम होय॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि॥
दोनों रहिमन एक से, जौ लौं बोलत नाहिं।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु बसंत के माँहिं॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पिअत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पिआसो जाय॥
धूर धरत नित सीस पै, कहु रहीम केहि काज।
जेहि रज मुनिपत्नी तरी, सो ढूँढ़त गजराज॥
नाद रीझि तन देत मृग, नर धन हेत समेत।
ते रहीम पसु तें अधिक, रीझेहु कछू न देत॥
बड़े दीन को दुख सुने, लेत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हुती, कहु रहीम पहिचानि॥
बसि कुसंग चाहत कुसल, यह रहीम जिय सोस।
महिमा घटी समुद्र की, रावन बस्यो परोस॥
बिगरी बात बनै नहीं, लाख करो किन कोय।
रहिमन फाटे दूध को, मथे न माखन होय॥

विषय-सूची

* श्रीगणेशायनमः *

व्यवहार-शास्त्र

पहला अध्याय

[आरम्भिक वक्तव्य]

ब्रह्मादि सिद्ध-मुनीन्द्र जिनका ध्यान करते प्रेम से।
जो सर्वदा निज भक्तजन को पालते हैं नेम से॥
है निष्कलंक चरित्र जिसका, 'राम' जिसका नाम है।
उस वीर राघव को हमारा कोटि-कोटि प्रणाम है॥
धन की नहीं है चाह कुछ, यश की नहीं परवाह है।
इस क्षुद्र-जीवन का तुम्हारे हाथ में निर्वाह है॥
इस दीन बालक की विनय पर हे प्रभो! तुम कान दो।
सब का करो कल्याण, मुझको प्रेम का तुम दान दो॥*

---

* साहित्य-पत्रिका

परम-पिता परमेश्वर की अनन्त कृपा से हमारा देश हिन्दुस्तान इस समय सैकड़ों साल की गहरी नींद से जाग रहा है। चारों ओर जागृति और उत्साह की धूम मची हुई है। धीरे-धीरे सब के मन में देश के कल्याण की भावना उठ रही है। शिक्षा के केन्द्र नगरो मे तो देशोन्नति और समाज-सुधार के राग सुन पड़ते ही हैं, देहातों के दूर-दूर गाँवो मे भी देश की भलाई की चर्चा सुनने मे आ रही है। पढ़े-लिखे लोग अब अपने देश की दशा पर विचार करने लगे हैं, और अपढ़ लोग भी गॉव-गॉव मे गांधीजी का गुणगान करते देखे जाते हैं। यह शुभ लक्षण है। ऐसी दशा मे प्रत्येक भारतवासी का कर्त्तव्य है कि अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार देश और समाज की भलाई के काम करे। जो लेखक है, वह अपने पवित्र विचारों को अपने देश-भाइयो के सामने रखकर उन्हे सच्चा रास्ता बतावे। जो सम्पादक है, वह दूसरे-दूसरे जगे हुए देशो की उन्नति-कहानियाँ सुनाकर लोगो में सुरुचि और उत्साह पैदा करे। जो व्याख्यान देनेवाला है, वह अपने देश-भाइयों से पुकार-पुकार कर कहता फिरे कि जागने का समय आ गया है—सब लोग उठ खड़े हो। जो पुस्तकें निकालने का रोजगार करता हो, वह ऐसी पुस्तकें छापकर प्रचार करे जिनसे लोगो मे ज्ञान का उदय हो और सब लोग मोह-मद के गढ़े से निकल पड़ें। जो धनी है, वह अपने धन को शिक्षा-प्रचार और समाज-सुधार के काम में सच्ची लगन के साथ खर्च करे। जो शरीर से खूब बलवान है, वह जगह-जगह अखाड़े खोलकर कमजोरों और

डरपोकों को बलवान और बहादुर बनावे। जो केवल घर-बैठा गृह-स्वामी है, वह परिवार के लोगों को सद्व्यवहार की शिक्षा अपने आचरण से ही दे। जो केवल पड़े-पडे अखबार पढ़ा करता है, वह गाँव के या टोले-मुहल्ले के साधारण अपढ़ लोगों को एकत्र करके उन्हें अखबार पढ़ सुनावे और देश का हाल-चाल उन्हें सरलता से समझाया करे। जो जमीन्दार और रईस हैं, वे अपने बँगले और कोठियों में बैठे-ही-बैठे अपने मातहतों और असामियों से समाज और देश की भलाई के छोटे-मोटे काम बराबर कराते रहें। जो नौजवान पट्ठे हैं, वे गाँव-घर के गरीबों और बेबसों तथा बूढ़ी-बेवाओं की मदद करने में अपने समय और शक्ति को लगा दें। जो खेतिहर-किसान हैं, वे अपने गौओं की रक्षा कर शादी-ब्याह की फजूलखर्ची से बचने की चेष्टा में चित्त दें तथा गाँव-घर की सफ़ाई पर परस्पर मिलजुलकर ऐसा ध्यान दें कि हैज़े-प्लेग से उनके परिवार को कीड़ों की मौत नसीब न हो। जो माता-पिता होने का सौभाग्य रखते हों, उन्हें चाहिए कि अपने बालकों के शरीर और मन की स्वच्छता तथा ज्ञानवृद्धि पर सर्वदा ध्यान दिये रहें: क्योंकि बालक ही देश के भविष्य और थाती पूँजी हैं। यदि उनका शरीर हट्टा-कट्टा न होगा, उन्हें अच्छी बातों की शिक्षा न मिलेगी, तो हमारी अगली पीढ़ी निकम्मी हो जायगी और आज जो हम उन्नति का महल तैयार करने में लगे हुए हैं, वह आगे चलकर ताश के महल की गति को प्राप्त हो जायगा; क्योंकि विद्वानों का यह मत है कि बालक ही हमारी उन्नति की

अटारी की नींव के मजबूत पत्थर है—उन्हें सब तरह से सम्हालना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है। इस प्रकार, देश-भर का प्रत्येक मनुष्य यदि अपने-अपने काम को सम्हालने मे तत्पर हो जाय, तो बरसों का काम सप्ताहों मे पूरा हो सकता है। विद्वानो ने स्पष्ट कहा है कि एक-एक व्यक्ति से ही समाज बनता है और अनेक समाजो के समूह से देश का निर्माण होता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपना कर्त्तव्य पालन करने मे लगा रहे तो देश और समाज के अन्दर किसी प्रकार का कष्ट नही व्याप सकता। व्यक्तियो का समूह ही देश है और व्यक्तियों के कर्त्तव्यो का समूह ही देश का कर्त्तव्य है। जिस प्रकार एक ईंट के खिसकने से पक्का महल बिखर जाता है वैसे ही एक व्यक्ति के कर्त्तव्यपालन में चूक जाने से देश और समाज का अहित हो जाता है। इसलिये हम सब भारतवासियों को एक-मन और एक-दिल होकर अपने कल्याण के साधन मे लग जाना चाहिये। हम आगे चलकर यही बतलावेंगे कि किस तरह प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों का पालन करे और दूसरों को भी अपने कर्त्तव्य पालन करने का अवसर दे। आशा है कि हमारे विचारो पर सब भाई ध्यान देंगे और जिस प्रकार हंस दूध में से पानी निकाल कर अलग कर देता और दूध को ग्रहण करता है उसी तरह आप सब भाई भी मेरे कथन के दोषों का निवारण कर केवल अपने लाभ के गुणों पर ही ध्यान देंगे।

अन्त में दयामय भगवान से यही प्रार्थना है कि—

है ईश ! तुम्हीं से रवि प्रकाश पाता है।
कृश हुआ कलाधर फिर विकाश पाता है॥
हैं तारे करुणा-विन्दु तुम्हारे प्यारे !
न्यारे न्यारे हैं खेल तुम्हारे सारे॥
रहती है जन पर सदा तुम्हारी ममता।
क्षमता अद्भुत है, नहीं कहीं भी समता।
सर्वेश ! शक्ति हो तुम्हीं शक्तिहीनों की।
गहते हो दुख में बाँह तुम्हीं दीनों की॥

दूसरा अध्याय

हमारे देश 'भारतवर्ष' की प्राचीन महिमा

जितने गुणसागर नागर हैं, कहते यह बात उजागर हैं।
अब यद्यपि दुर्बल आरत है, पर भारत के सम भारत है॥*

आज आपस के फूट और ईर्ष्या-द्वेष-कलह तथा आलस्य एवं अज्ञान के कारण हमारे देश की दशा ऐसी हीन हो गई है कि हम अपने प्राचीन गौरव को एकदम भूल ही गये हैं। किसी जाति या देश के उठने के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने पूर्वजों की ओर देखकर फिर अपनी ओर देखे और दोनों अवस्थाओं का मिलान करके आगे का कर्त्तव्य निश्चित करे। जब हम

---

* मैथिलीशरण

अपने पूर्वजो की ओर देखते हैं तो हमारी छाती फूल उठती है और गर्व से हमारा मस्तक ऊँचा हो जाता है। हमारे वेद-शास्त्र-पुराणों में जो महिमा-भरी कथाएँ हैं उन्हें दुहराने की जरूरत नहीं है, क्योंकि सत्य-वीर हरिश्चन्द्र, दया-वीर शिवि, कर्म-वीर रामचन्द्र, धर्मवीर दधीचि और ज्ञानवीर श्रीकृष्णचन्द्र के गुण-गान से हमारे देश का झोपड़ा-झोपड़ा गूँज रहा है। हमे देखना यह है कि विदेशों के विद्वान् हमारे देश के प्राचीन गौरव के बारे मे क्या विचार और मत प्रकट कर चुके हैं। अँगरेजी के भूगोलो में भारत के विषय में एक बात बड़े महत्त्व की पाई जाती है। वह यह है कि "भारतवर्ष समस्त भूमण्डल की नाभी और निचोड़ है।" हमारे गोरे शासको का कहना है कि "भारतवर्ष अँगरेजी ताज का एक जगमगाता हुआ रत्न है।" पृथ्वी का इतिहास लिखने वाले एक जगत्प्रसिद्ध विद्वान का कहना है कि "भारतवर्ष ही सारे संसार का सिरताज और जगद्गुरु है। पृथ्वी का सर्वश्रेष्ठ पर्वत हिमालय यहीं है। पृथ्वी की सब से पवित्र नदी गंगा यहीं है। पृथ्वी की सर्वश्रेष्ठ जाति ब्राह्मण इसी देश में है। पृथ्वी की आदि-वाणी वेद इसी देश मे है। पृथ्वी के महान् धर्मों का आदि-जन्मस्थान यही है।" मैक्समूलर नामक सस्कृतज्ञ विदेशी विद्वान का तो यहाँ तक कहना है कि "मनुष्यजाति के पुस्तकालय में सबसे प्राचीन ग्रन्थ वेद ही हैं। यदि हमें सम्पत्ति, शक्ति, शोभा और ज्ञान का भंडार कहीं पृथ्वी पर देख पड़ता है तो वह भारतवर्ष ही है।" फिर एक प्रोफेसर ने अपने एक इतिहास में सप्रमाण

लिखा है कि "संसार के ज्ञान और धर्म का पिता अथवा आचार्य भारतवर्ष ही है।" यूरोप के एक प्रसिद्ध विद्वान् का कथन है कि "जो सभ्यता आज सारे जगत् मे प्रकाश फैला रही है वह गंगा के तट पर ही उत्पन्न हुई थी। यदि ज्ञान-विज्ञान, धर्म, साहित्य, कविता और बल का सोता इस पृथ्वी पर कहीं से उमड़ा है तो वह निश्चय ही भारत-भूमि से ही निकल कर भूमंडल में फैला है।" इस प्रकार, सारे संसार के समझदार विद्वान् खुले दिल से इस बात को स्वीकार करते हैं कि भारत वास्तव मे जगद्गुरु है और उसकी प्राचीन महिमा के सामने सारे संसार के उन्नत देश मन्द पड़ जाते हैं। भारतधर्म-महामण्डल के प्राण स्वामी दयानन्दजी बी० ए० ने अपने "धर्मकल्पद्रुम" में ठीक ही लिखा है कि "सबने एक वाक्य होकर स्वीकार कर लिया है कि पृथ्वी भर में भारतवर्ष की ही प्रकृति सर्वथा पूर्ण है। सृष्टि की प्रथम दशा में जो पूर्ण पुरुष उत्पन्न होते हैं उन आदिपुरुष की उत्पत्ति पूर्ण-प्रकृति-युक्त भूमि में ही हो सकती है। इसलिये अब तो यह बात निस्सन्देह सिद्ध है कि आदि-सृष्टि भारतवर्ष में ही हुई थी और आर्यजाति की आदि-निवासभूमि भी भारतवर्ष ही है।

प्यारे भाइयो! अब आप लोग यह बताइये कि ऐसे प्राचीन और जगत्पूज्य देश में उत्पन्न होकर भी आप हतोत्साह क्यों हो रहे हैं? क्या आपकी नसों में अपने देश के लुप्त गौरव का उद्धार करने के लिये खून नहीं खौलता? क्या आप निर्जीव हो गये हैं? क्या अपने यशस्वी पूर्वजों की प्रतिष्ठा का ध्यान छूट गया है?

क्या लंका-गढ़-विजयी 'राम' के समान प्रतापी वीर महारथी की पूजा आप कायर-कपूत रहकर कर सकते हैं? क्या महाभारत के युद्ध मे पांचजन्य-शख फूँककर वीरो के हृदय में ललकार भरनेवाले और गीता—जैसे कर्मयोगशास्त्र के आचार्य भगवान श्रीकृष्ण की पूजा आप पद-दलित और पीड़ित रहकर कर सकते हैं? क्या दिग्विजयी अर्जुन पर आपके समान आलसी भी गर्व कर सकते हैं? क्या आप वह दिन भूल ही गये जब कि आपके देश का लोहा मानकर भारतीय चक्रवर्ती नरेशों के अश्वमेधों मे देश-देशान्तर के राजा अपनी भेंट लेकर अयोध्या और इन्द्रप्रस्थ में दौड़े हुए पहुँचते थे? क्या हिन्दूकुल-सूर्य महाराणा प्रताप, महाराष्ट्र—केसरी छत्रपति शिवाजी और रण-बाँकुरे गुरुगोविन्दसिंह आदि की कहानियाँ आपकी जिह्वा पर ही रह जायेंगी या दिल के अन्दर उतरकर आपकी भुजाओं में भी खून दौडायेंगी? भाइयो, जरा होश सम्हालकर देखिये तो सही, सारा संसार आप ही लोगो की ओर देख रहा है। आज जो स्वार्थ-युद्ध और भोग-लालसा से व्याकुल होकर सारा जगत् आपसे दिव्य शान्ति की याचना कर रहा है, उसको आप क्या निराश करेंगे? हरगिज नहीं, पिछले प्रकाश की ओर देखते हुए पल्ला झाड़कर खड़े तो हो जाइये, फिर आपके आगे अभागिनी निराशा कहाँ टिकेगी? आइये, एक बार हृदय से एकस्वर से प्रभुवर को सुमिर कर हम साहस के साथ यह कहते हुए दृढ़तापूर्वक आगे बढ़ें—

प्रभुवर ! सदय होकर हमें सन्मार्ग पर पहुँचाइये।
अब तो प्रसन्न भविष्य की आशा यहाँ उपजाइये॥
गोपाल ! अब वह चैन की वंशी बजेगी कब यहाँ ?
आलस्य से अभिभूत हमको कर्मयोग सिखाइये।
"व्याकुल न हो, कुछ भय नहीं, तुम सब अमृत-सन्तान हो।"
यह वेद की वाणी हमें फिर एक बार सुनाइये॥
यह आर्य-भूमि सचेत हो, फिर कार्य-भूमि बने, अहा !
वह प्रीति नीति बढ़े परस्पर, भीति-भाव भगाइये।

॥ तथास्तु ॥
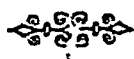
तीसरा अध्याय

भारत की उन्नति किसानों पर ही निर्भर है

हिन्द की हाय ! दौलत कहाँ वह गई ?
और क्या इल्म का वह खजाना हुआ ?
धीरता और साहस गये हैं किधर ?
किस तरफ़ काफ़िला वह रवाना हुआ ?
देश की ओर से कान बहरे किये।
आँख रहते हुए हाय ! अन्धे बने॥
लाख घर-घर में रोना पड़ा, पर यहाँ।
रात-दिन नाच–गाना–बजाना हुआ॥

ठोंकरे ठोंकरो पर ज़माने ने दीं।
सख्त सदमे कलेजे पै ऐसे पडे ॥
होश वेहोशी से जव ठिकाने हुए।
देखा दुनिया से गायव ठिकाना हुआ ॥
शस्य से श्यामला भूमि मे इस तरह।
अन्न का वस्त्र का धन का टोटा पड़ा ॥
रत्न-गर्भा के लालो को परदेश में।
कौडियो में कुली वन के जाना हुआ ॥
हीन अपनी हुई यो दशा देखकर।
दीन वनकर दया-भीख माँगा किये ॥
किन्तु होता न देखा गया कुछ असर।
जोक पत्थर में मानों लगाना हुआ।
आग ऐसी लगी स्वत्व के प्रेम की।
छल के जल से असम्भव वुझाना हुआ ॥
वह पुराना ज़माना रवाना हुआ।
अव नया दिन नया कारख़ाना हुआ ॥*

भारतवर्ष मे नगर इने-गिने हैं। यह गाँवो का देश है। गाँवों मे अधिकतर किसान ही रहते हैं, जो केवल भारतमात्र के ही नहीं, वल्कि भूमंडल के अन्नदाता हैं। भारत की आवादी ९० फी सदी किसानो की है। इस देश मे जव तक नगरो की सीमा

* सनेही

के अन्दर ही देशोद्धार और समाज-सुधार के आन्दोलन होते रहे, तब तक संसार को भारतीय जागृति का कुछ पता नहीं था। किन्तु जब से किसानों की ओर हमारे देश के नेताओं का ध्यान गया है और ग्राम-संगठन की गर्म चर्चा चल पड़ी है, तब से देश में जागृति की प्रचंड लहर उमड़ चली है और सारे संसार में इस बात की हलचल है कि सदियों का सोया हुआ भारत अब करवटें बदल रहा है। वास्तव में किसानों की दशा का सुधार ही देश और समाज का सच्चा सुधार है, क्योंकि देश का सर्वाङ्ग केवल किसानों से ही पुष्ट होता है। उन्हें छोड़ या निकाल देने पर देश में कुछ भी रह नहीं जाता। वे ही देश की रीढ़ हैं, वे ही देश के मूल-धन हैं, वे ही देश की थाती है। स्वर्गीय पंजाब-केसरी लाला लाजपतरायजी ने अपने एक लेख में लिखा था—

"भारतवासियों में किसान लोग मुझे सर्वप्रिय हैं। मेरे निकट महात्मा भी इनसे अधिक पूजनीय नहीं, क्योंकि महात्माओं का पेट भी किसानों ही से भरता है। इसीलिये, जो अन्नदाता है वही समाज में सिरमौर है। किन्तु आदि से अंत तक हमारे कवियों ने राजे-महाराजों ही के गुण गाये हैं। उन्होंने इस रहस्य का पता तक न जाना कि जिन लोगों से समाज तथा देश का मान बढ़ता है, वे टूटे-फूटे झोपड़ों के रहनेवाले हमारे पूज्यपाद किसान ही लोग हैं। भारत को मैं इन्हीं की दम से गुलज़ार मानता हूँ। हमारा सर्वस्व इन्हीं लोगों पर निर्भर है। ये लोग देश की सारी सम्पत्ति को उत्पन्न करते हैं। ये ही सब के लिये

भोजन तथा वस्त्र की सामग्री तैयार करते हैं। किसान ही विष्णु-स्वरूप अन्नदाता हैं। किसान ही ज्योतिर्मय सूर्य भगवान हैं जिसके प्रकाश से हम सभी नक्षत्रगण प्रकाशित होते है। मोती सदा समुद्र की तह में वास किया करता है। किसान भी देश के भीतरी भाग मे रहते हैं। उन्हें सब से अधिक 'कर' देना पड़ता है। वे ही वेचारे आधे पेट खा और मोटे-महीन कपड़े पहनकर जीवन-निर्वाह करते हैं। प्लेग, अकाल आदि में सब से पहले वे ही भेंट चढ़ते हैं। इसलिये, आप यदि किसानो का कुछ भी उपकार करना चाहते हैं, तो जाइये, उनके बीच में रहिये, उनके साथ रूखा-सूखा भोजन कीजिये तथा उनके साथ उनकी देहाती बोली बोलिये, उनके बीच में बाबू बनकर नहीं, उनके सेवक-सहायक बनकर रहिये। उन्हे विद्वत्तापूर्ण उपदेश न दीजिये। उससे उनको तनिक भी लाभ न होगा।"

इसी प्रकार हिन्दी-साहित्य के आचार्य महारथी पं० महावीर प्रसादजी द्विवेदी ने देश और किसान का सम्बन्ध तथा महत्त्व अपने एक लेख मे यों प्रकट किया है—

"आजकल देश देशभक्ति, देशसुधार आदि की कथा सर्वत्र ही सुन पड़ती है। पर, देश कहते किसे हैं, इस बात के विचार की आवश्यकता है। नदी, पर्वत, पेड़, पहाड़ तो देश हो नहीं सकते, क्योंकि वे जड़ हैं और जड़ों के विषय में भक्ति कैसी ? गाँव, कस्बे और शहर भी देश नहीं, क्योंकि देश-भक्ति मे देशसेवकों का अभिप्राय किसी के घर-द्वार की पूजा से

नहीं। देश से मतलब देश में रहनेवालों से है। अच्छा, तो क्या वकील, बैरिस्टर और जज आदि देश हैं? नहीं। सेठ, साहूकार, बनिये-महाजन आदि देश हैं? सो भी नहीं। राजे-महाराजे देश हैं? नहीं। तो क्या गवर्नमेण्ट देश है? सो तो किसी तरह नहीं। सच पूछिये तो देश के किसान—देश के खेतिहर—ही देश हैं, क्योंकि उन्हीं की संख्या सबसे अधिक अर्थात् लगभग ९० फी सदी है। संख्या की अधिकता के सिवा उनका पेशा भी सबसे अधिक महत्त्व का है। वे यदि लगान या मालगुजारी न दें तो राजे-महाराजे बिगड़ जायें और गवर्नमेण्ट का चर्खा भी बन्द हो जाये। वे यदि अनाज पैदा न करें तो सेठ-साहूकार दाने-दाने को मुहताज हो जायँ। वे यदि कचहरियों का आश्रय न लें तो वकील-बैरिस्टर मारे-मारे फिरें। अतएव किसानों का समुदाय ही देश है। परन्तु हाय! इन्हीं किसानों की, देश के सब से उपयोगी और महत्त्ववाले इन्हीं मनुष्यों की, इस अभागे भारत मे सबसे अधिक दुर्दशा है! ऐसी दशा में किसानो की दशा सुधारना, उन्हें शिक्षित करना, उन्हे लगान-कानून की जरूरी बातें बताना, उन्हें अपना हक पाने के योग्य बनाना ही सबसे बड़ी देश-सेवा, सबसे बड़ी देशभक्ति और सबसे बड़ा देशसुधार है। किसानों की दशा सुधारने से ही देश की दशा सुधर सकती है। उन्हें अन्धकार के गढ़े मे पड़ा रखकर देश-सुधार का स्वप्न देखना केवल परिश्रम और शक्ति को व्यर्थ नष्ट करना है। अतएव, जो सज्जन किसानों की उन्नति के लिये चेष्टा करते हैं, वे धन्य हैं।"

इन उपर्युक्त विद्वान् महापुरुषों के कथन से आपको स्पष्ट मालूम हो गया होगा कि देश और किसान परस्पर अभिन्न हैं तथा किसानों की दशा का सुधार ही भारत के उद्धार का मूल है। हमारी समझ मे किसानो के काम की सारी बातें बता देने से ही देश की उन्नति के लिये किये जानेवाले सभी कामों की गिनती पूरी हो जायगी, और इसीलिये हम यहाँ संक्षेप में बताये देते हैं कि किन-किन बातो पर ध्यान देने से किसान अपनी दशा सुधार सकते हैं और अपने सुदिन के साथ-साथ देश के सुदिन को फिर लौटा सकते हैं। यहाँ जिन बातों की सूचना हम दे रहे हैं, उन्हीं पर हम आगे विस्तार से विचार करेंगे—

(१) किसानों मे सबसे पहले शिक्षा-प्रचार की बड़ी जरूरत है। इसके लिये जिला-बोर्डों से तो सहायता मिल ही सकती है, स्वयं किसान भी इस बारे में बहुत-कुछ कर सकते हैं। वे अपने बालकों को यदि दिन में खेती के कामो से अवकाश न दे सकें तो उनके लिये रात्रि-पाठशाला का प्रबन्ध करें और समूचे गाँव के किसान मिलकर आपस मे चन्दा करके एक अन्न-भण्डार खोल दें तथा अपने गाँव के या आस-पास के गाँवों के किसी पढ़े-लिखे आदमी को इस काम के लिये नियुक्त कर लें, क्योंकि देहातो में बहुत-से अँगरेजी-पढ़े लडके बेकारी मे दिन खपाते हैं और नौकरी के लिये ठोकरें खाते फिरते हैं। यदि उन्हे गाँव-गाँव में भोजन-वस्त्र की सुविधा हो जाय तो वे निठल्ले रहने से बच सकते हैं। जो किसान अपने बालक के पढ़ाने में हिचकिचाहट करे उसपर

प्रेम का दबाव डालकर और उसकी अड़चनें दूर कर तथा उसे प्रेमपूर्वक सहायता देकर उसके बालक को भर्ती कराना चाहिये। साथ ही, ऐसी ग्रामीण पाठशाला में बालकों की जाति-पाँति का झगड़ा न उठना चाहिये। देहातों मे जगह की तंगी नहीं होती है। पेड़ों की छाया में और चबूतरों पर भी पाठशाला चल सकती है। ऐसी दशा मे नीच-ऊँच के विचार का झमेला कोई अर्थ नहीं रखता। मनुष्यमात्र उसी परमपिता की सन्तान हैं। मनुष्य मे मनुष्य को घृणा करना प्रकृति-विरुद्ध है। जब हम कुत्ते-बिल्ली से घृणा नहीं करते, तो मनुष्य से, चाहे वह किसी श्रेणी का हो, घृणा करना अन्याय है, क्योंकि देहातों मे छोटी श्रेणी के लोगों से ही खेती के काम मे पूरी सहायता मिलती है और इस तरह वे समाज के एक खास अंग बने हुए हैं। यह विचार निरर्थक है कि उनके बालक पढ़कर मेहनत-मजूरी न करेंगे। उन्हें शिक्षा की ऐसी विधि बताई जाय कि वे आलसी और निकम्मे न होकर सहयोग और शान्ति के साथ समाज में रहना सीखें और आगे चलकर अपने गाँव में खेती की तरक्की और समाज का सुधार करने में पूरे सहायक हो सकें। आगे शिक्षा के अध्याय में बालकों की शिक्षा के प्रकार पर विस्तृत रूप से विचार करेंगे।

(२) निश्चय ही शिक्षा-प्रचार मे व्यय की पूरी आवश्यकता है और उसकी पूर्त्ति किसान तभी कर सकते हैं जब उनकी खेती की दशा अच्छी हो। अतएव उन्हें खेती के सम्बन्ध में सभी जरूरी बातों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। खाद कैसे तैयार

हो, कहाँ रक्खी जाय, किस तरह खेतो में डाली जाय और कब डाली जाय, इन बातो का पूरा-पूरा ज्ञान किसानो को नहीं है। ये बातें सरलता से आगे बताई गई हैं। फिर बीज की रक्षा की विधि भी किसान नहीं जानते, यह भी हमने आगे बताया है। खेत की उपज कैसे बढ़ेगी, जुताई कैसे और कब करनी चाहिये, सिचाई के लिये यथेष्ट प्रबन्ध सुगमता से कैसे होगा, बुआई और कटाई के समय किन बातों की जानकारी चाहिये, तथा खेत में खड़ी हरी फसल की रक्षा कैसे की जानी चाहिए, खलिहान कैसे स्थान में लगाना चाहिए, खेतीवाले पशुओ को कैसे स्थान में रखकर कैसा चारा और जल देना चाहिये, इत्यादि बाते किसानो को भली भाँति जानना अत्यन्त आवश्यक है। इन बहुत-सी छोटी-मोटी, किन्तु परम आवश्यक, बातो के न जानने से ही हमारे अधिकांश किसान भाई दु खी हैं और उनके दु.ख से सारा देश निर्जीव हो गया है। हमने यथाबुद्धि इन बातों को बड़ी सरलता से आगे समझाया है।

(२) जिस प्रकार किसानो के बालको की शिक्षा का खर्च मुख्यत. खेती पर निर्भर है, उसी प्रकार खेती की उन्नति खेती-वाले पशुओं की रक्षा और वृद्धि पर ही निर्भर है। बैल-गाय-भैंस आदि से किसानो का अधिक सम्बन्ध है और इन्हीं की कमाई पर उनकी जीविका है। किन्तु खेद है कि इन बेचारे गूँगे पशुओं पर किसानों की निर्दयता का कोई वारापार नहीं है। इन बेचारों को रहने का अच्छा स्थान, खाने को शुद्ध चारा और पीने को

साफ़ जल तक नहीं मिलता, जिसके कारण ये निर्बल होकर किसानों के काम मे भरपूर नहीं खट पाते और रोगी होकर अपनी अकाल मौत से किसानो की कमर तोड़ देते हैं। पर किसान अपनी करनी का फल भोगकर भी सावधान नहीं होते। हम आगे उन्हें पशुपालन पर बहुत-सी जानने योग्य बातें बतावेंगे और खेती के कीड़ों से फसल की रक्षा करने की विधि भी बताते हुए पशुओं के रोगों और उनकी दवाओ का भी उल्लेख करेंगे, ताकि किसानो को व्यर्थ इधर-उधर भटक कर हैरान होना और दूसरों का मुँह जोहना न पड़े।

(४) किसानो के स्वास्थ्य के विषय मे भी हमे बहुत-कुछ बताना है। कारण, वे अधिकतर केवल अपनी अज्ञानता के कारण ही कीड़ों की मौत मरते हैं। उनके मकान नीची और गन्दी जगह में रहते हैं, वे हवादार नहीं होते, उनमे काफी रोशनी न पहुँचने से सील लगी होती है, उनके आसपास गन्दगी फैली रहती है— गड्ढो मे गन्दे जल, वाहियात घास-पात, कूड़ा-कचरा आदि मकानों के पड़ोस मे ही देखे जाते हैं, और किसानो की अबोध स्त्रियाँ बस्ती के पास ही शौच आदि से निवृत्त होती हैं जिससे बस्ती में आनेवाली बाहरी शुद्ध वायु दूषित हो जाती है। कुँएँ भी साफ नहीं होते, उनपर ऊँची जगत न होने से बाहरी गन्दगी भीतर जाती है और कुछ लोग मैले-कुचैले बर्तन भी उनमे डालकर पानी में कीड़े पैदा कराते हैं, तालावों मे भी गन्दे कपड़े कचारने और दातून की जीभी फेंकने तथा गाय-बैलों के गोबर-मूत्र से

जल विगाड़ने की वुरी लत पड़ गई है। घर की नाली, रसोई-घर, आँगन, पाखाना-संडास आदि की सफाई पर भी किसान ध्यान नहीं देते। अपने दाँतों और नखों की सफाई तो दूर रहे, कपड़ो और वरतनों की सफाई भी ठीक तौर से नहीं करते। वस, इन्हीं वातों पर ध्यान देने से वे अनेक रोगों से सहज ही छुट्टी पा सकते है।

(५) किसानों में सामाजिक वुराइयाँ भी महामारी से कम नहीं फैली हुई हैं। प्लेग और महामारी से अधिक सामाजिक रोग ही उनका संहार कर रहे हैं। तिलक-दहेज की कुप्रथा तो इतनी प्रत्यक्ष है कि उस पर एक पोथा भी लिखा जाय तो कम ही है। वाल–विवाह और कुछ–कुछ वृद्ध–विवाह तथा अनमेल विवाह भी उनकी जड़ में कुठार मार रहे हैं; किन्तु उन्हें वन्दर–मूठ की–सी जड़ता पकड़े हुई है, वे इन कुकर्मों की चक्की मे पिसते रहते हुए भी होश में नहीं आते। किन्तु अव उन्हें होश मे आना पड़ेगा, नहीं तो संसार से उनका नाम-निशान मिटे विना न रहेगा।

(६) किसानों में मुकद्मेवाजी की प्रथा वहुत जोर पकडे हुई है, जिसके कारण उनमें ईर्ष्या-द्वेष, फूट-कलह, फजूलखर्ची और समय तथा द्रव्य की वरवादी आदि अनेक दोषों ने घर कर लिया है। फल यह हुआ है कि आपस का मेल-जोल, भाई-चारा और विरादरी का साधारण शिष्टाचार आदि भी लुप्त होता जा रहा है—आपस का मनोमालिन्य और वैमनस्य दिन-दिन वढ़ता जा रहा है, जिससे सामाजिक-संगठन और ग्राम-संगठन आदि शुभ कार्य सफल नहीं हो पाते—पंचायत-प्रणाली भी पनपने

नहीं पाती। इसलिये पंचों के गुण, पंचों के कर्त्तव्य, पंचायत के साधारण नियम तथा लाभ आदि विषयों पर हम आगे पूरा प्रकाश डालेंगे। साथ ही, एकता और मेल-जोल के महत्त्व को भी उदाहरण-सहित दरसावेंगे और देश के वकील-मुख्तारों तथा कचहरियों अमलों से भी निवेदन करेंगे कि अपने अन्नदाताओं के अज्ञान से लाभ उठाना छोड़कर उन्हें सच्चा मार्ग सुझावें।

(७) किसानों में अन्ध-परम्परा की बहुत-सी लकीरें भी पिट रही हैं। बहुत-सी मूर्खता-भरी फज़ूल बातें उनके घरों में रोज होती हैं। भूत-प्रेत-लीला के सिवा अन्धविश्वासवाली घटनाएँ नित्य उनको सर्वनाश की ओर घसीटे लिये जा रही हैं। मिथ्या भ्रम और निर्मूल शंका-सन्देह के वशीभूत होकर, वे अपने धन-जन का नाश करके, आगे बढ़ते हुए देश को पीछे खींच रहे हैं। इन सारी बातों को साफ़ तौर से हम किसानों के सामने रक्खेंगे। यदि वे हमारे कथन पर टुक ध्यान देंगे तो निश्चय ही उनकी आँखों के आगे का अन्धकार दूर होने से उनको ग्रसनेवाला भ्रम-भूत भाग जायगा।

(८) किसानों की स्त्रियों की दशा भी अत्यंत दयनीय है। वे अपने पतियों तथा सास-ससुर द्वारा सताई जाती हैं। उनके साथ ऐसे-ऐसे दुर्व्यवहार किये जाते हैं कि वे घर छोड़कर विधर्मियों के पंजे में जा फँसती हैं अथवा कुएँ-तालाब में डूबकर आत्महत्या के समान घोर पाप करके नरक-गामिनी होती हैं। थोड़ी-सी समझ और साधारण रीति से भी भले-बुरे का विचार

न करने के कारण ही किसानों के घर मे दिन-रात कलह्-कांड मचा रहता है। उनके घर की बेचारी विधवाओं की दशा तो और भी शोचनीय होती है। सहनशीलता और सद्व्यवहार की बुद्धि के अभाव से किसान लोग अपनी विधवाओं के जीवन को यों ही नष्ट-भ्रष्ट हो जाने देते हैं। इसका नतीजा भी वे भोगते हैं—कलंक भोगते हैं, अपमान सहते हैं, अपयश के शिकार होते हैं, मगर चेतते नहीं। हम स्त्रियों के विषय में हर-एक बात अच्छी तरह से आगे समझाकर लिखेंगे। उनमें ऐसी कोई बात होगी ही नहीं, जिसके करने में किसी प्रकार की कठिनाई जान पड़े।

सभी बुराइयो को दूर करने के लिये हमने सुगम-से-सुगम रीति बताने की चेष्टा की है। विश्वास है कि उनसे केवल किसान ही नहीं, बल्कि सभी श्रेणी और पेशे के लोग—यहाँ तक कि शहरो में बसनेवाले रोजगारी और सेठ-साहूकार तथा रईस लोग भी—समान रीति से लाभ उठा सकेंगे।

ईश्वर प्रत्येक भारतवासी को सुबुद्धि दें।

"हे जगदीश दयालु ब्रह्म प्रभु! सुनिये विनय हमारी।
हों ब्राह्मण उत्पन्न देश में धर्म-कर्म-व्रतधारी॥

क्षत्रिय हों रणधीर महारथ धनुर्वेद-अधिकारी।
धेनु दूधवाली हों सुन्दर, वृषभ तुङ्ग बलधारी॥

हों तुरंग गति-चपल, अंगना हो स्वरूप-गुणवाली।
विजयी रथी पुत्र जनपद के रत्न तेजबल-शाली॥

जब-हीं-जब जग करै कामना जलधर जल बरसावें।
फलैं पकैं बहु सुखद वनस्पति योग-क्षेम सब पावें ॥*

—००:०:००—

चौथा अध्याय

ग्राम-संगठन

ग्राम-संगठन ही समस्त देश के संगठन का आधार है। जब तक गाँवों का संगठन न होगा, तब तक देश में उठने की शक्ति नहीं आ सकती। देश-भर मे साढ़े सात लाख गाँव हैं, यदि उन सब का अच्छी तरह संगठन हो जाय, तो देश की संगठित-शक्ति का फिर क्या कहना! यह संगठन न होने के कारण ही गाँवों में बसनेवाले किसानों को, देश के सैकड़े नब्बे निवासियों को, नाना प्रकार के कष्ट और कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। उन्हे जो चाहता है, दबा देता है, दुत्कार देता है, फटकार देता है। वे ठोकरें खाते फिरते हैं, कोई उनकी बात नहीं सुनता। घूस देकर भी वे भटकते फिरते हैं। अर्जियाँ और दरख्वास्तें लेकर वे मारे-मारे फिरते हैं। सरकार ने उनके लाभ के लिये कितने ही महकमे खोल रक्खे हैं, मगर किसी से वे कुछ भी लाभ नहीं उठाने पाते। बीच के दलालों द्वारा वे तरह-तरह से

---

* यजुर्वेद के एक कवित्वपूर्ण प्रार्थनात्मक मंत्र का पद्यानुवाद—स्वर्गीय महाकवि "पूर्ण"-कृत।

तंग किये जाते हैं—सताये जाते हैं। जहाँ उनकी सुनवाई होने की आशा भी रहती है. वहाँ वे पहुँचने ही नहीं पाते। उनके खेत सूख जाते हैं, नहर का पानी यों हीं बहकर नदी-नाले में गिरता रहता है। सूखा पड़ने से उनकी फसलें चौपट हो जाती हैं, पर मालिक के पास रिपोर्ट पहुँच जाती है कि फसल अच्छी है। यह सब क्यो होता है? इसीलिये होता है कि गॉव का संगठन नहीं हुआ है—गाँव के सब लोग एक-राय, एक-मन, एक-दिल नहीं हैं—गाँव-भर के लोगो की शक्तियाँ बिखरी हुई हैं, क्योंकि आपस मे फूट तो है ही, आलस्य भी कम नहीं है और अज्ञान के कारण साहस तथा उत्साह भी नही है। यदि गॉव के लोगो को इस बात का ज्ञान हो कि हमारा क्या हक है, अगर गाँववाले अपने अधिकारो को पहचाने—नहर और लगान के जरूरी कानूनो की जानकारी रक्खें—अपने हक़ के लिये निडर होकर सचाई और नम्रता से आखिरी दम तक लड जायँ, तो निश्चय ही उनके कष्टों और असुविधाओं का अन्त हो जाय।

यहाँ हम देश के उन नौनिहालो से कुछ निवेदन करना चाहते हैं, जो स्कूली शिक्षा पाकर या ग्रेजुएट होकर भी नौकरी की तलाश में दर-दर मारे-मारे फिरा करते हैं—जो ओस चाटकर प्यास बुझाने की चाट में, शौक़ के साथ, अपने पैरों मे गुलामी की बेड़ियाँ पहनने के लिये उतावले बने फिरते हैं—जो शहरी हवा की गन्दगी मे रहकर देहात की शुद्ध वायु को उपेक्षा और घृणा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे हताश नौजवानो को चाहिये

कि देश के कोने-कोने मे फैल जायँ और गाँव-गाँव मे अपनी कुटी बनाकर अपने देशभाइयों की सेवा करें—गाँववालों को अच्छी-अच्छी कितावें पढ़कर सुनावे, अख़बारो से चुन-चुनकर उनके जानने योग्य उपयोगी समाचार सुनावें, उन्हें हक़ को लड़ाई में डटे रहने लायक बहादुर बनावें, उन्हे हर तरह के जरूरी क़ायदे-क़ानून बतावें, उनके कष्टो को अफसरों और नेताओं के कानो तक पहुँचावें। साथ ही, उन्हीं लोगो से एक-एक मुट्ठी अन्न लेकर अपनी कुटी मे ऐसा अन्न-भण्डार रक्खें कि अपनी आवश्यकताएँ भी पूरी हों और उन लोगो की सेवा-सहायता के काम में भी जरूरी खर्च किया जा सके। इस प्रकार के प्रबंध से हमारे उन नौजवान भाइयो की दशा कहीं अधिक सन्तोषजनक हो जायगी, जो कि स्कूल-कालेजो में मगज खपा-कर और शहर की गन्दी हवा मे शरीर गलाकर भी बीस-पचीस रुपये की नौकरी के लिये सैकड़ों जगहों की ख़ाक छानते फिरते हैं। देहातों में, कहीं किसी खुले स्थान में, कुटी बनाकर रहने से उनका जीवन भी आडम्बर-शून्य हो जायगा, शुद्ध वायु और शुद्ध घी-दूध मिलने से स्वास्थ्य भी अच्छा रहेगा, इच्छा होने पर सहज ही गो-सेवा भी हो सकेगी, भोजन और भेष में सादगी आ जाने से फजूलखर्ची तो रह ही नहीं सकती—बल्कि काफी बचत भी हो सकती है, पान-सिगरेट और तेल-फुलेल तथा थियेटर-बायस्कोप आदि के प्रलोभनों से छुटकारा मिलने के कारण आवश्यकताएँ भी बहुत कम हो जायँगी, जिससे कि

पैसे की बरबादी न होने पायेगी। साथ ही, गाँव के लोग भी अपना हितू जानकर, उपकार मानकर, अनेक प्रकार की सेवा करने लग जायँगे। उस समय निश्चय ही यह अनुभव होगा कि सौ रुपया महीना पाकर भी हम ऐसे सरल सेवक और सहायक नहीं पा सकते थे तथा इतना अच्छा वासस्थान और शुद्ध घी-दूध हमें नहीं नसीब हो सकता था।

बस इन्हीं कारणों से हम अपने नौजवान देश-बन्धुओं से बार-बार अपील करते हैं कि वे चाँदी की तीस-चालीस टिकलियों पर अपने तन-मन को न बेचें, अपने-आपको 'जी-हजूरी' मे न खपावें, बल्कि गाँवों मे जाकर गाँववालो के बीच मे बसें और उन्हीं से मजे में अपनी आवश्यकताओं की भी पूर्त्ति करें तथा उनके दुख दूर करने में भी चित्त दें। यदि देश-भर के लिखे-पढे नौजवान इस समय गाँवों मे फैलकर बेचारे किसानों के साथ सच्ची सहानुभूति दिखाने लग जायँ—उनके सुख-दुख में शामिल होकर उनकी सेवा-सहायता करने लग जायँ, उनके दर्द-शरीक बनकर उन्हें जगाने की चेष्टा करने लगें, तो निश्चय ही देश की काया पलट जाय, इसमें कोई सन्देह नहीं।

अब हमें इस बात पर विचार करना है कि गाँववालो के संगठन के लिये कौन-कौन-से उपाय काम में लाये जायँ। इस संबंध में सबसे पहली बात जो हमारे ध्यान को अपनी ओर खींचती है वह यह है कि गाँव-गाँव में किसान-सभाएँ खोली जायँ, जिनमे जमीन्दार और किसान दोनो शामिल रहें तथा

सभा द्वारा ऐसी कोशिश की जाती रहे कि दोनों में द्वेष पैदा न होकर सहयोग का भाव जागृत हो और दोनों मिलकर एक दूसरे की सहायता के लिये यत्नशील बनें। यहाँ हम किसानों की ग्राम-सभा के कुछ मोटे-मोटे नियम तथा उद्देश्य बता देना उचित समझते हैं। पहले उद्देश्य पर नज़र डालिये—

(१) किसानों की खेती और तन्दुरुस्ती की तरक्की के लिये कोशिश करते रहना।

(२) किसानों में उपयोगी शिक्षा और व्यावहारिक ज्ञान का प्रचार करना।

(३) किसानों के पशुओं की रक्षा और वृद्धि के लिये पूर्ण उद्योग करना।

(४) गाँव की सफ़ाई पर पूरा ध्यान देना।

(५) गाँव के सभी जाति और श्रेणी के लोगों में परस्पर एकता और सद्भाव स्थापित करना।

(६) किसानो में पंचायत-प्रथा चलाकर उन्हे मुकद्दमेबाजी के पंजे से छुड़ाना।

(७) किसानों के अधिकारों की पूरी-पूरी रक्षा करना।

(८) किसानों को समाज-सुधार की बातों में पूरी दिलचस्पी लेने योग्य बनाना।

(९) गाँववालों की जड़ता, मूर्खता, अंध-परंपरा, अविद्या और बुरी आदतों का नाश करना।

(१०) गाँववालो मे चर्खा और खद्दर का प्रचार करके आलस्य और बेकारी तथा अभाव से उनका पिण्ड छुड़ाना।

(११) ग्राम-सहयोग-समिति, ग्रामीण-पुस्तकालय, रात्रि-पाठ-शाला, अन्न-भण्डार, सेवा-मन्दिर आदि की स्थापना करके गाँव वालों को आवश्यक लाभ पहुँचाना।

(१२) गाँव में बसनेवाली असहाय विधवाओं, बूढ़े-बूढ़ियों और अनाथ बालकों की रक्षा का यथेष्ट प्रबन्ध करना।

इन उपर्युक्त उद्देश्यों का पालन करने के लिये कुछ नियमो की भी आवश्यकता होगी। वे नियम इस प्रकार हैं—

(१) गाँव का निवासी प्रत्येक किसान और खेती की उपज के सहारे जीविका चलानेवाला प्रत्येक ग्राम-वासी—चाहे वह बनिया-महाजन हो या कोई दुकानदार या दूसरा ही कोई पेशा करने वाला—किसान-संघ का अवश्य ही सदस्य (मेम्बर) हो। अठारह साल से कम उम्र का कोई सदस्य न रहे, और अठारह वर्ष से ऊपर उम्रवाले सभी ग्रामवासियो को सदस्य बनना चाहिये—चाहे वह स्त्री हो या पुरुष।

(२) प्रति सप्ताह गाँव-भर से मुष्टि-भिक्षा एकत्र करके अन्न-भण्डार में सुरक्षित रखना और फसल के दिनो मे खलिहानों से भी बँधेज के अनुसार अन्न सग्रह करके भण्डार में जमा करना।

(३) सभी सदस्य अपने-अपने घरो में मुठिया का प्रबन्ध करें। प्रति दिन दोनों जून परिवार के प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से एक-एक मुट्ठी अनाज निकालकर किसी भाँड़े में रक्खा जाय।

अगर दोनों जून और प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से मुठिया न निकल सके तो एक ही जून प्रत्येक व्यक्ति के हिसाब से एक-एक चुटकी चून निकाल दें, और अगर इतना भी न हो सके तो रोज़ एक ही वक्त समस्त परिवार की ओर से एक या दो मुट्ठी अन्न अलग रख दें। तात्पर्य यह कि यथाशक्ति सब लोग कुछ-न-कुछ अनाज अवश्य संग्रह करते जायँ, और ग्राम-संघ के स्वयं-सेवक प्रति सप्ताह घर-घर गश्त लगाकर सब अन्न बटोर ले। स्वयसेवक भी पारी-पारी से काम करें।

(४) हर हफ्ते या पखवारे मे अथवा महीने मे एक बार, जैसी गाँव की हालत हो, ग्राम-संघ के सदस्यो की एक बैठक अवश्य हो। उसमें संघ की व्यवस्था पर विचार हो और आवश्यक कार्यों की पूर्त्ति पर ध्यान दिया जाय। हाँ, साल-भर मे एक बार वार्षिक उत्सव भी अवश्य मनाया जाय, जिसमे ज़िले या प्रान्त के नेताओ और विद्वानों को निमंत्रित करके उनके उपदेश ग्रहण किये जायँ। साथ ही, साल-भर के कार्य की रिपोर्ट समाचारपत्रो में भी भेज दी जाय।

(५) ग्राम-संघ का प्रत्येक सदस्य इस बात की खोज-खबर लेता रहे कि गाँव मे कौन अनाथ है, रोगी है, मुहताज है, भूखा-दुखा है, पीड़ित है इत्यादि। और, फ़ौरन ही संघ मे वह इस बात की रिपोर्ट करे कि उस असहाय व्यक्ति को किस प्रकार की सेवा-सहायता दरकार है और वह सदस्य भी स्वयं इस विषय मे कहाँ तक सघ का हाथ बँटा सकता है।

(६) आवश्यकता आ पड़ने पर संघ अपने प्रत्येक सदस्य से स्वयं-सेवक का काम ले सकता है। स्वयं-सेवक होने की दशा में किसी श्रेणी के ग्रामवासी को भी किसी प्रकार के काम मे हिच-किचाहट न करनी होगी।

(७) बाढ़ में, अकाल में, आग लगने पर या कोई भी अचा-नक दुर्घटना होने पर किसी सदस्य से आवश्यक कार्य कराने का अधिकार संघ को होगा।

(८) गाँव में मुख्य-मुख्य स्थानों पर रामायण-पाठ, गीता-पाठ भजन-गान आदि का प्रबन्ध किया जाय—रोजाना या हफ्तेवार।

(९) होली, दसहरा, दीवाली, राखी आदि पर्वों पर संघ की ओर से खास तौर से समारोह के साथ उत्सव मनाये जायँ।

(१०) किसी भी सदस्य के यहाँ खुशी और ग़म में यथासम्भव प्रत्येक सदस्य की उपस्थिति आवश्यक समझी जाय।

(११) गाँव के लावारिस मुर्दों के कफ़न-काठी का वन्दोवस्त करके उसका दाह-कर्म कराया जाय और हर-एक जाति के मुर्दे के साथ हर-एक जाति का सदस्य कम-से-कम थोड़ी दूर तक अवश्य ही आदर-भाव-सहित उठकर जाय।

(१२) गरीब या कंगाल ग्रामवासी की लड़की की शादी मे गाँव का प्रत्येक मनुष्य यथासंभव आवश्यक सहायता देने के लिये सर्वदा तैयार रहे।

(१३) बीड़ी-सिगरेट, गाँजा-भाँग, चरस-तम्बाकू, ताड़ी-शराब, जुआ वगैरह को रोकने के लिये हर वक्त हर-एक सदस्य

चेष्टा करता रहे। इस चेष्टा में केवल विनय और नम्रता का व्यव-हार किया जाय।

(१४) गाँव में किसी महामारी रोग के फैलने पर असहाय गरीबों के लिये औषध के साथ-साथ सेवा-शुश्रूषा का भी प्रबन्ध किया जाय और गाँव की सफाई पर ध्यान रखते हुए भोजन, वस्त्र और जल की स्वच्छता के सम्बन्ध में लोगों को चेतावनी देकर सावधान कर दिया जाय।

(१५) गोचर-भूमि और अन्धे तथा लँगडे-लूले-अपाहिज पशुओं की रक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाय।

(१६) गरीब किसानों को बीज, रुपया और कपड़ा आदि क्रूर लहनदार महाजनों से—काबुली, आगा, मुगल इत्यादि से—न लेने दिया जाय, बल्कि उनकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिये संघ ही कोई व्यवस्था करे।

अब, ऊपर बताये गये उद्देश्यों और नियमों के पालन करने मे विशेष सुविधा होने के लिये हम यहाँ एक विद्वान के मतानुसार ग्राम-सभा के कुछ विभागों का उल्लेख किये देते हैं, जिनके अनुसार काम करने से किसी प्रकार की गड़बड़ भी न होगी और खूब सहूलियत से नियमों का पालन भी होता चलेगा। ग्राम-संघ में निम्नलिखित विभागों का होना आवश्यक है—

(१) शिक्षा-विभाग—इसके द्वारा गाँव के स्कूल (पाठशाला) का प्रबन्ध, पुस्तकालय और वाचनालय का प्रबन्ध तथा कन्या-पाठशाला और रात्रि-पाठशाला का प्रबन्ध किया जाय।

(२) खेती-विभाग—इसके द्वारा खेती-सम्बन्धी सब तरह की व्यावहारिक और आवश्यक बातें किसानो को बताई जायँ—जुताई, बुआई, सिंचाई, खाद, बीज, खलिहान, गोशाला, बैल, साँड़, गाय-भैंस, चारा, दूध-दही, घी-मक्खन, बागवानी आदि सभी चीजो के बारे में कुल जानने योग्य बातें बताई जायँ। इन सबके पालन-पोषण, वृद्धि, उपयोग, गुण-दोष, हानि-लाभ और रोग तथा औषध के विषय में जहाँ तक जरूरी बातें बताई जा सकें, लाभ ही होगा।

(३) वस्त्र-विभाग—इसके द्वारा शुद्ध खद्दर और स्वदेशी मिलों के कपड़ों का प्रचार किया जाय। स्वदेशी वस्तु के व्यवहार करने से देश को क्या लाभ है, यह समझाकर लोगों को खद्दर-व्यवहार करने के लिये उत्साहित किया जाय। और-और स्वदेशी चीजो के प्रचार की भी चेष्टा की जाय।

(४) पंचायत-विभाग—इसके द्वारा गाँव-जवार के झगड़े-रगड़े मिटाने का उद्योग किया जाय। नम्रता, प्रेम, सद्भाव, शान्ति और धैर्य के साथ दोनो पक्ष के लोगो को मिलाने और झगड़े की जड़ काटने का प्रयत्न किया जाय। यदि आवश्यकता हो, और परिस्थिति भी अनुकूल हो, तो सामाजिक बहिष्कार का भी प्रयोग किया जाय, किन्तु घृणा और द्वेष तथा क्रोध से किसी दशा में काम न लिया जाय। और, इसी विभाग के अन्दर एक बैंक-विभाग या सहयोग-समिति भी रहे तो अच्छा हो, जिसके द्वारा ...ों की मंजूरी से किसानों को रुपये कर्ज दिये जायँ और बैंक-

विभाग की सारी पूँजी या थाती-रक़म किसी विश्वासपात्र धनी महाजन की कोठी में जमा करके खाता खोल लिया जाय, अथवा डाकखाने के सेविङ्ग-बैंक से भी काम लिया जा सकता है।

(५)—स्वास्थ्य-विभाग—इसके द्वारा गाँव-भर की गलियों, रास्तों, मोरियों, कुँओं और खँड़हरों की सफाई का प्रबन्ध किया जाय। बस्ती के आसपास की जमीन को साफ़ रखने के लिये भी ग्रामवासियों को चेतावनी दी जाय। नदी-तालाब के घाटों की सफाई, गोशालाओं की सफ़ाई, गृहस्थों के घरों में पाकशाला और आँगन आदि की सफाई, लोगों के शरीर और वस्त्र की सफाई इत्यादि पर पूरा-पूरा ध्यान दिया जाय। लोगों को हवादार और प्रकाशपूर्ण मकान बनाने की चेतावनी दी जाय, जिसमें घरों के अन्दर सील और मच्छर होने से घरवालों का स्वास्थ्य न बिगड़े। बस्ती के अन्दर सड़े पानीवाले गड्ढों को भरने और फजूल परती पड़ी हुई जमीन को सार्वजनिक वाटिका बनाने का भी उद्योग किया जाय। खुली जगह में अखाड़े भी खोले जाएँ और बालकों तथा नौजवानों को कसरत के लिये उत्तेजना दी जाय। इसी विभाग में औषधालय भी रहे, जिसमें समर्थ गृहस्थों के लिये बिक्री की पेटेण्ट दवाएँ भी रहें और गरीबों के लिये मुफ़्त दवा बाँटने की भी व्यवस्था की जाय।

(६) सेवा-विभाग—इसके द्वारा गाँव के बालकों और नवयुवकों को स्वयंसेवक बनाकर रात में पहरा देने के लिये, हैजा-प्लेग के जमाने में दवाएँ बाँटने तथा असहाय लोगों की सेवा-

सुश्रूषा और देखभाल करने के लिये, मेले, या किसी उत्सव के अवसर पर भीड़-भाड़ मे शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने के लिये उत्साहित किया जाय । किसी जवर्दस्त आदमी द्वारा यदि कोई निर्बल अन्याय-वश सताया जाय, तो जबर्दस्त को नम्रता से शान्त करके निर्बल की रक्षा और सहायता की जाय। मुठिया और चुटकी के अन्न को एकत्र करने मे, ग्रामवासियों के यहाँ शादी-व्याह आदि के कार्य में आवश्यक सहायता करने मे, गाँव में कोई उपद्रव होने पर उसे शान्त करने में, जहाँ-कहीं किसी प्रकार की सार्वजनिक सेवा-सहायता की आवश्यकता हो वहाँ वेधड़क उपस्थित होने मे स्वयंसेवको को हमेशा मुस्तैद और उत्साहित रहना चाहिये। इसी विभाग पर अधिकतर सब विभागों की सफलता निर्भर रहेगी, क्योंकि यही ग्राम-संघ का पुलिस-विभाग होगा। जिस प्रकार अँग्रेजी-सरकार पुलिस-विभाग के बल पर अपने राज्य में शान्ति स्थापित करती है, उसी प्रकार इस सेवा-विभाग के द्वारा ग्राम-सभा भी गाँव में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित कर सकती है। इस विभाग के सभी कार्यकर्ताओं को खूब उत्साही, साहसी, उदार, परिश्रमी सहनशील और धीर तथा निडर होना चाहिये।

(७) कारीगरी-विभाग—इसके द्वारा गाँव के जुलाहों और धुनकारों को चरखे के सूत से देशी करघे पर कताई-बुनाई के अच्छे तरीके बताकर खद्दर तैयार करने के लिये उत्साहित किया जाय। धोबी, नाई, बढ़ई, लुहार, दर्जी, चमार आदि देहात

कारीगरों को अपने-अपने व्यवसाय में उन्नति करने का अवसर दिया जाय, और आवश्यकता के अनुसार उनकी सहायता करके गाँव के लोगों की सुविधाएँ बढ़ाई जायँ।

(८) उपदेश-विभाग—इसके द्वारा हिन्दुओं और मुसलमानों में आपस का प्रेम बढ़ाने तथा मनमुटाव मिटाने के लिये व्याख्यान आदि कराये जायँ। सब धर्मों और सम्प्रदायों तथा समाजों के लोगों में परस्पर सद्भाव और प्रेम स्थापित करने के लिये उद्योग किया जाय। अछूतों के लिये कुँओं आदि की सुविधा कराना और उन्हें सफ़ाई के साथ रहने के लिये शिक्षा देना भी इसी विभाग के जिम्मे रहे। गाँव में नशीली चीजों का प्रचार रोकने के लिये शराब, गाँजा, भाँग, चरस, तम्बाकू आदि के दोष तथा इनसे होनेवाली हानियाँ और बीमारियाँ लोगों को सप्रमाण बताई जायँ। झूठ, धोखा, चोरी, जूआ, व्यभिचार, वेश्यागमन आदि के दोषों और उपद्रवों को लोगों पर प्रभावशाली ढंग से प्रगट कराने का उद्योग किया जाय। अन्य प्रकार के धार्मिक तथा सामाजिक उपदेश भी इसीके द्वारा होते रहें—कथावार्त्ता इत्यादि भी।

(९) जानकारी-विभाग—इसके द्वारा गाँव के निवासियों को रेल, तार, डाक, अदालत, नहर, चुंगी, जिला-बोर्ड और चुनाव में वोट आदि देने के छोटे-मोटे साधारण नियम बताये जायँ। उदाहरण के लिये दो-चार बातें देखिये—रेल में सफर करने के लिये कितनी सावधानी, सहनशीलता, सफाई और सचाई की जरूरत है।

टिकट कटाते समय भीड़भाड़ और झगड़ा-झमेला न करना चाहिये। रेल के डब्बे में स्वयं चढ़ने और दूसरों को चढ़ने देने में किन बातों का ध्यान रखना चाहिये। डब्बे में सफ़ाई रखने से क्या लाभ है और कैसे सफ़ाई रक्खी जा सकती है। एक दूसरे की सुविधा का खयाल रखते हुए कैसे दूर-दराज का सफ़र करना चाहिये। कुलियों और एक्के-बग्घीवालों के साथ झौं-झौं करने से किस प्रकार पिंड छूट सकता है—इत्यादि। फिर, इसी प्रकार, किसी नदी या तालाब के घाट या कुएँ पर स्नान करते समय किस प्रकार सफ़ाई का ध्यान रखना चाहिये। घाट पर थूक-खखार और दँतौन की जीभी आदि फेंकना, मैले-कुचैले कपड़े कचारना, साबुन लगाना, घाव धोना, दूसरों पर छींटे डालना, जल के अन्दर थूक-नेटा आदि फेंकना, कुएँ की जगत को हाथ या बर्त्तन आदि मलनेवाली मिट्टी से गन्दा करना, गन्दे बर्त्तन को कुएँ मे डालना, कुएँ के पास ही मुँह आदि धोना और कपड़े कचार कर छींटे उड़ाना तथा स्नान किये हुए जल को कुएँ में गिरने देना—यह सब गन्दगी की बुरी और घृणित आदतें स्वास्थ्य के लिए कितनी हानिकारिणी हैं, इनसे ज़हरीली बीमारियों के फैलने का कितना डर रहता है, इनसे सफ़ाई-पसन्द लोगों को कितना कष्ट होता है—इत्यादि। ये सारी बातें तफ़सीलवार बताई जायँ, इनके दोष-गुण भी स्पष्ट समझाये जायँ। हमने आगे कुछ बताया भी है।

पाँचवाँ अध्याय

समाज-संगठन

आँखें बदल-बदलकर अपनी, बहक-बहक जो बहुत बकोगे।
खुले हुए दिल से तो कैसे, साथ-साथ हँस-खेल सकोगे॥
मुँह में बुरी बात जो आवे, तो न भूलकर भी मुँह खोले।
प्यार-भरा जी बिगड़ जायगा, बात बढ़ेगी बोली बोले॥
खींच बढ़ेगी खींचतान से, डूब जायगी हित की डोंगी।
छीनाझपटी कभी करो मत, इससे छीछालेदर होगी॥
अपने मतलब की बातों से, तुम्हें नहीं जो मिलती छुट्टी।
तो जिसको हो बहुत चाहते, उससे करनी होगी कुट्टी॥
बात-बात में छेड़छाड़ कर, जो म किसी कुभाव भरो मत।
हँसी खड़ा करती है झगड़े, हँसो हँसाओ, हँसी करो मत॥
सबसे मीठी बोली बोलो, मैली रखो न अपनी आँतें।
जी में कड़वापन भर देंगी, कड़वे मुँह की कड़वी बातें॥
जो निबाहना साथ तुम्हें है, तो पत साथी की न उतारो।
भौंहें तान-तान मत बहको, मत तानो, मत ताना मारो॥*

एक-एक व्यक्ति के जोड़ने से 'समाज' बनता है। समाज का संगठन करने के लिये समस्त जाति के प्रत्येक मनुष्य की सहायता की आवश्यकता होती है। जैसे शरीर के किसी भी अंश में पीड़ा

---

* हरिऔध।

होने से समूचा शरीर व्याकुल हो जाता है, वैसे ही समाज के एक भी मनुष्य के अपढ़ रह जाने या आलसी हो जाने से समाज की हानि और बरबादी होती है। यदि समाज का हर-एक आदमी यह समझ ले कि मनुष्य का जीवन किस प्रकार सफल होता है और उसका मुख्य उद्देश्य क्या है, तो समाज-संगठन में बड़ी सुविधा हो और वह संगठित समाज बड़ा प्रभावशाली भी हो जाय।

इसका खुलासा मतलब यह है कि केवल ब्राह्मण या क्षत्री ही आपस में एकता करके अथवा अपने-अपने घरों का सुधार करके समाज को सुखमय नहीं बना सकते। बिखरा हुआ समाज कभी सुखमय हो ही नहीं सकता। यदि ब्राह्मण-क्षत्रियों को वास्तव में यह अभीष्ट है कि समाज खूब संगठित और पुष्ट बना रहे, तो उन्हें चाहिये कि अन्य जातियों तथा शूद्रों या अछूतो को भी प्रेम-सहित अपनावें—उन्हें भी समाज का अंग ही समझ कर अपने प्रेम और सद्भाव की सीमा में समेट लें। शूद्रों को शास्त्रों ने सृष्टिकर्त्ता के चरणों से उत्पन्न बताया है। इसका गूढ़ आशय यह है कि शूद्र ही समाज-रूपी शरीर में चरणों के समान हैं—इन्हीं के बल पर समाज खड़ा है या चल रहा है। भला बताइये तो सही, चरणों के बिना कोई मनुष्य खड़ा रह सकता है या आगे चल सकता है? सिर पर मुकुट हो, कन्धे पर धनुष भी हो, हाथ में तलवार और भाला भी हो, किन्तु पैर कटे हुए हों तो ऐसी दशा में क्या कोई रणधीर वीर भी कुछ करामात दिखा सकता है? बिना दीवार और खम्भे के कभी ऊपर की खपरैल

छाजन या छत स्थिर रह सकती है ? नींव हिलने पर क्या पुख्ता-पक्का मकान कभी अचल रह सकता है ? कदापि नहीं।

इसी प्रकार, समाज को अपने पैरों खड़ा करने के लिए शूद्रों को भी मिलाकर रखना बहुत ही जरूरी है। धोबी, नाई, मेहतर, डोम, चमार, तेली, कुम्हार, लोहार, बढ़ई, तमोली, मल्लाह, अहीर, कहार आदि उपयोगी जातियाँ समाज को सुखमय बनाने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इनको अलग फटकारने से क्या कोई उत्तम जाति का मनुष्य या परिवार भली भाँति प्रतिष्ठा और सुविधा के साथ दिन बिता सकता है ? हरगिज नहीं।

समाज में जितनी बड़ी आवश्यकता ब्राह्मण की है, उतनी ही बड़ी धोबी और मेहतर की भी। ब्राह्मण अगर समाज के पारलौकिक सुख का विधाता है, तो धोबी-मेहतर आदि भी समाज के इहलौकिक सुख के विधाता हैं। समाज की सभी तरह की आवश्यकताओं की पूर्त्ति करनेवाले हमारे ये शूद्र-भाई ही हैं। इन्हें विशेषतः इन्हीं के योग्य शिक्षा देकर और इनके सामने अपने शुद्ध आचरण से बाहरी-भीतरी स्वच्छता का आदर्श उपस्थित कर ब्राह्मणों और क्षत्रियों को समाज-संगठन का सूत्र अपने हाथ में लेना चाहिये।

समाज की रक्षा का भार सब पर बराबर है। किसी एक के बिना समाज का मंगल नहीं हो सकता। क्षत्री लोग यदि यह कहें कि हमारे ही बाहु-बल से समाज का कल्याण होता है, इसलिये समाज में हमें सबसे अधिक सुख प्राप्त करने का अधिकार

है; तो फिर धोबी-मेहतर आदि को भी यह कहने का पूरा हक़ है कि हमारे न रहने से समाज साक्षात् नरक बन जायगा और समाज में सबसे अधिक सुख पाने का दावा करनेवाले लोग रौरव के कीड़े बन जायँगे। इस बात को कोई भी बुद्धिमान स्वीकार नहीं करेगा और न कोई समझदार आदमी ऐसा लचर तर्क ही करेगा कि 'साबुन' और 'सेफटी-रेज़र' (आराम से हजामत बनाने का छुरा) के कारण अब धोबी-नाई को कोई ज़रूरत ही न रही। याद रखिये, 'सेफटी-रेज़र' आपकी दाढ़ी भले ही चिकनी कर दे, बाल काटनेवाली कल आपके सिर के बालों को भले ही फैशनेबुल बना दे, पर ये कभी आपके मँड़वे में बन्दनवार बाँधने नहीं जायँगे—चौक पूरने के लिये नाइन इनके पास कहाँ है? आपकी सुहागिन स्त्री के पैरों में महावर के रंग से बेलबूटे निकालने का काम क्या 'सेफटी रेज़र' भी कर सकता है?

कहाँ तक सुझाया जाय, धोबी बेचारा आपका इतना बड़ा हितू और हमदर्द है कि हैजा, प्लेग, चेचक आदि छूत की भयंकर बीमारियों तथा गर्मी में भी ज़हरीले कीटाणुओं से भरे कपड़ों की बड़ी-बड़ी गठरियाँ अपनी पीठ और सिर पर लादकर ले जाता और साफ़-सुथरा बनाकर दे जाता है, जिसके बदले में उसे कुछ पैसे या अन्न के थोड़े दाने मिल जाते हैं। क्या सोडा, साबुन, सज्जी और गरम पानी से अपने गन्दे कपड़े धोकर आप उतनी सहूलियत या आराम पा सकते हैं—आपके अमूल्य ५ की बचत हो सकती है? कदापि नहीं।

ज़रा सोचिये तो सही, किश्ती के डाँड़े चलाकर आप भले ही दरियाई सैर करके अपना स्वास्थ्य बना लें या मन बहला लें; पर किश्ती खेने की कला में चतुर होने पर भी क्या आप हर जगह हमेशा मल्लाह के अभाव की पूर्ति कर सकते हैं? आपकी बारात का असबाब और गाड़ी-छकड़ा अगर नदी के उस पार उतारना हो, तो आप क्या दुल्लह या समधी बने रहने पर भी किश्ती को खेकर उस पार ले जायँगे? बस, इसी प्रकार हमें विचार-पूर्वक देखना और समझना चाहिये कि समाज-संगठन के लिये केवल किसी एक ही जाति के लोगों में सहयोग का भाव होना आवश्यक नहीं है, बल्कि सभी छोटी-बड़ी जातियों में परस्पर सद्भाव और सहयोग होना चाहिये।

मकान के पूरा बनकर तैयार होने में अगर ईंट-पत्थरों की जरूरत है, तो लक्कड़-खप्पड़ और कील-काँटों की भी उतनी ही जरूरत है। रसोई-घर में बटुए या तसले का जो महत्त्व है, कलछी और चिमटे का महत्व उससे कुछ भी कम नहीं है। किसान के घर में हल-हेंगा जितना काम देता है, उतना ही काम एक छोटी सुई से भी सरता है। अपने अपने स्थान और अवसर पर सबकी शोभा और प्रतिष्ठा है। सुख और सुभीते के खयाल से तो सभी चीजों की जरूरत है—चाहे वह छोटी हो या बड़ी, महँगी हो या सस्ती, महान् हो या तुच्छ। दसहरे के दिन नीलकंठ-पक्षी भी अनमोल और दर्शनीय बन जाता है, तथा धुलहड़ी (होलिका-दहन) के दिन रेंड के पेड़ भी अपनी महिमा

दिखा देते हैं। समय-समय पर सबका महत्व आप-ही-आप प्रकट हो जाता है। सोनार के पास सभी औजार रहें, मगर एक करजनी (घुँघची) भूल जाय, तो उसका काम रुक जाता है—वह काँटे पर तौल का अन्दाज़ नहीं बाँध सकता।

इसलिये, यह स्वयं सिद्ध बात है कि समाज-संगठन में, छोटे और बड़े, सबके मिल जाने की बड़ी जरूरत है। सबके सहयोग से ही समाज का सर्वाङ्ग पुष्ट रहेगा और सभी श्रेणी के मनुष्यों को सुखशान्ति उपभोग करने का अवकाश एवं अवसर प्राप्त होगा।

हाँ, समाज-संगठन को स्थिर रखने के लिए पंचायत-प्रथा की भी बड़ी जरूरत है। पंचायत के पंचों में सभी जाति, सभी धर्म और सभी श्रेणी के मनुष्यो का होना बहुत ही जरूरी है। किन्तु पंचों के चुनाव मे भी पूर्ण स्वतंत्रता और उदारता से काम लिया जाना चाहिये। किसी जाति या धर्म के पक्षपात अथवा किसी प्रतिष्ठित या धनी या बलवान मनुष्य के आतंक के प्रभाव में आकर पंचों का चुनाव नहीं करना चाहिये। पंच केवल ऐसे ही व्यक्ति चुने जायँ, जो ईमानदार और उदार हों—दृढचित्त और सदाचारी हों तथा स्पष्टवादी और निर्भीक भी हों, भले ही प्रभावशाली न हों। यदि प्रभावशाली मनुष्य पक्के विचार और सच्चे ईमान का नहीं है, तो उसको पंच चुनना अधर्म है। जो व्यक्ति पंच चुना जाय, उसे चाहिये कि धर्म और ईश्वर का ध्यान रखकर न्याय करे, परमात्मा से डरे, कलियुग को कर-युग समझे—इस बात का खयाल रक्खे कि बेईमानी और बेइन्साफी

करने में हाथों-हाथ तुरन्त फल मिलेगा। उसे चाहिये कि दूध-का-दूध और पानी-का-पानी करके दिखा दे। उसके लिए ईर्षा-द्वेष और लोभ-मोह तथा क्रोध आदि मनोविकार घोर पाप-रूप हैं। उसको अपनी नीयत साफ़ करके, दिल की खोटाई दूर करके, शुद्ध हृदय से, प्रसन्न मन से, ईश्वर को सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् समझकर, अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिये। पंच को लोग परमेश्वर का रूप बतलाते हैं। जो झूठी पंचायत का पाखंड रचकर अपना स्वार्थ साधता या अपने सगे-सम्बन्धी का पक्षपात करता है, वह नरकगामी होता है—यह भावना मन में रखकर यदि पंच लोग निर्णय किया करें, तो समाज-संगठन कभी बिखर नहीं सकता।

गाँव या टोले-मुहल्ले के छोटे-मोटे झगड़े-झमेले पंचों द्वारा आसानी से सुलझाये जा सकते हैं। सच्ची पंचायत वही है, जिसके खरे फैसले से दोनों पक्ष के लोग पूर्ण सन्तुष्ट हो जायँ और उनके मन में यह बात बैठ जाय कि पंचों ने बड़ी सचाई से हमारे हक़ की रक्षा की है। यदि पंचायत का संगठन प्रभावशाली और साथ ही ईमानदार आदमियों से हुआ हो, तो बड़े-बड़े टंटे-बखेड़े भी सहज ही तय हो सकते हैं। ऐसा देखा गया है कि बड़े-बड़े संगीन मामले और पेचीले मुकद्दमे पंचायत के द्वारा निपटाये गये हैं, जिससे हजारों रुपये की बचत हुई है और आपस का मनमुटाव मिटकर मेल-जोल बढ़ गया है। यदि कोई पक्ष पंचायत मानने पर तैयार न हो, तो पंचायत-मंडल को

ऐसी चेष्टा करनी चाहिये कि उसे बड़ी शान्ति के साथ लाचार करके पंचायत के सामने झुकाया जाय। यदि पंचों को अपनी ईमानदारी और दरियादिली का पूरा भरोसा और अभिमान रहेगा, यदि पंचों पर सब श्रेणी के लोगों का दृढ़ विश्वास जमा रहेगा, तो कोई कारण नहीं है कि कोई शक्ति अड़कर पंचायत से विमुख हो और मुकद्दमेबाजी मे पैसे को पानी की तरह बहावे। इसलिये सबसे पहली बात है पंचों की ईमानदारी और मुस्तैदी। ईमानदारी की कद्र इस जमाने में भी है और आगे भी रहेगी। सचाई के सामने दुष्ट-से दुष्ट व्यक्ति को भी झुकना पड़ता है। हठी-से-हठी व्यक्ति भी सच्ची और पक्की पंचायत के आगे झुक सकता है।

किन्तु बात इतनी ही है कि पंच को हर हालत में इस बात का खयाल रखना चाहिये कि दोनों पक्षों को पंचायत के फैसले से सन्तोष भी हो और समाज की गुथी हुई कड़ी भी न टूटने पावे तथा किसी पक्ष पर तनिक बल न पड़े। हाँ, यह तो जरूर है कि दोनों पक्षों को समझा बुझा कर राजी करने और मुकद्दमेबाजी की हानियाँ सुझाने से ही काम बन सकता है। कुछ तीर झुके, कुछ कमान झुके, तब लक्ष्य सिद्ध होता है। दोनों पक्ष अगर अड़ियल टट्टू होंगे और पंच लोग नाकों दम होने से या झुँझलाकर उन्हें साँप-नेवले की तरह वैर साधने या झगड़ने के लिये छोड़ देंगे, तो काम जरूर खराब होगा। इससे समाज में अशान्ति और मनोमालिन्य फैलेगा, वैर-विरोध बढ़ेगा, समाज

ी सम्पत्ति भी नष्ट होगी और गाँव के बहुत-से मसले हल न हो सकेंगे।

मुकद्दमेबाजी से हमारे देश के किसानों और गृहस्थों की जो रबादी हो रही है, वह आँखों के सामने है। देखने में आता है के मिर्जई में उनचास पेवंद लगे हैं, पीठ पर सत्तू की गठरी लटक रही है, जूते फटे हुए हैं, घर-खर्च के लिये साहुकारों के दरवाजे खटखटाये जाते हैं, घर में स्त्रियों के तन पर लत्ते नहीं हैं, दोनों जून चूल्हा नहीं जलता, सयानी बेटी बिना ब्याह के छाती पर का पत्थर बन रही है, पढ़े बिना लड़के मूर्ख हुए जाते हैं; किन्तु वकील-मुख्तारों के यहाँ फेरे लग रहे हैं—नये नये कानून के नुक्ते ढूँढ़े जा रहे हैं—झूठ-फरेब का मकड़ा-जाल बुना जा रहा है—इजलास पर चढ़कर ईमान धोया जा रहा है। कैसी ना-समझी है! कैसी तबाही है! कितना बड़ा पतन है! भाइयो! अब भी तो चेतो। अब भी तो भूलभुलैया में से निकलो।

कहाँ तक कहें। बात तो तीखी है, मगर कहे बिना काम नहीं चलता। कठिन रोग की दवा तीखी ही होती है। हमलोग नित्य ही देखते हैं कि जो धन-धरती मरने के बाद यहीं पड़ी रह जाती है—नेकी-बदी के सिवा कुछ भी आत्मा के साथ नहीं जाता, तो भी ऐसे-ऐसे मुकद्दमेबाज महात्मा देखने में आते हैं कि उसी धन-धरती के लिए तिलक-कंठी-माला के साथ इजलास के कठघरे में जाकर साफ गंगा पी जाते हैं। गोमुखी में सुमिरनी फेरने लगेंगे तो घंटों आँखें न खुलेंगी, मालूम होगा कि कपिल-

मुनि साक्षात् आ पहुँचे; किन्तु गाय की पूँछ को पीपल के पत्ते के साथ हाथ में लेकर दूसरे की जायदाद को भी अपनी बपौती कहने में तनिक न हिचकेंगे। ऐसे ही बकध्यानी और प्रपंची लोगों के मारे समाज-संगठन की इमारत की ईंटें खिसकती चली जाती हैं। भगवान् ही ऐसे महापुरुषों को सुबुद्धि देकर सुधारें तो सुधार सकते हैं। हम तो यही कहेंगे कि समाज को संगठित रूप में देखने की इच्छा रखनेवाले सज्जनों को यह चाहिये कि वे रँगे सियारों को सुधारने के लिए सदा ईश्वर ही से प्रार्थना करते रहें; क्योंकि समाज-संगठन को तखड़-पखड़ या तहस-नहस करने के लिये ऐसे बगुला-भगत लोग बड़े ही भयंकर जीव होते हैं। दोरंगे लोगों की दोधारी नीति से समाज का जो अहित होता है, वह प्रत्यक्ष ही है। इसलिये हमें बनावटी भक्त और पुजारी के रूप में विचरने वाले मुकदमेबाजों को भी सच्ची राह पर लाने के लिये शान्तिमय प्रयत्न करना चाहिये। गोस्वामी तुलसीदासजी ने ऐसे लोगों को बार-बार प्रणाम करके बहुत ही ठीक लिखा है—

"जे जनमे कलिकाल कराला, करतब बायस भेष मराला।"
"चलहिं कुपन्थ वेद-मग छांड़े, कपट कलेवर कलिमल-भाँड़े।"
"परहित घृत जिनके मन माखी, जे पर-दोष लखहिं सहसाखी।"
"बंचक भक्त कहाइ राम के, किंकर कंचन कोह काम के।"

अस्तु। पंचायत-प्रथा पर हमें आगे के एक अलग अध्याय में विस्तार-सहित लिखना है, इसलिए यहाँ एक दूसरी आवश्यक बात

लिखते हैं। वह यह है कि समाज-संगठन की तो बात ही क्या, कोई भी संगठन केवल सद्भाव की ही नींव पर टिका रह सकता है। सद्भाव एक ऐसी चीज है, जिसके जरिये पशु-पक्षी भी वशीभूत हो सकते हैं। समाज का प्रत्येक मनुष्य यदि परस्पर सद्भाव और सद्व्यवहार रखना सीख ले, तो निश्चय ही संगठन की नींव पक्की हो जाय। सद्भाव ही के सहारे एकता भी टिक सकती है, जो संगठन की रीढ़ कही जाती है। सद्भाव ही के प्रभाव से भगवान रामचंद्र ने अपार वानरी सेना को ऐसा संगठित कर दिया था कि उसके सामने रावण की संगठित शक्ति भी निकम्मी हो गई। विना सद्भाव के किसी समाज में एकता नहीं रह सकती और एकता के विना संगठन भी असम्भव है।

सद्भाव से पशु-पक्षियों को भी मिला सकते हैं हम।
उनकी बनाकर फौज दुनिया को हिला सकते हैं हम॥
फिर कौन है वह नर जिसे हम जीत सकते हैं नहीं?
सद्भाव का बल भी भला जग में छिपा क्या है कहीं?
सद्भाव ही से सब मनुष्यो मे बढ़ेगी एकता।
उस एकता से ही मिटेगी देश की अविवेकता॥
अविवेक ही संगठन का संहार करता है सदा।
इस हेतु एका कर तुरत, अविवेक को कर दो विदा॥
एका हुआ कि समाज की दृढ़ नींव ही जम जायगी।
फिर शान्ति की ऊँची ध्वजा संसार मे फहरायगी॥

सब जातियाँ निज स्वत्व पाकर प्रेम से मिल जायँगी।
निज कर्म करके संगठन को सफल पुष्ट बनायँगी॥

लाखो ईंटों की एकता से बड़े-बड़े महानद बाँध दिये जाते हैं। पेड़ की असंख्य पत्तियों की एकता से ऐसी सघन छाया बन जाती है कि सूर्य की प्रचंड किरणें भी उसे छेद नहीं सकतीं। एकता से गठे हुए समाज पर भी दूसरों के दाँत नहीं गड़ सकते। भाइयो! देखो—

छोटे-छोटे पत्ते मिलकर छाया सघन बनाते हैं।
सूत-सूत मिलकर मदमाते हाथी को बँधवाते हैं।
एका करके ईंटों ने भी बाँध दिया पुल नदियों में।
हम तुम बिना एकता के ही उठ न सके हा! सदियों में॥

छठा अध्याय

धार्मिक संगठन

*लोग जो डर छोड़ छिपकर काम करते हैं बुरे।
पाप-चर्चा में निरत हो ध्यान धरते हैं बुरे॥
उनके अपराधों को जो है देखता रहता सदा।
दंड भी देता उचित उनको जो है रहता यदा॥
विश्व-भर का भरण-पोषण-त्राण जिसका काम है।
उस अगम अखिलेश को मम कोटि-कोटि प्रणाम है॥

---

* मैथिलीशरण।

जैसे समाज-संगठन का उद्देश्य है कि सब जाति के लोग अपने-अपने अधिकारों का उपयोग और अपने-अपने जातीय कर्म करते हुए स्वतंत्रता और शान्ति के साथ अपना जीवन व्यतीत करें, वैसे ही धार्मिक संगठन का उद्देश्य है कि एक साथ बसे हुए भिन्न-भिन्न धर्मों के मानने वाले लोग आपस में मिलजुल कर रहें और एक दूसरे के धर्म को आदर की दृष्टि से देखें तथा धर्म-भेद के कारण समाज में फूट न फैलने दें। चाहे कोई हिन्दू हो, मुसलमान हो, ईसाई हो, सिक्ख, जैनी, बौद्ध, पारसी या यहूदी हो, यदि एक ही स्थान में सब बसे हुए हों, अथवा एक ही स्थान के अन्न-जल से पले हुए हों; तो सबको अपने-अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करते हुए परस्पर मेलजोल बढ़ाये रखना चाहिये। सिक्ख, जैनी और बौद्ध तो हिन्दू हैं ही, इनमें तो परस्पर धार्मिक सहिष्णुता होनी ही चाहिये, और बहुत अंशों में है भी, किन्तु मुसलमान और पारसी तथा ईसाई भाइयों को भी भारतवर्ष के अन्न-जल-वायु का ध्यान रखते हुए अपने-आपको पहले हिन्दुस्तानी ही समझना चाहिये।

मजहब और जाति से कोई झगड़ा नहीं। जिसका जो मजहब हो, वह अपने मजहब के मुताबिक रहे; किसी दूसरे मजहब वाले को उसकी स्वतंत्रता में बाधा देने का अधिकार नहीं। मुसलमान अपनी मसजिदों में नमाज पढ़ें, अपने घरों में इबादत करें। हिन्दू अपने मंदिरों में पूजा-पाठ करें, अपने घरों मे यज्ञ-व्रत करें। न हिन्दू को मुसलमान की मसजिद से चिढ़ हो, न

मुसलमान को हिन्दू के मन्दिर से घृणा हो। अगर हिन्दू-मन्दिर के सामने से ताजिया का जलूस गुजर जाय, तो हिन्दुओं को एतराज़ न होना चाहिये; और अगर मसजिद के सामने से महावीरी झंडे का डंका बजता चला जाय, तो मुसलमानों को भी कोई उज्र न होना चाहिये। अगर हिन्दू-मन्दिर के घंटे-घड़ियाल से मुसलमानों की इबादत में खलल पड़ती है, तो धर्मप्राण हिन्दुओं को चाहिये कि मुसलमानों के नम्र निवेदन पर ध्यान देकर कोई ऐसी सुविधा कर दें कि उनकी ईश्वर-प्रार्थना निर्विघ्न हुआ करे। किन्तु मुसलमानो का भी यह कर्त्तव्य है कि मजहबी मामले में अनुचित दबाव से काम लेने का इरादा छोड़ कर मुहब्बत और नेक सलूक से काम लें।

हठधर्मी या धर्मान्धता किसी के लिए अच्छी नहीं है। हठ करने से किसी धार्मिक सिद्धान्त की रक्षा नहीं होती। ज़िद से मजहबी उसूल क़ायम नहीं रहते। मिलनसारी और नेकनीयती के साथ बड़े-बड़े पेचीले झगड़े सुलझाये जा सकते हैं। कोई भी ऐसा मजहब इस दुनिया में नहीं है, जो दिन-रात कलह-कोलाहल मचाने का पक्षपाती हो। कोई मजहब सचाई से खाली नहीं है। दिल की सफ़ाई का सबक़ हर-एक मजहब सिखलाता है। आपस की मुहब्बत हरएक मजहब में जायज़ है। फिर कोई कारण नहीं कि सब मजहब के लोग एक साथ मिल जुलकर न रहें। अगर सारी दुनिया में एक ही ईश्वर है और दुनिया के सभी लोग एक ही मालिक के बन्दे हैं, तो क्यों न सब लोग भाई

भाई की तरह मेल से रहें, हिल-मिलकर संसार को शान्तिमय बनावें। क्या मन्दिर और क्या मसजिद, क्या गिरजा और क्या गुरुद्वारा, सब तो परमात्मा की पूजा के ही स्थान हैं, सब जगह हृदय की शुद्धता दरकार है, सब ठौर प्रेम का आदर और जीव-दया का सत्कार है, सब में जाने के लिये सचाई की ही सीढ़ी पर क़दम रखना पड़ता है। फिर भी भिन्न-भिन्न धर्मों के नाम पर नाहक झगड़े-तकरार हुआ करते हैं। यह सब धर्म के लिए बड़े कलंक की बात है।

अतएव प्रत्येक धर्म के माननेवालों का यह कर्त्तव्य है कि अपने पड़ोसी धर्मवालों के साथ उदारता और सहनशीलता से बर्ताव करें। हिन्दू एक गिरजा, मसजिद और गुरुद्वारा को ईश्वर के स्मरण करने का पवित्र स्थान मानकर उनकी इज्जत करें। ठीक उसी प्रकार मुसलमान और सिक्ख तथा ईसाई भी हिन्दुओं के मन्दिर पर श्रद्धा की दृष्टि रक्खें। जान बूझकर कोई भी किसी के मजहब में दखल न दे, किसी के मज़हबी मामले में अन्यायपूर्ण छेड़खानी न करे। अगर हिन्दुओं को बाजे-गाजे के साथ कोई जलूस निकालना है, तो पड़ोसी मुसलमान भाइयों से प्रेमपूर्वक सलाह-समझौता करके उनकी रज़ामन्दी के माफिक मसजिद के सामने से जलूस निकाल ले जायँ। किसी को चिढ़ाने या खिझाने की नीयत से धार्मिक उत्तेजना को फैलने देना घोर मूर्खता है। ईश्वर की उपासना करनेवाले हर-एक मजहबी आदमी को साधारण बुद्धि से यह समझना चाहिये कि बाजे या शंख के

शब्द से सच्ची ईश्वर-प्रार्थना में कभी विघ्न नहीं पड़ सकता। वह ईश्वर-प्रार्थना ही कैसी, जिसमे चित्त एकाग्र न हो—मन एकान्त का अनुभव करके शान्त न हो। चित्त जब ईश्वर के ध्यान में लीन हो गया, तो फिर नगाड़े की आवाज़ से वह डोल नहीं सकता। इसी तरह की समझदारी से धार्मिक सहिष्णुता कायम रह सकती है, और उसीके द्वारा सब धर्मों के माननेवाले लोग एक ही वस्ती या एक ही मुहल्ले में अमन-चैन के साथ जिन्दगी बिता सकते हैं। एवमस्तु।

सातवाँ अध्याय

खेती-बारी

वरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा-सा जल रहा,
है चल रहा सनसन पवन, तन से पसीना ढल रहा !
देखो, कृपक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे;
किस लोभ से इस आँच में वे निज शरीर जला रहे ॥१॥
घन-घोर वर्षा हो रही है, गगन गर्जन कर रहा,
घर से निकलने को कड़ककर वज्र वर्जन कर रहा !
तो भी कृपक मैदान में करते निरन्तर काम हैं,
किस लोभ से वे आज भी लेते नहीं विश्राम हैं ॥२॥
बाहर निकलना मौत है, आधी अँधेरी रात है,
आः शीत कैसा पड़ रहा है, थरथराता गात है !

तो भी कृपक ईन्धन जलाकर खेत पर हैं जागते,
वह लाभ कैसा है न जिसका लोभ अब भी त्यागते ! ॥३॥
मध्याह्न है, उनकी स्त्रियाँ ले रोटियाँ पहुँचीं वहीं,
हैं रोटियाँ रूखी, खबर है शाक की उनको नहीं।
सन्तोष से खाकर उन्हें वे काम में फिर लग गये,
भर पेट भोजन पा गये तो भाग्य मानों जग गये ! ॥४॥*

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ ९० प्रतिशत किसान हैं, जो केवल खेती करके ही अपनी जीविका चलाते तथा घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। यह वह व्यवसाय है, जो सारे भूमंडल के जीवधारियों का भरण-पोषण करता है। इसी कृषि-व्यवसाय से सारे विश्व के व्यापार चलते हैं। इसी व्यवसाय की सफलता के लिये हमारे निर्धन भारत के गरीब किसान नाना प्रकार के कष्टों को सहन करते हैं। अनेक वाहरी और भीतरी विघ्न-बाधाओं और सुख-दुःखों का सामना करते हुए वेचारे किसान अपनी कड़ी कमाई का उपभोग करते हैं।

इस अध्याय में हम आगे चलकर कृषि-सम्बन्धी सारी ज्ञातव्य बातें बतावेंगे, जिनके द्वारा हमारे ग़रीब कृपक अपने खेती-बारी के कार्य में केवल दक्षता ही नहीं प्राप्त करेंगे, प्रत्युत अपने कृषि-सम्बन्धी कार्य की सफलता की ओर विशेष रूप से अग्रसर भी होंगे।

---

* मैथिलीशरण।

किसान कैसे सुखी हो सकते है ?—

हमारे गरीब भारत की उन्नति-अवनति का सारा दारमदार कृषि पर ही निर्भर है। केवल कृषि की उन्नति से ही भरपूर भोजन-वस्त्र पाकर हमारे किसान सुखी हो सकते हैं। भारत के किसानों की गरीबी के अनेक कारणों में सबसे जबदरस्त कारण है उनकी अविद्या और उनका सामाजिक दोष। यदि वे विदेशी वस्त्रों का व्यवहार त्याग कर अपने देश के कते हुए सूत का बुना हुआ कपड़ा (खद्दर) पहनना शुरू कर दें, तो निश्चय ही उनके भविष्य में अनोखा परिवर्तन दीख पड़े। ज्यों-ज्यों खद्दर का प्रचार अधिक बढ़ेगा, त्यों-त्यो कपास की माँग अधिक बढ़ेगी और इस भाँति खेती का भी महत्व बढ़ता जायगा। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय यह है कि शिक्षित मनुष्य कृषि-सम्बन्धी पुस्तकों का संग्रह करें और उनमें बताई हुई बातों पर पहले स्वयं अमल करें; फिर दूसरों को भी अमल करने की शिक्षा दें, तथा गाँव-गाँव में ऐसी समितियों की योजना करें, जो कृषि-सम्बन्धी नये आविष्कृत यन्त्रों को मँगावें और उनका अभ्यास करके स्वयं भी लाभ उठावें तथा दूसरों को भी उसके महत्व का दिग्दर्शन करावें। ऐसा होने से किसानों में नवीन उत्साह का आविर्भाव होगा और इस भाँति उनकी पतितावस्था का सुधार होने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जायगा।

कई प्रान्तों के मुख्य-मुख्य नगरों में कृषि-कालेज हैं, जिनमें कृषि-सम्बन्धी नये यन्त्रों का उपयोग, खाद बनाने की रीति,

फसलों के बोने तथा पकने का समय, जुताई-सिंचाई आदि विषयों की शिक्षा दी जाती है। कृषकों की भावी सन्तानें यदि अन्य विद्यालयों में न भेजी जाकर कृषि-विद्यालयों में ही पढ़ने को भेजी जायँ और खेती-बारी का ही काम सीख लें, तो किसान अपनी पर्णकुटी में बैठे ही बैठे आनन्द का उपभोग कर सकते हैं।

जब तक हमारे घृणित सामाजिक एवं घरेलू दोषों का ध्वंस न होगा तब तक हमारे भारत के किसान इसी प्रकार दीन, दुखी एवं दरिद्र बने रहेंगे और कर्ज के लिए धनीमानी आदमियों के दरवाजे खटखटाया करेंगे। जो किसान जरा सी बात के लिए मुकद्दमेबाजी करके हजारों रुपये खर्च कर डालते हैं, जो अपनी सन्तानों के विवाह में रंडी नचाकर अनावश्यक व्यय कर डालते हैं, वे यदि मितव्ययिता का पाठ पढ़ें और अपने कमाये हुए रुपयों से कृषि-सम्बन्धी यंत्रों को मँगावें तथा दूसरे निर्धन किसानों को कम-से-कम व्याज पर रुपये दें, तो वह दिन दूर नहीं जब कि हमारा देश भी अन्य विदेशों की तरह धन-धान्य से पूर्ण हो जाय।

खेती में गोरक्षा का महत्त्व—

जैसे यूरोप के देशों में कृषि के कार्य घोड़ों तथा इंजिन द्वारा होते हैं, वैसे भारतवर्ष में नहीं होते। यहाँ तो खेती के समस्त कार्य बैलों द्वारा ही होते हैं। परन्तु खेद है कि हमारे देश के किसान अपने पशुओं की शारीरिक पुष्टता और स्वच्छता की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं देते। गौओं के चारे, गोशाले आदि की गन्दगी तथा

चरागाह की कमी से हमारे देश के पशुओं की हालत और भी बद तर बनी हुई है। प्रत्येक किसान को इस महत्वपूर्ण विषय की ओर विशेष रूप से ध्यान देना अपना कर्त्तव्य समझना चाहिए जब हम जानते हैं कि पशुओं के नीरोग रहने पर ही हमारे खेती के कार्य सुचारु रूप से चल सकते हैं, तो उनके निवास-स्थान, चरागाह तथा चारे आदि का सुप्रबन्ध करना हमारा मुख्य कर्त्तव्य होना चाहिए। हम अपने रहने के लिए तो अच्छे-से-अच्छे मकान बनवाते हैं; किन्तु उन बैलों को, जिनपर हमारे जीवन-मरण का प्रश्न निर्भर है, गोशालों-झोपड़ों तथा कच्चे मकानों में रखते हैं! गोशाले का बनावट इस प्रकार की होती है कि उसी में बेचारे बैल मल-मूत्र त्यागते और उसी पर बैठकर सड़ते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि मच्छड़ उनको रात-भर इतना तंग करते हैं कि बेचारे रात-भर पूँछ-पैर फटफटाते रह जाते हैं। गोशाले की बनावट यदि ढालुआँ हो और पशुओ के पैर की ओर एक पतली नाली बनवा दी जाय जिससे मूत्र आसानी से बाहर निकल जाया करे, तो निश्चय ही उनके आरोग्य का एक बहुत बड़ा साधन हो जाय। गोशाले के चारो ओर हवादार खिड़कियों का प्रबन्ध रहे जिसमें उन्हें स्वच्छ वायु सेवन करने को मिले। मच्छड़ आदि दूर करने के लिए गंध-धूप-दीप का प्रबन्ध रहे। ऐसे उपायों से वे गोशाले के कुप्रबन्ध से उत्पन्न हुए कष्टों से सहज ही छुटकारा पा सकते हैं।

प्रायः गाँवों में देखने में आता है कि बैलो के आगे सूखे

पुआल पड़े हुए हैं और उनके मालिक अलग बैठकर हँसी-मजाक उड़ा रहे हैं। यह उनके आलस्य का एक बहुत बड़ा उदाहरण है। यदि उसी पुआल की कुटी काटकर उसमें खली और अन्न को सम्मिलित कर खिलाया जाय तो बेचारे भर-पेट खायँ और सुखी रहें। इतना ही नहीं, चरागाह का भी उत्तम प्रबन्ध होना परमावश्यक है। वह चारों ओर से रक्षित दशा में होना चाहिए ताकि जब तक चारा अच्छी तरह तैयार न हो जाय तब तक पशुओं को उसमे न छोड़ा जाय। इस क्रम का उल्लंघन करने से घास की जड़ें कुचल जाती हैं और उनकी शिखा कड़ी हो जाती है। चारे का मुलायम और हरा होना ठीक उसी प्रकार स्वास्थ्यकर है जैसे मनुष्य के लिए दूध और अन्न। यह भी मानी हुई बात है कि जब तक हमारे बैल सुखी और स्वस्थ नहीं रहेंगे तब तक किसी प्रकार हम खेती मे उन्नति नहीं कर सकते। अत. हमारी खेती मे तभी आश्चर्यजनक उन्नति हो सकती है, जब हम उनके गोशाले को साफ़-सुथरा रखें, चारे का उत्तम प्रबन्ध करें, तथा प्रशस्त चरागाह रखें।

जुताई—

खेती में जुताई और सिंचाई सब से मुख्य काम हैं। जिस प्रकार मनुष्य के लिए अन्न-जल आवश्यक है, ठीक उसी प्रकार खेत के लिए ये दोनों क्रियाएँ आवश्यक हैं। इनके लिए बड़ी सावधानता और चतुरता की जरूरत पड़ती है। धान, मूँग, उरद अरहर, ज्वार आदि अनाजों की खेती बरसात आरम्भ होते ही

शुरू होती है। गेहूँ, जौ, चना, मटर, मसूर आदि अनाजों की खेती बरसात के अन्त में होती है। इन अनाजों के बोने से पहले खाद की और फिर जुताई की आवश्यकता पड़ती है। बरसात के पहले बोये जानेवाले खेतों की जुताई कम करनी पड़ती है और वर्षा के बाद बोये जाने वाले खेतों की अधिक। पहले के पाँच अनाज तो दो-तीन बार की जुताई में ही बो दिये जाते हैं, पर दूसरे पाँच अनाज आठ-दस बार की जुताई के बाद बोये जाते हैं। वर्षा के बाद होने वाली खेती चौमास कहलाती है।

खेतों की जुताई भले प्रकार होने से मिट्टी मुलायम होती और अनाजों की उपज-शक्ति बढ़ती है। जुताई होने पर ही बीज बोये जाते हैं और तभी वे बीज अपने भोज्य पदार्थ खींचने में समर्थ होते हैं। जुताई होने से ही बीजों को अपनी जड़ें फैलाने में आसानी होती है। अतएव खेतों की जुताई तभी होनी चाहिए, जब खेत न तो बहुत गीले हों और न बहुत सूखे ही। गीली दशा में ही यदि खेत जोते जायँ तो उनके ढेले सूखकर कठोर हो जायँ और सूखी दशा में जोते जाने पर ढेले इतने कठोर हो जाते हैं कि बड़ी मुश्किल से टूटते हैं।

खेत को खूब जोतने से उसके बेकाम पौधे कटकर उखड़ जाते हैं और मिट्टी में मिलकर एक प्रकार से खाद की उपयोगिता सिद्ध करते हैं। खेत जोतेजाने के बाद बीज बोकर हेंगा का उपयोग करते हैं जिससे जुताई के ढेले टूट जायँ और भूमि समतल हो जाय।

बोने के पहले खेत को खाद देना और जुतवाना पड़ता है। खेत जोता न जाय, तो मिट्टी बड़ी कड़ी होती है, जिसमें बीज अच्छी तरह जड़ें नहीं फैला सकता और न बढ़ने के लिये मिट्टी से सामग्री ही खींच सकता है। जोतने से ऊपरवाली मिट्टी साधारण हल से पाँच-छः इन्च गहरी और नई तरह के हल से नौ-दस इन्च गहरी खुद जाती है। कई बार के जोतने से सारे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाती और पोली पड़ जाती है। ऐसी मिट्टी में जड़ें सहज ही बिना रोक फैलती हैं और पौधे के लिये भोजन खींच लाती हैं। यह भोजन पौधे को तभी मिलता है, जब खेत बिल्कुल सूख न जाय और समय-समय पर पानी मिलता रहे। गेहूँ और जौ के लिये खेत को आठ-दस बार जोतना पड़ता है; क्योंकि जौ-गेहूँ के पौधों की जड़ें बड़ी मुलायम होती हैं और नीचे बहुत दूर तक नहीं जातीं।

जोतने से एक लाभ यह भी होता है कि खेत में पानी सोखने का बल हो जाता है। सूखी और कड़ी जमीन में जो पानी पड़ता है वह बह जाता है, पर भुरभुरी और नरम जमीन में जो पानी पड़ता है वह पहले मिट्टी में सोखता है। जब मिट्टी अच्छी तरह पानी सोख लेती है, तभी पानी बह सकता है। धूप और हवा भी मिट्टी को अच्छी तरह लग जाती है, जिससे मिट्टी का बल बढ़ जाता है।

जोतने के बाद यदि खेत योंही छोड़ दिया जाय तो बहुत जल्द सूख जाता है; क्योंकि उसकी मिट्टी बहुत फैल जाती है

जिससे खेत का पानी बहुत उड़ जाता है। इसलिये जोत चुकने पर और बीज बो देने पर खेत को हेंगा देना चाहिये यानी पटेला फिरवा देना चाहिये। हेंगा देने से ढेले फूट जाते हैं, मिट्टी चौरस हो जाती है, जिससे खेत की तरी बनी रहती है; बीज भी मिट्टी के नीचे चले जाते हैं, जिससे चिड़िया या अन्य जानवर बीज को उखाड़ कर खा नहीं सकते।

सिंचाई—

खेती की सिंचाई एक ऐसा आवश्यक काम है जिसके बिना बीज उपज ही नहीं सकते। इसके लिए अनेक साधन हैं। पहला साधन वर्षा है जो ईश्वराधीन है। वर्षा का पानी सिंचाई के लिए बहुत उत्तम है। यह प्राकृतिक सिंचाई है। दूसरा साधन कृत्रिम है, जिसे गृहस्थ को काम मे लाना पड़ता है। जब वर्षा नहीं होती तो कूँओं, नहरों और तालावों के जल से सिंचाई की आवश्यकता को पूर्ति कर लेते हैं। इन कृत्रिम साधनों के लिए कई कृत्रिम ढङ्ग काम में लाते हैं। दोन, मोट, ढेकुली आदि साधनों से खेत की सिंचाई करते हैं। यही सिंचाई बीजो मे उर्वराशक्ति लाती है और खाद की तरी को बीजों मे पहुँचा कर उपज-शक्ति पैदा करती है।

सिंचाई के सम्बंध मे दो बातों को आवश्यकता होती है, एक तो जल का प्राप्त होना, दूसरे—वह जल किस प्रकार पौधो तक पहुँचाया जाय। पानी की प्राप्ति के स्थान हैं—(१) कुएँ, (२) सोते-झरने, (३) नदी-नाले, (४) तालाब, गड़हे, पोखरे,

पोखरियाँ, झील, (५) नहरें। इस देश के अधिक भागों में कुएँ सिंचाई के प्रधान साधन हैं। बहुत-से स्थानों पर नहरें बनती जाती हैं। पर नहरें सब जगह प्राप्य नहीं हैं और सब-किसीके बनाने के बस की नहीं। कुँओं मे गहराई के कारण पानी के भाप बनकर उड़ने का भय कम रहता है। पर अधिक गहराई से जल का उठाना बड़ा कठिन होता है और उनसे सिंचाई में अधिक परिश्रम पड़ता है। बिना बँधे हुए कुँओं के गिर जाने का अनेक कारणों से भय रहता है, क्योंकि उनमे दृढ़ता नहीं होती। ऐसा भी देखा जाता है कि कहीं-कहीं बहुत पुराने कच्चे कुएँ वर्त्तमान हैं। वे सुदृढ़ हैं और उनके गिरने का भय नहीं। यह मिट्टी का गुण है। जहाँ की जैसी मिट्टी हो वहाँ वैसा कुआँ बन सकता है। बँधे हुए कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं। जहाँ कड़ी मटियार धरती पड़ी है वहाँ कच्चे कुएँ बहुत दिनों तक काम देते हैं। पहाड़ी स्थानों मे कुछ पानी सोते और झरनों द्वारा बहता है। इसको एकत्रित करके निचास की धरतियों को सींचने के काम मे लाते हैं। छोटी नदियाँ, नाले भी सुभीते के अनुसार सिंचाई के काम में लाये जाते हैं। पक्के तालाब प्रायः सिंचाई के काम में बहुत कम आते हैं, क्योंकि उनमें से पानी के निकास का कोई रास्ता नहीं होता। उनसे कृषि को तथा जन-साधारण को यह लाभ होता है कि प्यासे पशु और मनुष्य पानी पी सकते हैं। प्रायः इस बात का विचार किया जाता है कि कम-से-कम एक ओर गऊघाट बना दिया जाय, जो ढालुआँ हो, जिससे पशु सुगमता से पानी

तक उतरकर पानी पी सकें। कच्चा पोखरा प्रायः इस प्रकार खोदा जाता है कि उसकी मिट्टी जो निकलती है वह उसके चारों ओर फेंकी जाती है। थोड़ी थोड़ी जगह मिट्टी की मेंड़ के बीच में छोड़ दी जाती है जिसमें बरसाती पानी आकर एकत्रित हो सके। ऐसे पोखरों से पिछले धान तथा सिंचाई का काम चल जाता है। रबी की पिछली सिंचाई तथा ऊख की भराई के लिये बहुत कम पोखरों मे पानी मिलता है। अतः पोखरा खोदने में ऐसी भूमि छाँटनी चाहिये जिससे उसका पेंदा और दीवारें चिकनी ठोस मिट्टी की बन जायँ। पहाड़ी जिलों में दो पहाड़ियो तथा चट्टानों के बीच में बाँध डालकर तालाब बना देते हैं। इन्हे कहीं-कहीं 'सागर' या 'बाँध' कहते हैं। गाँव में मकान बनाने के लिये बस्ती के पास की भूमि से मिट्टी ली जाती है। मिट्टी उठाने की मात्रा के अनुसार छोटे-छोटे गड्हे या पोखरियाँ बन जाती हैं। सुभीते के अनुसार ये भी सिंचाई के काम में लाई जाती हैं।

सिंचाई के लिये कम गहराई से पानी उठाने की सबसे प्रचलित रीति 'दौरी' से पानी उठाना है। दौरी अधिकतर बाँस, बेंत या खजुर की बनाई जाती है। इसमें दोनो तरफ दो-दो डोरियाँ लगी रहती हैं। इसमें परिश्रम पड़ता है, परंतु चार आदमी बारी बारी करके दिन भर काम करते हैं। दौरी से चार फीट की ऊँचाई तक बहुत अच्छी तरह काम चलता है। यदि आठ फीट पानी उठाना है तो दो दौरी चार-चार फीट पर सीढ़ी की तरह लगाकर काम करते हैं। एक अनाथ स्त्री को दौरी चलाने के लिये को

भी सहायक नहीं मिला। उसने एक ओर बाँस गाड़कर उसमें डोरी का सिरा बाँधा था, दूसरी ओर स्वयं रस्सी पकड़कर वह डोरी चलाती थी। तीन-चार दिन में उसने अपने खेत सींच लिये!

लगभग दस फीट की गहराई से पानी उठाने के लिये 'ढेकुली' का प्रयोग भी किया जाता है। कभी-कभी एक-एक कुएँ पर दो ढेंकुली लगाकर काम लिया जाता है। कम गहराई से पानी उठाने में कहीं-कहीं लोहे या टीन के 'दोन' का भी प्रयोग किया जाता है। दोन प्रायः पेड़ की पेडी खोखली करके भी बनाते हैं। संयुक्त प्रांत के उत्तरी और दक्षिणी भागों में तो 'रहट' का प्रयोग किया जाता है। कुएँ तथा अन्य जलाशय के मुहाने पर एक चर्खी लगी होती है, जिसपर दो रस्सियों के बीच में मिट्टी के छोटे-छोटे डबले (जलपात्र) बँधे होते हैं। रस्सी माला के समान चर्खी पर पड़ी होती है। इसी में मिट्टी के बरतन थोड़ी-थोड़ी दूर पर बँधे होते हैं। यह चर्खी लम्बी धुरी के एक पहिये से इस प्रकार सम्बन्ध रखती है कि इसके घूमने से चर्खी लगातार घूमती रहती है। चर्खी के घूमने से उसपर मालाकार रस्सी में बँधे डबले नीचे से ऊपर आते हैं। नीचे के डबले जल भरे हुए आते हैं; और जब ऊपर चर्खी पर पहुँचते हैं, स्वयं उलटकर जल त्याग कर देते हैं। किन्तु 'पुरवट' गहराई से पानी उठाने की सबसे सुगम और अत्यन्त लाभदायक रीति है। एक पुर में प्रायः ६० सेर से लेकर, जैसा छोटा-बड़ा मोट (पुर या पुरवट) हो, चार सौ सेर तक पानी आता है।

वर्षा का जल, सिचाई के लिये, अत्यन्त लाभकारी समझा जाता है। प्रथम लाभ यह कि यह बिना मूल्य मिल जाता है। दूसरे यह कि वर्षा के जल में पौधों के भोजन-पदार्थ अधिक रहते हैं। तीसरे यह कि उसमें पौधों की बाढ़ के मुख्य अंश आवश्यक परिमाण में परिपूरित रहते हैं। कुएँ और नहरो के जल मे पृथ्वी के बहुत-से बारीक खनिज पदार्थ सम्मिलित रहते हैं। कुएँ के जल में प्रायः शोरे का अंश अधिक पाया जाता है। इस कारण कुएँ का जल नहर के जल से श्रेष्ठ होता है। स्वच्छ जल पौधों को हानि नहीं पहुँचा सकता। सड़ा हुआ, गंदा, काई लगा हुआ जल इस कारण से वर्जित नहीं है कि पोधों को बदबू असर करेगी, वरन् इस कारण से कि उसमें हानिकारक पदार्थ घुले रहते हैं।

किस समय खेतों को जल की आवश्यकता होती है, यह पौधों को मुर्झाते देखकर या उनको पीला होते देखकर अवसर विचारकर जब कृषक अपने खेतों की सिंचाई करने का निश्चय करे तो उसको उचित है कि वह खेत-भर में पानी बराबर दे। कहीं अधिक और कहीं कम जल से खेतों को समान लाभ नहीं पहुँच सकता। पानी बराबर पहुँचाने के लिये कृषक खेत की जुताई के सम्बंध में ध्यान दे और खेतो को समतल बना ले। क्यारी और मेंड़ इस प्रकार बनानी चाहिये कि खेत में बीच से होकर अथवा खेत के किनारे-किनारे पानी सरलता से सब जगह पहुँच सके। पानी इधर-उधर बहाने से पानी और परिश्रम की हानि होती तथा खेतों को भी हानि पहुँचती है। अनावश्यक

पानी के सोखने से कृषक के जल की तो हानि है ही, कोमल फसल को भी अधिक पानी से हानि पहुँच सकती है। जिस स्थान से पानी खेत में प्रवेश करता है उसे "धावा" अथवा "मुहारा" या "मुहानी" कहते हैं। यह खेत से कुछ ऊँचा होना चाहिये, जिससे पानी सारे खेत मे बराबर पहुँच सके।

खाद और उसका व्यवहार—

खाद का विषय किसान के लिए बडे महत्व का है। विचारशील किसान हो तो इसके उपयोग से अपने खेत की उपज-शक्ति बहुत अधिक मात्रा में बढ़ा सकता है। खाद वह वस्तु है, जो पैदावार बढ़ाने में आश्चयजनक शक्ति रखती है। अतएव किसानों को खेतों में उपजाऊ खाद डालने की ओर केवल ध्यान ही नहीं देना चाहिए बल्कि इसका उपयोग कर खेत की पैदावार की वृद्धि भी करनी चाहिए।

खादों का व्यवहार दो उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किया जाता है। पहला है पौधो को भोजन पहुँचाकर उनकी निर्बलता दूर करना और दूसरा है खेतों की उपज बढ़ाना। खाद कई प्रकार की होती है। गोबर की खाद, भेंड़-बकरी की लेंडी की खाद, घोड़े की लीद की खाद, सूअर की पाँस, हरियाली की पाँस, महुए की खली की पाँस, नीम की खली की पाँस आदि। गोबर की खाद सब जगह सबको सुलभ है। यह सब तरह के पौधों को लाभ पहुँचाने वाली खाद है। अतः गोबर को यत्नपूर्वक

एकत्र कर संचय करना चाहिए। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि गोबर की या किसी अन्य वस्तु की खाद खुले मैदान में न रखनी चाहिए। ऐसा करने से उसकी तरी नष्ट हो जाती है। अतएव उसके रखने की सब से अच्छी रीति यह है कि गड़हा खुदवा कर रखा जाय। साथ ही उसके चारो ओर मेंड़ बना देनी चाहिए ताकि वह पानी के निकास से बचा रहे। गड़हे की दीवार पीट कर ऐसी मजबूत कर देनी चाहिए कि वह खाद की तरी को सोख न जाय। खाद जितनी ही पुरानी होती है, उतनी ही उसमे पौधो की उपज-शक्ति बढ़ाने की शक्ति होती है। मूत्र को गोबर में मिलाकर रखने से अधिक लाभ होता है। मूत्र खाद के लिए एक मूल्यवान वस्तु है। पत्तों की खाद को गो-मूत्र में सड़ा कर रखना चाहिए। यह खाद पाँच-छः मास में काम के योग्य हो जाती है। खाद खेतों में कुरेद कर तुरन्त जोत देना चाहिए ताकि बराबर खेतों में फैल जाय। भेंड़-बकरियों की खाद के सम्बन्ध में तो प्रचलित रीति यह है कि उन्हें झुंड-के-झुंड खेत में बैठाते हैं। भेंड़-बकरियों की खाद बहुत लाभदायक समझी गई है। घोड़े की लीद की खाद तो सब तरह से अच्छी होती है। इसका उपयोग करने पर ही इसकी असलियत का पता चल सकता है। यह खाद अत्यन्त गर्म होती है। इसे कम-से-कम चार मास गड़हे में सड़ाना चाहिए। पुराने मकानों की नोनी मिट्टी की खाद, तो गोभी, बैंगन, तम्बाकू इत्यादि फसलों के लिए खूब लाभप्रद होती है। मछली की खाद फलदार वृक्षों की जड़ में डाली

जाती है। पर 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धान्त माननेवाले ऐसा कदापि नहीं करेंगे। प्रायः देखने में आता है कि तालावों का पानी सूख जाने पर मछलियाँ आप-से-आप मर जाती हैं। उन्हें यत्नपूर्वक रखना चाहिए। उनकी खाद फलदार वृक्षों के लिए अमृत के तुल्य गुण करती है। मछलियों को सुखाकर कूट देते हैं और इसी की खाद का व्यवहार करते हैं। गेहूँ, जौ, ऊख, तम्बाकू के लिए रेंड़ी की खली भी अच्छी खाद बतलाई गई है। गड़हे, पोखरे और नदी की बाढ़ द्वारा लाई गई नई मिट्टी भी खाद के लिए काम में लाई जाती है। यह अत्यन्त बलिष्ठ होती है। अतएव खाद-सम्बन्धी इन वस्तुओं को खेतों में डालकर किसानों को पैदावार बढ़ाने में सदा प्रयत्नशील होना चाहिए।

खाद दो तरह की होती है—(१) जीवित खाद, (२) खनिज खाद। जीवित प्राणियों से प्राप्त खाद को 'जीवित खाद' कहते हैं। खान से अथवा निर्जीव पदार्थों से प्राप्त खाद को 'खनिज खाद' कहते हैं। हड्डी से बनी हुई खाद में प्रायः पचास फी सदी से अधिक खनिज पदार्थ रहते हैं। पशुओं का गोबर, मूत्र, पशुशाला का झारन-बहारन, खराब भूसा, सड़े गले पत्ते, खली इत्यादि पदार्थ गोबर की खाद में शामिल रहते हैं। यह खाद अत्यन्त साधारण है; सब जगह और सब को मिल सकती है। इसका दाम कम है और यह पौधों को हर प्रकार के लाभ पहुँचाती है। इसमें उनके भोजन के सभी अंश रहते हैं। इसकी भली भाँति रक्षा करने से पौधों के भोजन के उपयोगी अंशों की बचत हो

जाती है और उससे पौधो को अधिक लाभ पहुँचता है। अतः गोबर को खाद के लिये बचाना चाहिये। ईन्धन के लिये लकड़ी या कोयला काम में लाना चाहिये। खाद का असर निम्नलिखित कारणों के अनुसार पड़ता है—(१) खाद रखने की रीति, (२) पशुओं की अवस्था, (३) पशुओं का भोजन, (४) नई या पुरानी खाद।

अच्छा भोजन पानेवाले पशुओं से प्राप्त खाद उत्तम होती है। वृद्ध पशु के गोबर में खाद के अंश अधिक होते हैं। नई खाद लाभदायक नहीं होती। पुरानी खाद में पौधे का भोजन बना हुआ मौजूद रहता है। इसकी अधिक रक्षा करनी चहिये। पशुशाला यदि पक्की बनी हुई है तो उसकी नाली द्वारा पशुशाला का धोवन, मूत्र, इत्यादि बह सकते हैं। इनको एक नाद में एकत्रित करके क्रमशः खाद के गड़हे में एकत्रित करते जाना चाहिये। कच्ची पशुशाला में घास, पत्ती, नई मिट्टी अथवा बालू बिछाकर मूत्र एकत्रित करना चाहिये। जब पत्ती, मिट्टी इत्यादि में मूत्र सोख जाय तो उसे खाद के गड़हे में गोबर के साथ एकत्रित करना चाहिये। जब गड़हा भर जाय तो उसको मिट्टी से ढाँक देना चाहिये। वर्षा और धूप से बचाने के लिये उसपर एक छप्पर डाल देना चाहिये। मिट्टी की तह एक बित्ता काफी होगी। इस रीति से रक्खी हुई खाद छः महीने में काम के लायक हो जायगी।

रोगी पशुओं के मल-मूत्र कदापि खाद के काम में न लाना

चाहिये। इससे पशुओं में रोग उत्पन्न होने का भय रहता है।

जब खेतो की जुताई आरम्भ की जाती है, उसी समय खाद खेतों में देकर जोत देना चाहिये। खाद खेतों में बराबर फैल जाय, इस बात पर पूरा ध्यान देना चाहिये। जुताई के बहुत दिनों पहले से खाद खेतों में कदापि न फैलानी चाहिये। खाद ढोने के लिये बहँगा, टोकरी, गदहा, बैल, भैंस, गाड़ा और गाड़ी का प्रयोग सुविधा के अनुसार किया जा सकता है।

खाद देने की दूसरी रीति यह है कि कई महीनो तक पशु उसी खेत में बाँधे जाते हैं, जिसमें खाद देना जरूरी होता है। इस रीति के अनुसार मूत्र की खाद खेत में सोख जाती है और गोबर की खाद की ढोवाई और उसके परिश्रम की बचत होती है। किन्तु गड्हे में सड़ी हुई खाद पौधों को शीघ्र लाभ पहुँचा सकती है।

हाँ, गोबर के साथ मिलाई हुई सूखी राख की खाद, घूर की खाद के समान, सब फसलों के लिये उपयोगी होती है। राख के छिड़कने से पौधों पर लगे हुए कीड़े-फतिंगे मर जाते हैं अथवा बढ़ने नहीं पाते। दाल-तरकारी आदि के पौधों पर अक्सर राख छिड़की जाती है।

कहते हैं, खेत में भेंड़-बकरियों तथा पशुओं के बैठने से धरती को उनके अंग की गर्मी से भी लाभ पहुँचता है। खेतों में भेड़ों का, प्रथम जुताई के बाद, बैठाया जाना उचित है अथवा जब खेत जुतकर तैयार हो जायँ। हेंगा देने के समय बैठाने से भी लाभ होता है। ऊख, गेहूँ, जो इत्यादि मूल्यवान् फसलों में भेंड़-बकरियों

की खाद दी जाती है। उन्हें बिठालने के बाद खेतों को जोत देना चाहिये। घोड़े के अस्तबल के झाड़न-बटोरन, घास, बिछाली और लीद से भी अच्छी खाद प्राप्त होती है। घुड़साल की खाद, गोबर की खाद की अपेक्षा, अधिक गर्म होती है। सड़ने के लिये इसे आठ महीने के लगभग गड्ढे में पड़ा रहने देना चाहिये।

हरियाली की खाद से सजीव अंश की वृद्धि होती है, धरती खुल जाती है। जब पौधा फूलने की अवस्था को पहुँचता है, फसल को धरती में जोत देते हैं। कुछ काल में वह सड़कर धरती में मिल जाती है। खाद के लिये सनई, कुलथी, ग्वार, लोबिया, मोथी, नील सरीखी फसलें अच्छी होती हैं, जिनमें सनई सबसे सुलभ और सस्ती है। तिल, अलसी, कुसुम या बर्रे, सरसों, लाही इत्यादि की खानेवाली खलियों की खाद का प्रयोग करने के लिये यह अच्छा है कि उनको पशुओं को खाने के लिये दिया जाय और उनका गोबर खाद के लिये सड़ाकर काम में लाया जाय। महुए की खली, नीम की खली, कूटकर खेतों में दी जाती है। उससे भी अच्छी खाद का काम चलता है। खाने की खली प्रति एकड़ पाँच मन के लगभग काम में लाई जाती है। खली देने के बाद सिंचाई करनी चाहिये। रेंड़ी और नीम की खली से खेत के कीड़े-मकोड़ों की क्षति में सहायता मिलती है, पौधे नीरोग रहते हैं। जिन खेतों में रेंड़ी की खली दी जाती है, वे गहरे हरे रंग के हृष्ट-पुष्ट दिखाई पड़ते हैं।

हड्डी भी बड़ी-बड़ी लोहे की चकियों में तोड़ी जाती है और

पीसने के बाद खाद के काम में लाई जाती है। तेजाब डालकर भी हड्डी गलाई जाती है। यदि गोबर की खाद के गड्ढे में हड्डी का मैदा, बुरादा अथवा चूरा सड़ने के लिये डाल दिया जाय, तो उस खाद की उत्तमता का नतीजा शीघ्र देखने में आ सकता है। देशवासियों को उचित है कि अपने-अपने गाँव में मरे हुए पशुओं की हड्डियाँ चमारों द्वारा एक गड्ढे में एकत्रित करते रहें, उनमें कुछ ताजा गोबर और पानी डालते रहें इससे हड्डियाँ गल जायेंगी और खाद का काम देंगी।

छोटे गड्ढों और पोखरियों में मछली, घोंघे, सिवार, मेंढ़क इत्यादि पानी सूखने पर मिट्टी में मिल जाते हैं और आस-पास का गाँव का पानी, जिसमें पशुओं का गोबर-मूत्र इत्यादि मिला होता है, घुलकर उनमें पहुँचता है। उनकी मिट्टी भी बड़ी उपजाऊ होती है। प्रति एकड़ लगभग दस मन ऐसी मिट्टी दी जा सकती है।

चूनेवाली मिट्टी, घोंघा, सीपी, बुझा हुआ चूना, पौधों के लिए अच्छी खाद है। यदि गेहूँ, जौ इत्यादि की फसलें बाढ़ के समय पीली पड़ गई हों, तो उनकी अवस्था का कारण समझकर चूने की खाद देने से वे ठीक अवस्था में आ जाती हैं। चूना मेमेशा बुझाकर खाद के काम में लाना चाहिये, क्योंकि बे-बुझा चूना बहुत गर्म होता है। चूना धरती पर रखकर बड़ी सावधानी से उस पर थोड़ा-थोड़ा पानी छिड़कना और खुद जलने से बचना चाहिये। बुझा हुआ चूना खेत में फैलाकर हल द्वारा शीघ्र धरती

मे मिला देना चाहिये। चूना दालवाली फसलों को विशेष करके लाभदायक है। प्रति एकड़ लगभग तीन से चार मन चूने की खाद खेत बोने से पहले दी जाती है। एक ही खेत में प्रति वर्ष में एक वार इस खाद का देना काफी है, क्योंकि यह तेज होती है।

मूँगफली की खेती—

मूँगफली के वहुत-से नाम हैं। इसे चीना बादाम, राळी वगैरह भी कहते हैं। यह इस देश की पुरानी फसलों में से नहीं है। विद्वानों का मत है कि इसका उत्पत्ति-स्थान दक्षिण अमेरिका है। इसकी खेती, दूसरे सूबे के देखते, हमारे यहाँ वहुत कम होती है। हमारे दोआव में दूमट जमीन में मूँगफली की बहुत अच्छी खेती हो सकती है। अपनी जातिवाले पौधे से इस में यह फर्क है कि इसकी फळी जमीन के भीतर पैदा होती है। शुरू-शुरू में लोग इसको भून कर चवेने की तरह इस्तेमाल करते थे। ज्यों-ज्यों इसकी अच्छाई मालूम होने लगी, त्यों त्यों इसका व्यवहार बढ़ता गया। अब इसका तेल बनता है। इसका एक तरह का घी भी बनता है। अपने देश में इसका खूब प्रचार होना चाहिए। यह एक ऐसी फसल है जो थोड़ी-सी मेहनत से वहुत अच्छी मिकदार में पैदा हो सकती है। एक फळी मे एक से चार तक दाने होते हैं और इन दानों पर पतली झिल्ली हल्के गुलाबी रंग से गहरे लाल रंग तक की होती है। उसके ऊपर कड़ा छिलका होता है।

मूँगफली बहुत तरह की होती है; मगर इनमे से दो का ज्यादा रिवाज है। एक जाति की मूँगफली का फल छोटा, छिलका लाल रंग

का, पौधा सीधा, गुच्छेदार और फली जड़ की ओर डंठोली और पास-पास होती है। दूसरी जाति का फल बड़ा, पौधा हल्के भूरे रंग का जमीन पर फैला होता है। फल छितरी हुई टहनियों की चोटी वा उसके पास लगते हैं। इस जाति का छिलका गहरे गुलाबी रंग का और फल बड़ा होता है। इसकी पैदावार पहिली किस्म से ज्यादा होती है, मगर फली खोदने में मुश्किल होती है। मूँगफली के लिये जमीन चाहिये दोआब की हल्की दूमट,बलुआर। ऐसी ही जमीन इसके लिये अच्छी होती है। कछियानी या गोहानी की जमीन इसके लिये बहुत अच्छी समझी जाती है। अगर खेत ताकतवर हो तो खाद के लिये दस-बारह गाड़ी सड़ा गोबर फी एकड़ काफी है। लेकिन कमजोर खेत मे काफी खाद डालनी चाहिये। खाद, बोने केएक माह पहिले खेत में डालना चाहिये।

जिस खेत में मूँगफली बोना हो, उसकी पहली फसल कट जाने के बाद उस खेत को एक या दो दफे किसी मिट्टी उलटने वाले बड़े से हल जोतकर उसे धूप लगने को छोड़ देना चाहिये, ताकि फसल को नुकसान पहुँचानेवाले जो कोड़े खेत में हों, मर जावें। बाद को पाँच-छः दफे हल से खेत को वैसे ही जोत देना चाहिये जैसे अच्छी जिन्सों के लिये खेत तैयार करते हैं। इसके वास्ते भी अच्छा खूब भुरभुरा मुलायम खेत तैयार करना चाहिये। जहाँ पानी मिल सकता हो वहाँ १५ जून तक और जहाँ पानी न मिल सके वहाँ पहिला पानी बरसने के बाद ही जब मौका मिले, बीज बो देना चाहिये।

मूँगफली खुरपी या देशी हल से सीधी कतारों में बोनी चाहिये। दोनों तरह की बुवाई में बीज हर तीसरी कूड़ में बोया जाय, यानी दो फुट बीच में खाली रहे। अच्छे जोरदार खेत में कम से कम तीन फुट का फासला कतारों में और एक बीज से दूसरे बीज में ५ इंच से एक फुट का फासला होना चाहिये। बीज बोने के बाद खेत में पाटा या हेंगा दे देना चाहिये ताकि बीज जमीन में ढक जाय, नहीं तो चिड़िया व चूहे वगैरह दूसरे जानवर बीज को खा जायँगे।

अच्छा बीज दस से अठारह सेर फी एकड़ लगता है। बोने के पहिले फली को तोड़कर उसका बीज इस तरह निकाल लें कि भीतर का लाल छिलका न टूटने पावे। फली बहुत दिनों पहिले तोड़कर बीज न निकालना चाहिये, नहीं तो बीज खराब हो जायगा। जिस समय पौधा छोटा हो उस समय एक से तीन वार तक निकाई और पानी पड़ने पर एक या दो बार गुड़ाई करनी चाहिये। बाद में पौधों पर मिट्टी चढ़ाना चाहिये। ध्यान रहे कि फूल आते समय जमीन नम या सरस और मुलायम रहे। जून की बोई हुई फसल को बरसात होने के पहिले दो पानी, और फिर एक या दो पानी अक्टूबर या नवम्बर में, देना चाहिये।

अच्छे खेत में मूँगफली की २८ से ३२ मन फी एकड़ पैदावार होती है। पाँच छः महीने में फसल तैयार हो जाती है। जब डालियाँ पीली होकर गिर पड़ें तो फसल को खोदने लायक सम-

रना चाहिये। हल से या फावड़े से खोदकर फली हाथों से बीन-कर धूप में सुखा लेना चाहिये। मूँगफली की फसल बहुत नाजुक होती है। इसलिये पाले से इसको बहुत नुकसान पहुँचता है, खासकर फूल आने के समय। इस लिए पाला पड़ने से पहिले होने वाली मूँगफली बोना चाहिये।

मूँगफली के उपयोग इस प्रकार होते हैं—

[१] इसका मक्खन तैयार होता है। इसका घी अब बाजारों में खूब चल रहा है।

[२] बाजार में इसके तेल का जैतून के तेल के बाद दूसरा नम्बर है। (इसमें लगभग ५० फी सदी तेल होता है)।

[३] सब श्रेणी के आदमी इसको बड़े शौक से खाते हैं। कुल्लीदाने या चटपटे चबेने में यह बहुत स्वादिष्ट होती है।

[४] हलवाई लोग इसे दालमोट के साथ मिलाकर बेचते हैं। इसका घी पकवान बनाने के काम में लाते हैं।

[५] इसकी खली जानवरों के लिए अच्छी खुराक है।

[६] इसकी खली खेत के लिए बहुत ही फायदेमन्द होती है।

[७] इसका भूसा मामूली भूसे के साथ मिलने से जानवरों के लिए अच्छा चारा बन जाता है। जानवरों के लिए यह चारा स्वादिष्ट, सुपाच्य, दस्तावर और ताकतवर होता है।

आलु की खेती—

आम तौर पर पाँच किस्म के आलू युक्तप्रान्त में बोये जाते हैं। (१) फुल्वा—यह ज्यादातर फर्रुखाबाद में पैदा होता है। चूँकि इसके पोधे में फूल बहुत लगते हैं, इसी सबब से लोग इसे फुल्वा कहते हैं। इसका छिल्का सफेद और आँख लाल होती है। (२) मद्रासी—इसकी पैदावार फुल्वा के मुकाबले मे कम होती है। मगर यह फुल्वा से कम दिनों मे पक कर तैयार हो जाता है। इसका छिल्का फुल्वा से कुछ मैले रंग का होता है। (३) जालन्धरी—इसका छिल्का लाल रंग का होता है। यह ज्यादातर पच्छिमी जिलों में बोया जाता है। (४) पहाड़ी—यह आलू ज्यादातर पहाड़ी प्रान्तों में बोया जाता है। इसका छिल्का बहुत मैला होता है। आलू बड़ा होता है और पैदावार भी बहुत अच्छी होती है। (५) ललुवा—यह फर्रुखाबाद में पैदा होता है। इसका छिलका लाल होता है और गूदा फुल्वा से पीला होता है। सिवा मटियार और ज्यादा तरी वाली जमीनों के, और हर-एक जमीन में आलू पैदा हो सकता है। मगर, इसकी पैदावार हल्की और दूमट जमीन में बहुत अच्छी होती है। फर्रुखाबाद, मुरादाबाद, मेरठ और पूर्वी हिस्से में जौनपुर की जमीन आलू के लिये बहुत अच्छी है।

आलू की फसल को बहुत ज्यादा खाद की जरूरत होती है। २००-३०० मन अच्छी सड़ी हुई गोबर की खाद या मैला या भेड़ की लेंड़ी तथा २० मन अंडी की अच्छी तरह पीसी हुई

खली की खाद एक एकड़ जमीन के लिये आवश्यक होती है। इसमें राख वगैरह भी मिला देनी चाहिये।

पाँच-सात बार जुताई करने से खेत आलू बोने के लिए तैयार हो जाता है। बुआई आम तौर से सितम्बर और अक्टूबर में की जाती है। ढाई ढाई फीट पर क्यारियाँ बना ली जाती हैं और उनमें नौ-नौ इञ्च के फासले पर बीज डाला जाता है। बीज मिट्टी से ढक दिया जाता है। काश्तकार लोग हमेशा बहुत छोटा बीज बोते हैं।

कमजोर पौदों से छोटे आलू पैदा होते हैं, और चूँकि लोग उन्हें बीज के काम में लाते हैं, इसी वजह से उनकी फसल रोगी होती है और कम पैदावार देती है। बीज के लिए हमेशा दर्म्यानी आलू रखना चाहिए, जिसका गोला आकार एक से डेढ़ इञ्च तक हो। मतलब यह है कि अंडे के बराबर बीज बोना चाहिए। खेत के जिस कोने में सब पौदे तन्दुरुस्त हों उसी में से बीज के लिए आलू रखना चाहिए।

एक एकड़ जमीन में छोटा आलू ५-६ मन, मझोला ७-८ मन और बड़ा १० मन होता है। पहाड़ी आलू काटकर बोया जाता है और उसके हर टुकड़े में तीन या चार आँख होना जरूरी है। अगर खेत में बोने के वक्त नमी कम हो तो बीज से कल्ले निकलते ही हल्का पानी देना चाहिए। फिर पानी तब देना चाहिए जब कि पौदे करीब पाँच या छ इञ्च ऊँचे हो जायँ। बाद को हर हफ्ते या दसवें या पन्द्रहवें दिन पानी देते

रहना चाहिए। पाले के नुकसान से फसल को बचाने के लिए पानी देना निहायत जरूरी है। कम-से-कम पाँच बार पानी देने की जरूरत होती है। पहली बार पानी देने के बाद पौदों पर इस तरह से मिट्टी चढ़ाई जानी चाहिए कि सिवा बीज के कल्ले के और कुल हिस्सा ढक जाय। पहिली बार मिट्टी चढ़ाने के एक महीने बाद दूसरी बार फिर मिट्टी चढ़ाई जानी चाहिए और खासकर फसल के आखिरी दिनों में पैदा-शुदा और बढ़ते हुए आलू को बिलकुल नहीं खुलने देना चाहिये। अगर यह आलू अच्छी तरह से मिट्टी से न ढँके जायँगे तो आलू खराब करने वाला कीड़ा अपने अंडे खुले हुए आलुओं पर दे जायगा। ये आलू फिर गोदाम में बिलकुल गल जायँगे।

आलू की फसल में कम से तीन बार निकाई करनी चाहिये। निकाई करते वक्त तमाम रोगी और ऐंठा वाले (कोढ़ी) पौधों को निकाल डालना चाहिये। खासकर बीज के लिये छांटे हुए कोने में इस बात का खूब खयाल रखना चाहिये कि कोई भी कोढ़ी या ऐंठ वाला पौधा रहने न पावे और नये आलू खुलने न पावें।

आलू की फसल तीन महीने या पाँच महीने में तैयार हो जाती है। अगर बीज के लिए आलू रखना है तो जैसे ही पौदों की पत्तियाँ पीली और खुश्क होनी शुरू हों तभी खुदाई शुरू कर देनी चाहिए। बहुत उम्दा पका हुआ आलू—यानी उन पौदों से निकाला हुआ आलू जो कि खेत में सूख गये हों—बीज के लिये नहीं रखना

चाहिये। बीज के लिए जमीन से खोदने के बाद आलुओं को गोदाम में खुश्क बालू में फौरन दबा देना चाहिये, नहीं तो कीड़ा बाहर खुले हुए आलुओं पर अंडे दे देगा और फिर गर्मी के मौसिम में गोदाम के सब आलू सड़ जावेंगे।

अच्छी तरह से काश्त करने से २५० मन फी एकड़ आलू की पैदावार होती है।

कपास की खेती—

इस समय हमारे देश मे कपास की खेती बढ़ाने की बड़ी जरूरत है। हर-एक किसान को कपास की थोड़ी खेती करनी चाहिये। कपास की खेती से किसानों को कई तरह के लाभ होंगे। यदि कपास की खेती न की जाय तो मनुष्य को कपड़े कहाँ से मिलें, नंगा ही रहना पड़े। कपास की—रधिया, मनुआ, नरमा, कोकटी इत्यादि—कई जातियाँ हैं। देश-भेद से भी इसकी जातियाँ देखी जाती हैं—नागपुरी, हिंगनघाटी, भड़ोची, सिंधी इत्यादि। जिस खेत की मिट्टी दूमट के साथ बलुई रहती है, उसमें कपास भली भाँति उपजती है। हाँ, कोकटी इत्यादि के लिये दूमट और मटियार की मिलावट चाहिये। पहले खेत को हल से भली भाँति जोतकर और हेंगा देकर खूब चौरस और सरस बना लेने पर आषाढ़-सावन में ज्वार, अरहर इत्यादि के साथ कपास के बीज बो देने चाहिये। ज्वार कार्तिक के पहले तक कट जाती है और तब कपास को धूप

और वायु में फैलने के लिये भरपूर स्थान मिल जाता है। यदि आवश्यकता हुई तो एकाध बार निकौनी भी की जाती है। रधिया-कपास क्यारी बनाकर चैत में बोई जाती है और आश्विन-कार्त्तिक में तैयार होती है, परन्तु दूसरी-दूसरी कपासें चैत-वैसाख में तैयार होती हैं।

कपास का पेड़ अरहर के समान होता है जो सूखने पर घर-छप्पर छाने और आग जलाने के काम मे आता है। इसके पीले-पीले सुहावने फूल होते हैं। ढेंढ़ियाँ जब पककर फूटने लगती हैं तब उन्हे तोड़ लाना चाहिये। जब ये ढेंढ़ियाँ सूख जायँ तब उनमें से सफेद रेशे निकाले जायँ, जिन्हें रुई कहते हैं। रुई से बिनौला, ओटनी से ओटकर, अलग किया जाता है। बिनौला गाय-भैंस को, दूध में घी बढ़ाने के लिये, खिलाया जाता है। इससे तेल भी निकाला जाता है, जो चिराग जलाने और साबुन बनाने के काम मे आता है। बिनौले की खली गाय-भैंस को बहुत रुचती है। इसकी खाद भी बहुत उपजाऊ होती है। हाँ, जिस जाति की कपास होती है, रुई भी वैसी ही होती है। किसीके रेशे बड़े होते हैं और किसी के छोटे। मध्य-प्रदेश के हिंगनघाट और बम्बई-प्रान्त के भड़ौच की रुई बड़े और मजबूत रेशेवाली होती है। हिंगनघाटी रुई का रंग हल्का सुनहला होता है। इसमें कूडा-करकट बहुत होता है; पर भड़ोची में उतना नहीं होता। सिंधी तो उतनी अच्छी नहीं होती। किन्तु कोकटी नाम की कपास प्रायः फुलवारियों में बोई जाती

है। इसकी रुई सफेद नहीं होती, पीलापन लिये सुनहले रंग की होती है। इसका मोल भी अच्छा होता है। दरभंगा-प्रान्त के 'भौआरा' स्थान में कोकटी के अच्छे-अच्छे कपड़े बनते हैं। जो रेशमी-से जान पड़ते हैं।

धुनकी से धुनकर रुई को साफ़ करना चाहिये। धुनकने पर वह फैलकर स्वच्छ तथा हल्की हो जाती है। तब इसी रुई को चरखे से कातकर सूत बनावे जिससे करघे पर बुनकर सूती कपड़े तैयार किये जायँ।

आज से सौ-पचास वर्ष पहले भारत में ऐसे अच्छे-अच्छे सूत काते जाते थे और उनसे ऐसे अच्छे-अच्छे कपड़े तैयार होते थे कि उन्हें देखकर विलायत के लोग भी अचरज करते थे; बड़े शौक से उन्हें पहनते भी थे। ढाके में इतनी बारीक मलमल बनती थी कि घास पर बिछाकर पानी छिड़क देने से यह नहीं जान पड़ता था कि घास पर मलमल बिछी है, बल्कि ऐसा मालूम होता था कि ओस पड़ी है। 'आबेरवाँ' आज तक प्रसिद्ध है। यह कपड़ा इतना मिहीन, चिकना, मुलायम और नफ़ीस होता है कि पहले योरप की अमीर औरतें बड़े ठाट से इसको पहनती थीं। आज भी इस देश में कितने ही अच्छे-अच्छे कपड़े बनते हैं। अब तो महात्मा गांधी के उद्योग से चरखे के सूत से करघे पर इतने अच्छे-च्छे खद्दर के कपड़े बुने जाने लगे हैं कि उनकी सुन्दरता देखते ही बनती है। खद्दर पर हम आगे विस्तार से लिखेंगे; यहाँ केवल इतना ही कहना

काफी होगा कि कपास की खेती पर देश-भर के किसानों को पूरा-पूरा ध्यान देने की जरूरत है। वह समय आ गया है कि अन्नों के साथ-साथ वस्त्रों के लिये भी हमारे किसान निश्चिन्त हो जायँ। बस दूसरे अनाजों के साथ कपास की खेती करने से ही वे अन्न-वस्त्र की चिन्ता से मुक्त हो सकते हैं।

ऊख की खेती—

ऊख की खेती किसानों के लिये बड़े फायदे की होती है। इसकी खेती से मुँह भी मीठा होता है और मुट्ठी भी गरम होती है। किन्तु इसकी खेती में मेहनत भी कम नहीं पड़ती। ऊख जैसी मिहनत लेती है, वैसी ही चीज भी देती है। अगर ऊख की खेती में सुतार हो तो रुपया भरपूर आता है, जिससे किसानों को मालिक-महाजन से छुटकारा मिल जाता है। ऊख की खेती साफ़ बतला देती है कि मेहनत का फल मीठा होता है।

बाँस, नरकट, कंडा इत्यादि के समान ऊख भी घास-जाति का एक मीठा पौधा है। अमरकोष में इसके 'मधुतृण और इक्षु-दंड' इत्यादि नाम हैं। हमारे यहाँ कदरिया, सेमारी, बधिया, कालागेंड़ा, लालगेंड़ा इत्यादि ऊख के कई भेद दीख पड़ते हैं। इसकी खेती गरम देशों में खूब होती है। हमारा देश भी गरम ही है। इसीलिये हमारे देश में ऊख की खेती बहुत-कुछ होती भी है। कहीं-कहीं के किसान तो ऊख की खेती से खूब फ़ायदा उठाते हैं। थोड़ी-थोड़ी ऊख तो सब किसानों को बोनी ही चाहिये ताकि घरेलू खर्च भर गुड़ मिल जाय।

ऊख के लिये खेत की भूमि दोरस हो और ऐसी हो कि पौधा बाढ़ या वर्षा के पानी से डूब न जाय। पहले भूमि को चौमास छोड़ दे और खूब गहरी जुताई करके गोबर और राख इत्यादि पटाकर तैयार करे। जब ऊख की कटनी होती है, उसी समय कुछ पौधे नहीं काटे जाते, खेत ही में छोड़ दिये जाते हैं। फागुन-चैत में जब ऊख के रोपने का समय आता है, तब उन्हें काटकर ले आवे और पत्तियों को हाथ से छीलकर प्रायः हाथ-हाथ-भर की गुल्लियाँ काट ले। इन गुल्लियों को राख, पाँक और पानी में सानकर खेत की छिछली खाई मे तीन-चार दिनों तक गाड़ दे। ऐसा करने से गिरहों की आँखें बड़ी-बड़ी हो जाती हैं, जिससे वे गुल्लियाँ रोपने के लिये तैयार हो जाती हैं। तैयार खेत को पहले रस्सी बैठाकर धरिया दे और प्रत्येक धारी में कुदाली से प्रायः डेढ़-डेढ़ हाथ पर दर बनाकर दर पीछे एक गुल्ली रखता जाय। इसके बाद मिट्टी से उन्हें फुनके-फुनके भर दे। कहीं-कहीं रोपने का काम हल से भी किया जाता है। हलवाहा हल जोतता जाता है और दूसरा आदमी हल के साथ ही बँधे हुए सिराउर में डेढ़-डेढ़ हाथ पर गुल्ली गिराता जाता है। पीछे चौकी या हेंगा देकर मिट्टी बराबर कर देते हैं।

"तेरह कोड़ तीन पानी, ऊख की खेती में मर्दानी" गृहस्थों का यह कहना बहुत ही ठीक है। वास्तव में ऊख की खेती में छातीफार मेहनत है। बार-बार निकौना करना और कई बार पानी पटाना पड़ता है। जब तक ऊख के पौधे लगभग दो हाथ के

न हो जायँ तब तक कोड़ने और पटाने में ढिलाई न होनी चाहिये।

ऊख के पौधे में कीड़ों के लगने का डर भी है। 'कनरा' कीड़ा मिट्टी के नीचे जड़ में और 'गर्भसुक्खू' आदि ऊपर डाँठ में लगते हैं। इसलिये कीड़ों पर कड़ी नजर रखनी चाहिये। खेत को भली भाँति कोड़ने और जो पत्तियाँ सूखकर गिरी हों उन्हें साफ कर देने से कीड़ों का डर जाता रहता है। जिन डाँठों में कीड़े लगे हों, उन्हें भी काटकर जला देना उचित है। खेत जितना ही साफ और नरम रहेगा, उतनी ही फसल अच्छी होगी। ऊख पहले खूब सेवा कराती है, तब पीछे मेवा खिलाती है।

कातिक-अगहन से ऊख पेरना चाहिये। रस को सफाई से छान कर, कड़ाहों में औंटाकर, गाढ़ा हो जाने पर खूब साफ बर्तनों में जमाकर, गुड़ तैयार करना चहिये। यदि रस को छान कर और उसमें कुछ चूना और दूध मिलाकर औंटा जाय तो मैल निकल जाता है और साफ रस गाढ़ा होकर सुन्दर गुड़ बन जाता है। इसके बाद उसमें सौंफ, मिर्च, इलायची, अदरख, गुलाब-जल इत्यादि देकर यदि 'भेली' नाम का गुड़ बना लिया जाय, तो वह बाजारू मिठाइयों से लाख दरजे अच्छा शुद्ध और स्वादिष्ट होता है। देहातों में किसानों के यहाँ गुड़ की डली या भेली ही अभ्यागतों के सत्कार के काम में आती है।

किसानों को यह भी जानना चाहिये कि चीनी बनाने के लिये रस को गाढ़ा नहीं बनाते, कुछ पतला ही रखते हैं। इस प्रकार के औंटे रस को गढ़हों मे ढालकर 'राब' बनाते हैं। राब

से छोआ निकाल लेने पर भूरा या शक्कर बच जाती है। राब को जब दूध, माजूफल का रस इत्यादि देकर औंटते हैं और मैल निकल जाने के बाद सेवार वगैरह से साफ करते हैं, तब चीनी बनती है। इन उपायों को कुछ विशेषता के साथ करने से मिश्री तैयार होती है। यह बहुत ही मीठी होती है। हम लोग जितनी मिठाइयाँ खाते हैं सब गुड़, चीनी और मिश्री से बनती हैं। हमारा कोई मीठा ऐसा नहीं है जिसमें ऊख की बनी कोई चीज न हो। हाँ, खजूर का गुड़ और मधु भी हमारे भोजन को मीठा करते हैं, परन्तु वे हमारी तरफ के किसानों को बहुत ही थोड़े मिलते हैं, यानी बिलकुल नहीं मिलते। मिठास के लिये बस गुड़ या चीनी या मिश्री ही मशहूर है और इन सब की माता है ऊख। यदि ऊख की खेती बढ़ाने के लिये हमारे किसान तत्परता से चेष्टा करें, तो वे तुरत मनचाहा फल पावेंगे।

धान की खेती—

सब अन्नों में गेहूँ का एक विशेष स्थान है। इस अन्न की संसार के सभी देशों में पर्याप्त मात्रा मे खपत भी है। इसी कारण संसार के सभी देश गेहूँ के पैदा करने में खून और पसीना एक कर रहे हैं। हमारा देश भारतवर्ष भी गेहूँ पैदा करने में भरसक आगे ही क़दम बढ़ाता जा रहा है; इसे आर्थिक दृष्टि से देश का ही सौभाग्य समझिए। किन्तु गेहूँ के बाद जिस अन्न की हमारे देश में अधिक खपत है वह 'धान' है। 'धान' हमारे देश का

मनुष्य-अन्न ही नहीं, वरन जो तथा तिल के ही समान 'देवान्न' भी है ; क्योंकि अत्यन्त प्राचीन काल से ही हमारे देश के ऋषियों ने जौ तथा तिल का प्रयोग करके अपने रसायनज्ञान का परिचय दिया है। इसी प्रकार अन्यान्य धार्मिक कार्यों में अक्षत की जगह बिना चावल के कोई भी धार्मिक-कार्य-संपादन नहीं किया जा सकता। यहाँ तक कि हिन्दू-शास्त्रानुसार देश के युवक और युवतियाँ जब संसार में पदार्पण करने के लिये व्याह-रूपी बंधन में बँधते देखे जाते हैं, उस पाणि-ग्रहण के समय भी चावल रूपी अन्न ही उन दोनों के धार्मिक कृत्यों का साथी दिखलाई देता है, और उसी चावल के द्वारा वे सारे देवताओं को भी प्रसन्न करके अथवा साक्षि-रूप देकर अपना पवित्र बंधन बाँधते हैं। उस समय केवल ईख द्वारा उत्पन्न हुए गुड़, चीनी, शक्कर के अतिरिक्त अन्य कोई भी अन्न ऐसे कृत्यों में दृष्टि-गोचर नहीं होते। बिना चावल के किसी भी देवता की पूजा-अर्चना पूर्ण-रूपेण सिद्ध नहीं हो सकती। इन सब बातों से पता चलता है कि 'धान' हमारी संस्कृति और सभ्यता का एक प्रज्वलित रूप से उदाहरण है। इस कारण धान को हमें विशेष रीति से उत्पन्न करने में दत्त-चित्त होना चाहिए। इसके सिवा धान हमारे देश तथा प्रान्त का एक मुख्य खाद्य पदार्थ भी है। समस्त आबादी के खाद्य पदार्थों में इसका खर्च तीन-चौथाई से कम नहीं है। संयुक्त प्रान्त के जितने क्षेत्रफल में भोजनोपयुक्त अन्न उगाए जाते हैं, उससे धान की फसल का क्षेत्रफल पाँचवें हिस्से से किसी कदर भी कम नहीं

कहा जा सकता ; जिसकी गणना संयुक्त प्रान्त में ७४॥ लाख एकड़ के कूती जाती है। १९३०-३१ के सालों में इस धान की फसल का क्षेत्रफल ६,७२१,५६४ एकड़ था। यद्यपि संयुक्त प्रान्त के फैजाबाद, गोरखपुर और बनारस कमिश्नरियों की यह एक खास फसल है। किन्तु देहरादून के जिले में इस धान की फसल की कुछ निहायत ही उम्दा किस्में पाई जाती हैं। यह फसल वैसे तो जहाँ पर भी पानी का पूर्ण प्रबन्ध हो, पैदा की जा सकती है, किन्तु जहाँ पर वर्षा पर्य्याप्त रूप मे होती है वहाँ का जलवायु इस फसल के लिये अत्यन्त उपयोगी होता है।

किस्मों और जातियों के सबंध में यह कहा जाता है कि जिस प्रकार से हमारे देश के ब्राह्मणों की अनेक जातियाँ हैं, उसी प्रकार से 'धान' की भी अनेकानेक जातियाँ हैं, जिनकी गणना नहीं की जा सकती। तो भी धान की सभी किस्में दो श्रेणियों में विभक्त की गई हैं—

(१) पहिली श्रेणी में वह सभी जातियाँ सम्मिलित की जाती हैं जिनके बीज आरंभ में क्यारियों में बोए जाते हैं और बाद को जब उनकी बेहन (चारा, नरसी) तैयार हो जाती है तो वे दूसरे खेत में उखाड़ कर लगा दिये जाते हैं। ऐसे धानों को अगहनी और जड़हन का भी नामकरण कहीं-कहीं किया जाता है।

(२) दूसरी श्रेणी में वह सभी जातियाँ आ जाती हैं, जो कि वर्षाकाल के आरंभ होने पर कोदो, ज्वार, बाजरे, अरहर अथवा

यों समझिये कि खरीफ के सभी बीजों के समान खेत में पर्य्याप्त पानी होने पर छिटकर बोए जाते हैं। धान की असंख्य जातियाँ हैं और अगणित नाम भी हैं। कितने ही नाम बड़े सुन्दर हैं। बासमती, बाँसफूल, मोतीचूर, महाराजा, ठाकुरभोग, सीताभोग, सुखदास, कलमदान, जीरावत्ती, भाला-बरछा, कनकजीरा, घीं-लोना, बादशाही, नागफनी, रामभोग, मलइया, मखनिया, दुधिया, चीनिया इत्यादि अनन्त नाम हैं।

पहली श्रेणी के धानों के लिये पानी की पर्य्याप्त आवश्यकता होती है और वे आषाढ़ से अगहन तक खेतों में खड़े रहते हैं। दूसरी श्रेणा के धान आषाढ़ से लेकर कार तक में ही पक जाते हैं और काट कर खाने के काम में लाए जाते हैं। जिन स्थानों में पानी की कमी होती है वहाँ पर ही ये दूसरी श्रेणी के धान बोए जाते हैं और जल्दी तय्यार होने के कारण भी ग़रीब किसान इसकी काश्त अधिक करते हैं; क्योंकि उनकी आवश्यकताएँ इस दूसरी श्रेणा के धानों से शीघ्र पूर्ण होती हैं।

उपर्युक्त जातियाँ जो कि इस प्रान्त में उगाई जाती हैं, उनकी पैदावार का नियमानुसार कोई अनुभव किसी सरकारी कृषि-विभाग के कृषि-क्षेत्र पर नहीं किया गया है। किन्तु किसानों के यहाँ जाँच करने से पता चलता है कि प्रथम श्रेणी के धानों की पैदावार लगभग १५, २० मन प्रति एकड़ हो जाती है। इसी प्रकार छिटकवाँ बोए हुए कारी धान की पैदावार भी १०-१२ मन प्रति एकड़ साधारणतया पाई गई है।

धान की फसल को हानि पहुँचानेवाला 'गंधी' नामक कीड़ा किस प्रकार से नष्ट किया जाय कि जिससे धान की पैदावार न मारी जाय, इस विषय पर खोजें हो रही हैं और अनुभव प्राप्त किए जा रहे हैं। अधिकतर शीघ्र पकनेवाली क्वारी-कतिकी जाति के धानों पर यह कीड़ा अपना आक्रमण आधे भादों से आरंभ कर देता है और आधे कातिक तक इसका विशेष आक्रमण इन फसलों पर होता रहता है, जिसके कारण धान के पर्य्याप्त क्षेत्रफल की पैदावार मारी जाती है। यद्यपि इन शीघ्र पकनेवाली जातियों में साठी तथा दो-चार अन्यान्य जातियाँ भी हैं; किन्तु ये जातियाँ मोटे-धानों की होने के कारण पैदावार भी कम देती हैं। यह प्रकृति का प्राकृतिक नियम भी है कि जो चीज नियम के पहिले आती है, उसकी पैदावार भी कम होती है और उस पर आक्रमण भी सभी प्राकृतिक शक्तियों का होता है। किसानों और उन बड़े-बड़े जमीदारों का कर्तव्य है, जो कृषि की उन्नति करना चाहते हैं, कि इन उन्नति-प्राप्त धानो की सभी जातियो का बीज थोड़ा-थोड़ा अपने यहाँ बोकर देखें कि इनकी पैदावार उनके यहाँ कैसी होती है। बाद में अच्छी पैदावार वाले बीजों का बीज स्वयं बढ़ा लें। इस संबंध में हम किसानों के हितार्थ एक कहावत का परिचय देते हैं, जिससे पता लगेगा कि थोड़े-से बीज से किस प्रकार बीज बढ़ाकर अधिक किया जा सकता है।

"एक बनिया अर्थ-शास्त्र का अच्छा ज्ञाता था। उसने अपने आर्थिक सिद्धान्तानुसार थोड़ी सम्पत्ति से बहुत बड़ी सम्पत्ति

उपार्जन कर ली थी। उसकी यह इच्छा थी कि मेरी औलाद भी आर्थिक-विज्ञान के नियमों पर चलकर इस सारी सम्पत्ति को बढ़ाने मे ही दत्तचित्त हो। इस कारण वह अपनी सन्तान को सदैव अर्थ-शास्त्र-सम्बन्धी शिक्षा दिया करता था। एक दिन परीक्षार्थ उसने अपने पाँचों लड़कों को धान के पाँच पाँच बीज देकर कहा कि इन बीजों को तुम लोग अपनी बुद्धि के अनुसार सदुपयोग में लाओ। यह कहकर वह बनिया व्यापार के लिये विदेश चला गया। पहली सन्तान ने तो वहीं उन बीजों को चबा डाला। दूसरे ने उसकी भूसी निकालकर चावल को दूसरे चावल के साथ भात पकाकर देवों को भोग लगाकर स्वयं खाया। इसी प्रकार और दोनों ने भी अपनी बुद्धि के अनुसार उसका उपयोग किया। किन्तु पाँचवीं सन्तान ने, जो कि तीव्र बुद्धि का था, पिता के भाव को समझकर एक किसान से मित्रता करके उसके धान के खेत की एक क्यारी में वह पाँच बीज बो दिए अन्त में उन पाँचों पौधों से एक सेर धान पैदा किया और अगले साल उस एक सेर धानो का सोलह किसानों को एक-एक छटाँक धान देकर सोलह सेर धान पैदा किया। अपने पिता के लौटते समय तक उसने ५० मन धान इसी रीति से पैदा करके एकत्रित कर लिया था। पाँच वर्ष बाद वापस आने पर जब पिता ने सब सन्तानों से उन धान के बीजों के सदुपयोग की बात पूछी तो उस पाँचवीं सन्तान ने कहा कि उससे मैंने ५० मन धान पैदा किया है। इस बात को सुनकर चारों लड़के अवाक रह गए। तब

उसके पिता ने उसकी तरकीब पूछी और उसके धानों की राशि का निरीक्षण करके उसे ही अपना उत्तराधिकारी बना दिया।"

इसी प्रकार यदि हमारे देश के किसान इन धानों के बीजों को अपनी सरकिल के कृषि-विभाग के अधिकारियों द्वारा मँगा कर इन बीजों को बढ़ाने की ओर अग्रसर हों तो उनके पास थोड़े ही दिनों में पर्य्याप्त-मात्रा में यह बीज बढ़ जायँगे, उनकी आर्थिकावस्था का भी सुधार होगा; क्योंकि उत्तम जाति के चावल हमेशा महँगे बिकते हैं। आजकल भी जब गेहूँ का भाव १२,१४, १५ सेर तक है तब भी अच्छे चावलों का भाव ५, ६, ७ सेर से अधिक नहीं है। यही नहीं, दूसरे अन्न यदि हर साल नए अन्नों के पैदा होने तक बिक न जायँ, तो दूसरे साल उन्हीं जाति के नए अन्न के बाजारों में आ जाने से उनका वह भाव नहीं रह जाता। किन्तु चावल एक ऐसा अन्न है जो कि जितना ही पुराना होता जाय उसकी कीमत उतनी ही बढ़ती जाती है और उसके गुणों में उतनी ही विशेषता आती जाती है और पाकशास्त्र के प्रेमी उसकी उतनी ही कद्र करते हैं। इसलिये किसानों को इन उन्नति-प्राप्त धानों की खेती करके अधिक से अधिक लाभ उठाने के प्रयत्न में लग जाना चाहिये।

बीज—प्रथम श्रेणी की उन जातियों के बीज जो पहिले क्यारियों में बोए जाते हैं, जब उनका पौधा तैयार हो जाता है तब उखाड़ कर दूसरे खेतों में लगाये जाते हैं। १० से १५ सेर तक बीज क्यारियों में बोने के लिए पर्य्याप्त है। इससे एक एकड़ के लिए

बेहन (चारा) मिल सकता है। दूसरी श्रेणी की जातियों के बीज, जो कि छिटकवाँ तरीके से बोए जाते हैं, भिन्न जातियों की भिन्न-भिन्न मिकदारें हैं। किन्तु प्रायः १५, ३०, ३५ सेर प्रति एकड़ से अधिक नहीं बोया जाता। प्रथम श्रेणी के धान की बेहन मटियार भूमि में सफलता के साथ अधिक से अधिक पैदावार दे सकती है। यही भूमि धान की खेती के लिए उपयुक्त भी है। क्योंकि मटियार भूमि में पानी सदैव भरा रहता है। नीचे को बहुत ही कम रिक्त कर जाता है, जो कि धान के लिए अत्यंत उपयुक्त है। सारांश यह कि पानी का पूर्ण प्रबन्ध होने से धान की पैदावार बलुही भूमि को छोड़ कर शेष सभी प्रकार की भूमि में हो सकती है। छिटकवाँ जाति के धान मोटे होते हैं। इस कारण उन्हें भी बलुही भूमि को छोड़ कर किसी भी श्रेणी की भूमि में बो कर लाभदायक उपज प्राप्त की जा सकती है। किन्तु इसी सम्बन्ध मे यह ध्यान रखने की बात है कि एक मोटी जाति का धान गरमियों में यमुना नदी के किनारे की भूमि में भी बेहन लगाकर पैदा कर लिया जाता है, जिस भूमि का अधिकांश बलुहरा ही होता है।

काश्त—धान की फसल क्वार, कार्तिक, अगहन के महीने में तय्यार हो कर खलिहान में आ जाती है। ऐसे समय में इन धानों के खेतों में, जो कि खाली पड़े रहते हैं, बहुत से किसान चना-मटर बो कर रबी में भी कुछ न कुछ पैदावार ले लिया करते हैं। किन्तु कुछ लोग खेतों को खाली ही छोड़ देते हैं। जो लोग खाली छोड़ देते हैं, यदि वह उन खेतों को एक बार मिट्टी

पलटने वाले हलों से जोतकर छोड़ दिया करें तो बहुत ही लाभ हो। इस लाभ से भी बढ़कर अधिक लाभदायक बात यह होगी कि धान की फसलों के कटने के बाद इन खेतों में चना या मटर की कोई दालदार फसल बो दी जाय तो किसानों को उसे खाली छोड़ देने की अपेक्षा अन्न भी मिल जायेगा और दालदार फसल के बोने से खेत की घटी हुई उर्वरा-शक्ति बढ़ जायगी, जो कि अगले साल बोई जानेवाली धान की फसल को लिए बड़े ही लाभ की खूराक का काम करेगी।

यह चने और मटरों की फसलें जब चैत मास में धानों के खेतों से कट कर खलिहान में आ जायँ तो इन खेतों की जुताई मिट्टी पलटने वाले हलों से आरम्भ कर देनी चाहिए। ज्येष्ठ के महीने तक कम से कम छ: जुताइयाँ तो अवश्य कर देनी चाहिए।

खाद—इन जुताइयों के बाद, आधे ज्येष्ठ के बाद, १०-१५ गाड़ी सड़े हुए गोबर की खाद प्रति एकड़ के हिसाब से खेतों में डालकर खेतों में जुताई करके भली भाँति से मिला देना चाहिए। इसी प्रकार धान के खेतों को तैयार करते रहना चाहिए और इधर पानी की सुविधा के अनुसार क्यारियों में धान की बेहन छोड़ने का प्रबन्ध ज्येष्ठ के आरम्भ में ही कर देना चाहिए, जिससे आषाढ़ के लगते ही जब बेहन के लगाने का मौसिम शुरू हो जाय, तो बेहन को खेतों में लगा दिया जाय। इस प्रकार आषाढ़ के महीने में खेतों को तय्यार करके बेहन लगाने का काम करना चाहिए। छिटकवाँ रीति से बोए जानेवाले धानों को ज्वार, बाजरा के

खेतों के समान ३, ४ बार जोत कर छिटकर बो देना चाहिए।

विशेष खादें—अधिकतर किसानों को सड़ी हुई गोबर की खाद देना ही सुविधा-जनक प्रतीत होता है। किन्तु बहुत-से स्थानों में सनई की हरी खाद का प्रयोग करके देखा गया है कि धान की फसल की पैदावार सनई की हरी खाद से अधिक बढ़ती है। किन्तु सनई की हरी खाद का व्यवहार वहीं पर सफलतापूर्वक किया जा सकता है जहाँ पर सिंचाई का पूर्ण प्रबन्ध हो। अतिरिक्त इसके धान की खड़ी फसल मे रेंड़ी और नोम की खली भी पीसकर एक मन प्रति एकड़ देने से पैदावार में बढ़न्ती हो सकती है।

धान की फसल द्वारा इस प्रान्त के किसानों को पर्याप्त रूप में लाभ प्राप्त हो सकता है, जिससे उनकी गरीबी बहुत-कुछ अंशों में नष्ट हो सकती है।

मकई की खेती—

मकई को 'मक्का' भी कहते हैं। इसकी बालि को 'भुट्टा' कहा जाता है। बरसात में इसकी फसल बड़ी मजेदार होती है। किसान लोग अपने घर के खुले स्थानों तथा खँड़हरों में भी इसे बोते हैं। इससे गरीब किसानों को बरसात में बड़ा सहारा मिलता है।

मकई की अच्छी पैदावार, अच्छे बीज और पौधों के बढ़ने की ताकत पर, निर्भर है। इसके बीज में जमने की ताकत दस साल तक बनी रहती है, तो भी बीज हमेशा नया बोना चाहिये। यह बीज बिना अच्छी नमी के अच्छी तरह नहीं जमता, और यह और अनाजों के मुकाबले अधिक गर्मी चाहता है। इसलिये

जहाँ तक हो सके, खेतो को खूब जोत करके जेठ में इसकी बुवाई हो जानी चाहिये। खेत ऐसा होना चाहिये, जिसमें वर्षा का पानी जमा न हो सके। परन्तु मका को पानी की बहुत जरूरत है। बीज भले ही जम आवे, परन्तु यदि खेत मे काफी नमी न होगी, तो पौधों की अच्छी परवरिश न हो सकेगी और पैदावार बहुत कम होगी, क्योंकि इसके पौधे बहुत बड़े होते हैं और इसके पत्ते काफी लम्बे-चौडे होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ये पौधे भूमि से बहुत-सा पानी खींच लेते हैं और वह पानी पत्तों द्वारा हवा में उड़ जाता है। विद्वानों ने पता लगाया है कि गर्मी के दिनों में मक्का के पौधे एक एकड़ भूमि से करीब २०००० मन पानी भाफ बनाकर हवा में उड़ा देते हैं!

मक्का के लिये खेत को गर्मियों में अच्छी तरह तैयार करना चाहिये और उसमें अच्छी तरह खाद देनी चाहिये। गोबर की खाद ३०० मन फी एकड़ के हिसाब से कम न होनी चाहिये। अगर भेड़ की लेंड़ी की खाद होवे तो १५० मन फी एकड़ होनी चाहिये। खेत को अच्छी तरह जोतकर हेगा दे करके आषाढ़ अर्थात् जून में बुवाई शुरू हो जानी चाहिये, और अधिक-से-अधिक १५ या २० जून तक बुवाई खतम हो जानी चाहिये; क्योंकि इसके पौधे बड़े होते हैं और इनके लिये निकाई और गुड़ाई की बहुत जरूरत पड़ती है।

मक्का हमेशा क़तारों में बोनी चाहिये। कतारों का फासला एक दूसरे से पौने दो हाथ से कम न होना चाहिये और एक

पौधे से दूसरे पौधे का फ़ासला क़रीब पौन हाथ होना चाहिये। क़तारें पूरब-पश्चिम होनी चाहियें। अगर मक्का के पौधे कायदे से कतारों में न बोये जाएँगे, तो बाद में इनकी निकाई-गुड़ाई में रुकावट पड़ने के कारण पदावार पर बहुत बुरा असर पड़ेगा। ज्यादा रकबा बोना है, तो हल के पीछे बोना चाहिये, वरन् अच्छा और सहल तरीका तो यह है कि खेत में ऊपर लिखे तरीके से पूरब-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण कतारें बना ली जायँ और जहाँ पर ये कतारें एक दूसरे को काटें वहाँ-वहाँ पर जमीन को खोदकर बीज जमीन से क़रीब दो अंगुल नीचे गाड़ दिये जायँ और फिर उस जगह को थोड़ी मिट्टी से दबा दिया जाय। बस, इस तरह खेत को बोकर उसी समय करहे और मेंडें भी बना देनी चाहिये और बोने के ६ या ७ दिन के बाद खेत की हल्की निकाई कर देनी चाहिये।

बीजों के उग आने पर जब पौधे ५ या ६ अंगुल के हो जायँ, तब उनमें से कमजोर पौधों को उखाड़ डालना चाहिये और अगर पानी की जरूरत मालूम पड़े, तो सिंचाई कर देनी चाहिये, और फिर एक-आध दिन में ही निकाई कर देनी चाहिये, ताकि घास वग़ैरह दूर होता रहे और जमीन की सतह भुरभुरी बनी रहे।

जब कि पौधे क़रीब डेढ़ हाथ के होने लगें, तब नीम की खली की खाद दो मन फ़ी एकड़ के हिसाब से खेत में डाल देनी चाहिये। आसान तरकीब इसके डालने की यह है कि खाद को दो मन लेकर दस मन रेत या धूल मिलाकर फिर इस बारह मन को

पौधों की जड़ों के चारों तरफ डाले। हर एक पौधे की जड़ में यह रेत मिली खाद डेढ़ तोले डालकर खुरपी से मिट्टी में मिला देनी चाहिये और उस मिट्टी को पौधे के चारों तरफ चढ़ा देना चाहिये।

इस तरह खाद देने के बाद अगर पानी बरस जाय तो अति उत्तम, वरन् खेत में पानी देना जरूरी होगा। इसके बाद खेत में गुड़ाई-निकाई होती रहनी चाहिये और हर गुड़ाई के समय पौधों के चारों तरफ मिट्टी चढ़ाते रहना चाहिये, ताकि पौधे मजबूत रहें।

बुआई के ५० या ५५ दिन के बाद मक्का के फलने का समय आता है। भुट्टे आने शुरू होते ही चारों तरफ़ से तोते और कौए आदि पक्षी इनपर हमला करना शुरू कर देते हैं। इस समय रखाई की बड़ी जरूरत होती है। इस लिए किसानों को परिश्रम करके इसे रखाना चाहिए।

अपने यू० पी० प्रान्त में इसकी दो खास किस्में हैं, एक पीले दाने की और दूसरी बहुत हल्के पीले दाने की। फी पौधा दो भुट्टे देनेवाली मक्का बनिस्बत उसके, जिसमें तीन-चार भुट्टे फी पौधे आते हैं, अच्छी होती है।

जो भुट्टे बीज के लिए रक्खे जाँय उनको जिन मकानों में रोटी बनती है, उनमें लटका कर रक्खें। लटकाने की तरकीब यह है कि भुट्टों को रस्सी या सुतली में एक के बाद दूसरा बाँध कर लटकाना चाहिए।

मक्का के बीज बोने से पहले अगर तूतिया के पानी में तर कर लिये जाँय, तो बहुत अच्छा होता है; क्योंकि यह देखा गया है

कि जहाँ तूतिया के पानी से तर करके बीज बोये गए हैं, वहाँ बहुत-से रोगों से फसल बच गई है। तूतिया के पानी से तर करने का तरीका बहुत सादा है।

पाँच सेर पानी में एक छटाँक तूतिया घोल लिया जाय और जब वह पानी में मिल जाय, तब बीज को उस पानी में ५ मिनट के लिए डाल देना चाहिए। इसके बाद उस बीज को छाया में सुखा लिया जाय। तूतिया का पानी किसी मिट्टी की नाँद या लकड़ी के बर्तन मे तैयार करना चाहिए। इसके बाद पानी शीघ्र ही घूरे पर फेंक देना चाहिए।

खेती की उपज बढ़ाने के उपाय—

हमारे देश के हर-एक प्रान्त में सरकार के कृषि-विभाग की ओर से खेती की जाती है। इसके लिये कई जगह सरकारी 'फ़ार्म' बने हुए हैं। जैसे बिहार में पूसा (दरभंगा) और सबौर (भागलपुर) में सरकारी फार्म हैं। वहाँ खेती की उपज बढ़ाने के तरीक़े काम में लाये जाते हैं।

अगर गाँव या शहर के पढ़े-लिखे लोग अपढ़—किन्तु मेहनती—किसानो को सरकारी फार्मों में ले जाकर सब तरीके दिखावें और समझावें, तो बड़ा भारी लाभ हो।

सरकारी फार्मों पर किये गये प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि किसानों के खेतो की अपेक्षा सरकारी खेतो से अधिक पैदावार ली जा सकती है। नीचे की तालिका इस बात को भली भाँति प्रगट करती है—

प्रति एकड़ पैदावार

फ़सल	किसान द्वारा	सरकारी फार्म में
ईख	३० मन गुड़	८० मन गुड़
गेहूँ	१० मन	२० मन
कपास	५ मन	८ मन
धान	१५ मन	३० मन

अब प्रश्न यह होता है कि फार्मों पर ऐसे कौन-से काम किये जाते हैं, जिनसे कि पैदावार बढ़ जाती है ?

हमारे किसान फसल काट लेने के बाद अपने खेतों से कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखते। अगली फसल बोने तक उनमें खर-पतवार उगा करते हैं, जो उनकी उर्वरा-शक्ति को बराबर घटाते रहते हैं। यदि इस बीच में वर्षा हो जाती है तो उसका पानी बहकर निकल जाता है और साथ में बारीक मिट्टी को बहा ले जाता है। खेतो में खार पड़ जाते हैं और उनकी शक्ति और भी घट जाती है।

यदि फसल काट लेने के बाद खेतों को बार-बार जोतते रहें तो खर-पतवार मर जायेंगे और वर्षा का पानी खेत में ही सोख जावेगा। इससे अगली फसल को काफी नमी मिलेगी और सिंचाई कम करनी पड़ेगी। धूप और वायु का प्रवेश होते रहने से पौधों के लिये भोजन काफी मात्रा में तैयार हो जायगा। इसलिये यह आवश्यक है कि खरीफ और रबी के खेतों को खाली होने के बाद बराबर जोता जाय। किसान के बैल बराबर चारा खाते ही हैं, यदि

उनसे इतना काम और ले लिया जाय तो कोई विशेष खर्च नहीं होता।

फसलें जमीन में से ही खुराक लेकर बढ़ती हैं, इससे उनको बढ़ानेवाला अंश कम हो जाता है। यदि पूरी फसल फिर ज़मीन में मिला दी जाय तो कमी ज्यों की त्यो पूरी हो जाय, परन्तु ऐसा होता नहीं। अनाज दूर देशों में चला जाता है। भूसा पशुओं के काम आ जाता है। कड़े डंठलवाले तने टोकरियाँ और छज्जे बनाने के काम आ जाते हैं, या उन्हें ईन्धन के काम में लाते हैं। ऐसी दशा मे यह आवश्यक हो जाता है कि खेतों में खाद डाली जाय।

घर का कूड़ा-करकट और पशुओं का गोबर और पेशाब, आदमियों का मैला और मरे हुए पशुओं की हड्डियाँ गड्ढों में गला-कर खेतों में डालते रहना चाहिये। इससे पैदावार बढ़ जायगी। यदि इसपर भी खाद की कमी हो तो दालवाली फसलें जैसे ग्वार, लोबिया, उर्द, मूँग, मोठ, सनई, नील, धाँइचा आदि खरीफ में बो कर वर्षा के मध्य में खेतों में जोत देना चाहिये, इससे पैदावार बढ़ जायगी।

मिट्टी पलटनेवाले हलों का प्रयोग करके भी पैदावार बढ़ाई जा सकती है। कानपुर फार्म में ऐसा करने से यह पैदावार हुई—

मिट्टी पलटनेवाले हल से जुताई	२० मन गेहूँ
देशी हल से जुताई	१५ मन गेहूँ

ऐसा करने से ५ मन गेहूँ की अधिक पैदावार हुई, जिसका कि मूल्य आजकल के भाव से १५) होता है। इससे एक मस्टन

हल ६) में खरीदा जा सकता है और ९) की बचत हो जाती है। यह हल ५-६ वर्ष तक खेतों के जोतने के काम आ सकता है।

फ़ार्मों पर जो बीज बोया जाता है, उससे किसानों के बीजों की अपेक्षा अधिक पैदावार होती है और मूल्य दोनों का बराबर होता है। हर-एक जिले में कृषि-विभाग के गोदाम मौजूद हैं। वहाँ से आसानी से हर प्रकार का बीज खरीदा जा सकता है। एक बार खरीद लेने के बाद अगले साल के लिये अपना बीज पैदावार में से रक्खा जा सकता है।

खड़ी फसल में निकाई-गुडाई करके पैदावार बढ़ाई जा सकती है। इससे खर-पतवार नष्ट हो जाते हैं और जमीन की कुल खुराक पौधों ही के काम आती है। यदि जमीन में काफी शक्ति न हो तो पहिली सिचाई के साथ तत्काल गुण करनेवाली खादें—जैसे लोना मिट्टी, शोरा आदि दे देना चाहिये। पौधे जब इस योग्य हो जायँ कि खाद का उपयोग कर सकें, तब उपर्युक्त खादें काम में लानी चाहिये।

सिंचाई करते समय क्यारी, बरहे बनाकर पानी देना चाहिये। अधिक पानी देने से जमीन कड़ी पड़ जाती है, पौधो की जड़ छोटी हो जाती है। इसलिये इतना पानी देना चाहिये कि रातभर में खेत में सोख जाय। नहर की सिंचाई में इस बात पर विशेष ध्यान रखना पड़ता है।

जहाँ तक हो सके, धीरे-धीरे खेतों को यकसार बनाने की कोशिश करनी चाहिये, जिससे कि खेती के काम समय पर हो

सकें। ऊँचे-नीचे खेतों में ऊपर की खाद बहकर नीचे चली आती है। जुताई एक-सी नहीं होती। ऊपर का भाग पहिले जोतना पड़ता है, नीचे का बाद को। इससे खेत की तैयारी ठीक समय पर नहीं हो पाती, पानी ठीक तरह से नहीं लगता; निचले हिस्से में अधिक भर जाता है और ऊपरवाले हिस्से के पौधों को बहुत कम मिलता है। इससे पैदावार घट जाती है। ऐसी दशा में अधिक पैदावार लेने के लिये खेतों को यकसार करना ही आवश्यक है।

छोटे खेतों के जोतने में भी कठिनाई होती है और बहुत-सी जमीन मेड़ों के कारण बेकार जाती है, इसलिये अपनी जोत के खेतों को बड़ा ही बनाना चाहिये। जहाँ तक सम्भव हो, उनकी मेड़ें सीधी और आवश्यकता के अनुसार मोटी और ऊँची बनानी चाहिये।

खेतो पर पेड़ न लगाने चाहिये। उनकी छाया से जमीन ऊसर हो जाती है, पैदावार कम हो जाती है। यदि पेड़ लगाने ही हों तो अपनी जोत के उस भाग में लगाने चाहिये जहाँ कि खेती न की जाती हो। ऐसा करने से बेकार जमीन भी काम में आ जायगी और खेतों को किसी प्रकार की हानि न पहुँचेगी।

सिंचाई करने से सदा पैदावार बढ़ती है। यदि किसान के खेतों पर सिंचाई का कोई प्रबन्ध न हो, तो पक्का कुआँ बनाने या नहर से पानी लाने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

समय पर काम करना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरे किसान

किसी काम को आरम्भ नहीं करते, तो हम कैसे करें; इस बात पर ध्यान देना गलती है। खेत को जब जोतने की आवश्यकता समझो, जोतो। खाद देने की आवश्यकता समझो, खाद दो। सिंचाई की आवश्यकता समझो, सींचो। काटने की आवश्यकता समझो, काटो। दूसरों की नकल मत करो। अपनी लाभ-हानि के तुम्हीं जिम्मेदार हो, इसलिये समय पर अपना काम अवश्य आरम्भ कर दो। सफलता उन्हीं को मिलती है, जो अपने कार्यों को खुद समझकर ठीक समय पर करते हैं।

हर घर अपने लिये तरकारी बोवे—

अमेरिका के प्रसिद्ध धनकुबेर तथा अर्थ-शास्त्री हेनरी फोर्ड ने देश-भर में बागवानी का प्रचार करने का आन्दोलन उठाया है। वे कहते हैं कि गरमी में प्रत्येक परिवार अपने लिये कुछ तरकारी तो अवश्य ही बो ले। वे २० हजार एकड़ जमीन में, तरकारी की खेती खुद कर रहे हैं। उसमें हजारों आदमियों से काम लिया जाता और सब तरह की साग-तरकारियाँ उपजायी जाती हैं, जो उनके रासायनिक कारखाने के कर्मचारियों के खर्च में आती हैं। इस विषय में जिज्ञासा करने पर उन्होंने कहा है कि "एक पैर कारखाने में और दूसरा खेत में रहने से देश साम्यावस्था में रहता है और यही बात साधारण कुटुम्ब के विषय में भी है। हमारी असली खराबी यही है कि हम जमीन से दूर-दूर रहते हैं। आप बंक जाकर खाना नहीं पा सकते। वह तो जमीन से ही मिलेगा। देश में इस बात के लिये काफी जमीन मौजद है-

कि हर-एक आदमी आनेवाले जाड़े की चिन्ता से अधिकांश में छुटकारा पा जाय। इसलिये सबसे बड़े बेकारी के बीमे—जमीन के उपयोग—का हमें लाभ उठाना हो तो हमें इसी क्षण उसमें लग जाना होगा। इस काम में किसी तरह की खैरात नहीं है। परती पड़ी हुई जमीनों के मालिक खुशी से उसे खाने की चीजें उपजाने के लिये दे देंगे। कुछ रोजगारी आदमी मिलकर बेरोजगारों के ज़रिये, सहयोग के सिद्धान्त पर, यह करा सकते हैं।"

इस देश के हर आदमी के लिये काफी काम मौजूद है। गाँवों में ऐसी बहुत-सी परती जमीन पड़ी रहती है, जिसमें अगर जेठ-असाढ़ में साग-सब्जी बो दी जायँ, तरकारियों के पौधे रोप दिये जायँ, तो बरसात के अन्त और पूरे जाड़े-भर के लिये तरकारी की पैदावार काफी हो जायगी। ढहे हुए मकानों या खँड़हरों या बेकार पड़ी हुई खुली जमीनों में तरकारी की पैदावार अच्छी हो सकती है। किसानों को तरकारियाँ भी मिलेंगी, हरियाली की शोभा से नेत्रों की जोत भी बढ़ेगी, हवा की शुद्धता और जमीन की सफाई भी रहेगी।

दस एकड़ भूमि और उसका उपयोग—

किसानों के लाभ के लिये खेती-सम्बन्धी मुख्य-मुख्य कई बातें अच्छी तरह समझाकर ऊपर लिखी गई हैं। किन्तु अब भी बहुत-सी बातें जानने योग्य रह गई हैं। बहुत-सी फुटकर बातें बताने से पहले हम यह उन्हें सुझाना चाहते हैं कि थोड़ी-सी भूमि में यदि लगन और सावधानता तथा परिश्रम से नियमा-

नुसार खेती की जाय, तो कैसी पैदावार हो सकती है। आगे इसी बात पर विस्तार से विचार होगा।

यह विदित ही है कि १० एकड़ भूमि १६ बीघे पक्के और ४८ बीघे कच्चे के बराबर है। सब स्थानों पर बीघा एक-सा नहीं माना जाता। कहीं बीघा कच्चा चलता है और कहीं पक्का। एकड़ ३२ बिस्वा का होता है। हम जो कुछ लिखेंगे वह एकड़ को ही आधार मानकर। पाठक अपना हिसाब बीघों से लगा लें।

१० एकड़ भूमि पर खेती करने के लिये दो जोड़ी अच्छे बैलों की आवश्यकता पड़ेगी। अधिकांश किसान दो हल की खेती करते हैं, पर समुचित प्रबन्ध तथा खेती करने के उन्नत वैज्ञानिक ढंग से अपरिचित होने के कारण लाभ के बदले हानि उठाते हैं।

सबसे आवश्यक किसान के लिए यह है कि उसके खेत बराबर हों। हर खेत का धरातल ऊँचा-नीचा न हो। खेत का केवल समतल ठीक न होने से नीची जगह पर पानी चार-छः दिन तक भरा रहता है और ऊँची जगह सूखी पड़ी रहती है। यदि खेत बड़े-बड़े हों और ढालू जमीन पर हों तो छोटे छोटे खेत बना कर प्रति खेत का समतल ठीक कर देना चाहिये। खेत बराबर और समतल सही होने की पहचान यह है कि बरसात या सिंचाई का पानी कुल खेत में बराबर-बराबर भर जाय और जब खेत से बाहर निकाला जाय तो एकदम निकल जाय।

देखा गया है कि किसानों के खेतों के चारों किनारे ऊँचे होते हैं और खेत का बीच नीचा होता है। कुशल किसान अपने खेत

को ऐसा नहीं होने देता । बरसात का पानी यथाशक्ति खेत से बाहर नहीं जाने देना चाहिये, क्योकि पानी के साथ-साथ पाँस (खाद) का वह उपजाऊ अंश, जो फसल के काम आता, बह कर व्यर्थ जाता है। अतएव बरसात शुरू होने के पहले ही खेतों के चारों ओर की मेड़ों को ऊँचा करके बाँध देना चाहिये।

घास-फूस से खेत कमजोर हो जाते हैं। जो अंश फ़सल के उपयोग में आना चाहिये उसे घास-फूस अपने उपयोग में लाते हैं। इसलिये घास-फूस खेत से दूर कर दे और उसे फिर खेत में न उगने दे। घास-फूस निकाल देने से, निकाई के वक्त, समय तथा धन की बचत होती है और फ़सल भी उत्तम पैदा होती है।

खेत यदि गर्मी के दिनों में जोत कर छोड़ दिये जायँ तो कई लाभ हो। धूप, हवा और पानी के प्रभाव से खेत की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाय, घास-फूस नष्ट हो जायँ, बरसात का पानी बह कर खेत से बाहर न जाये, इत्यादि। जिन खेतों में रबी की फसल बोने के बाद गर्मी की जुताई की जायगी उनमें उन खेतों की बनिस्बत अधिक पैदावार होगी, जिनमें गर्मी के दिनों की जुताई नहीं की गई। इस जुताई के लिये लोहे के मिट्टी पलटनेवाले हल—जैसे मेस्टन, वाट्स या पंजाब हल होना अत्यावश्यक है। हर किसान को एक-एक मेस्टन हल जरूर रखना चाहिये; पर इसकी कीमत इतनी अधिक है कि प्राय: किसान इसको खरीदने में असमर्थ रहते हैं। कई किसान मिल-जुलकर खरीद सकते हैं।

पृथ्वी की उत्पादक-शक्ति अब दिन पर दिन घटती ही जाती

है। जो पैदावार प्रति एकड़ ५० वर्ष पहले होती थी वह अब नहीं होती। इसका मुख्य कारण यही है कि पाँस के अंश (ज़मीन के उपजाऊ भाग) का व्यय अधिक और उसकी आय कम है। प्रचलित लगान-कानून भी इसका दोषी है। किसान खेत वेदखल हो जाने के भय से खेत की उत्पादक-शक्ति बढ़ाने के लिये अपना समझकर खाद आदि का उपयोग न कर केवल जो कुछ पैदा हो जाता है उसी से अपने को संतुष्ट कर लेता है। किसान गोबर का उपयोग जलाने में करके अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मारते हैं। गोबर से उत्तम अन्य कोई भी खाद नहीं है जो इतनी सुलभ, इतनी लाभदायक किसान के लिये सिद्ध हुई हो। जलाने के लिये लकड़ी का उपयोग करना चाहिये। सरकार को चाहिये कि प्रत्येक गाँव में चरागाह और लकड़ी के लिये कुछ ज़मीन छुड़वा दे।

खाद का ड्योढ़ लगा लेना चाहिये। खूब सड़ी हुई खाद का ही प्रयोग करने से लाभ होता है। जिनके पास गोबर की पाँस के लिये समुचित साधन नहीं हैं और खाद की कमी है, उनको "हरी खाद" का प्रवन्ध करना चाहिये। इसके लिये सनई वहुत अच्छी है। शुरू वरसात में, या जहाँ नहर है वहाँ नहर से, सिंचाई करके सनई बो दें। जब पौधे तीन-चार फीट ऊँचे हो जायँ, इसके पूर्व कि पौधे अधिक कड़े हों, खेत में जोत देना चाहिये। जोतने के पहले सनई के ऊपर पाटा फेर कर गिरा देना आवश्यक है। उसके वाद होशियारी से मिट्टी पलटनेवाले हल से इस प्रकार जोत दे कि सनई मिट्टी से वन्द होती चली जाय। ऊख और

गेहूँ की फ़सल के पहले इस खाद का प्रयोग कर सकते हैं। हल्की भूड़ या दूमट ज़मीनों पर हरी खाद अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हो चुकी है।

फसलों को अदल-बदल कर इस प्रकार बोना चाहिये कि थोड़े रकबे में अधिक से अधिक पैदावार हो सके। आसानी के लिये १० एकड़ ज़मीन को तीन-तीन एकड़ के बराबर-बराबर भागों में बाँट दे। एक एकड़ शेष ज़मीन चरी आदि बोने के काम में लावे। इन टुकड़ों में एक में गन्ना या ऊख, दूसरे में गेहूँ और तीसरे में कपास और कपास के बाद गन्ना या ऊख बोवें। चार वर्ष के बाद एक फसल की पारी एक बार हर टुकड़े में आवेगी। दक्षिण-भारत के कोयम्बटूर नामक स्थान में जो सरकारी कृषि-विभाग का फार्म है, वहाँ से २१३ और २९० नम्बर का गन्ने का बीज मँगाना चाहिये, और उन बीजों को नालियों में बोने से अच्छी पैदावार होती है।

कपास नवम्बर के अन्त तक फूलना बन्द हो जायगी, उस समय पानी देकर खेत गन्ना बोने के वास्ते दो-तीन जुताई करके तैयार कर ले। दिसम्बर के अन्त तक १० गाड़ी फी एकड़ पाँस डालकर तीन-तीन फीट दूरी पर नालियाँ बनवा दे। नालियों में १० गाड़ी फी एकड़ सड़ी गोबर की खाद और डालकर भली प्रकार कुदाल से गुड़ाई कराके खूब मिला दे और बोने के योग्य बना ले। अगर काफी नमी न हो तो नालियों में पानी दे दे। फ़रवरी के मध्य तक खेत पूरी तरह गन्ना बोने के लिये तैयार

हो जावे और मार्च के प्रथम सप्ताह तक गन्ने की बुवाई उत्तम कर देना अच्छा है।

बोते समय गन्ने को तीन-तीन गाँठ के अच्छी आँखवाले (जहाँ से नया कल्ला निकलता है, उसको आँख कहते हैं) टुकड़ों को गँड़ासे से काट दे। जड़ें और अन्त के भाग को, जिनमें कीड़ा लगा हो या जिस गन्ने का गूदा लाल हो गया हो, बीज के काम में न लावे। एक एकड़ में चालीस मन पक्का बीज पड़ता है। नालियों के अन्दर हल से या कुदाल से कूड़ बनाकर टुकड़े बो दे। टुकड़ों के ऊपर इतनी अधिक मिट्टी न हो कि नया कल्ला ऊपर न निकल सके और इतनी कम भी न हो कि गन्ने का टुकड़ा धूप की गर्मी से सूख जाय। बुवाई के बाद हल्की गुड़ाई भी करा दे और अगर आवश्यकता पड़े तो सिंचाई भी कर दे। प्रत्येक सिंचाई के बाद गुड़ाई कराना अत्यन्त आवश्यक है। ज्यों ज्यों गन्ना बड़ा होता जाय, नाली हर गुड़ाई के साथ गिरवाता जावे;और बरसात से पहले ही फावड़े से गन्ने की जड़ के ऊपर (एक फ़ीट ऊँची) मिट्टी चढ़वा दे। इस प्रकार जहाँ नाली बनाई गई थी और गन्ना बोया गया था वहाँ एक फ़ुट ऊँची मेंड़ बन जायगी और जहाँ मेंड़ थी उस स्थान पर एक फ़ुट गहरी नाली, जो पानी देने के काम आवेगी। गन्ने में आवश्यकतानुसार बारिश से पहिले और बाद में कुल चार से छः बार तक पानी देने की आवश्यकता पड़ेगी। इस प्रकार खेती करने से गन्ने की पैदा-वार प्रति एकड़ कम से कम आठ सौ मन पक्के गन्ने की होगी।

जब खेत गन्ने से खाली हो जाय तो शुरू जून में नहर से या कुएँ से पानी देकर हरी खाद के लिये सनई बो दे। इसका बीज प्रति एकड़ डेढ़ मन व एक मन पक्का के हिसाब से पड़ता है अगस्त में पाटा देकर सनई सड़ने के लिये मिट्टी पलटनेवाले ० से जोत दे और खेत तैयार करके अक्टूबर में गेहूँ बो दे।

पूसा के गेहूँ नं० चार व बारह की पैदावार अच्छी होती है। इसका बीज कृषि-विभाग के हर जिले और तहसील में स्थापित गोदामों पर, सवाई पर, मिलता है। पैदावार ३०S मन पक्की तक हो सकती है। २०, २५ मन तो आसानी से हो सकती है। गेहूँ काटने के बाद फौरन लोहे के हल से गर्मी की जुताई करके खेत को छोड़ दे। इससे बड़ा लाभ होता है। मई में पानी देकर कपास बो दे।

अलीगढ़ की कपास नं० १९ और पूसा की कपास न० ४०२ और ५२० अच्छी साबित हुई है। पैदावार ८ से १० मन प्रति एकड़ हो सकती है। बीज नहर तथा कृषि-विभाग से प्राप्त होते हैं, जहाँ से इनके बोने और काश्त करने के तरीके भी छपे हुए मिलते हैं। कपास के बाद ऊपर लिखे अनुसार फिर खाद देकर गन्ना बोया जाय।

इस प्रकार खेती करने से कम से कम नीचे लिखी आय होगी। व्यय प्रबन्धकर्त्ता की बुद्धिमानी, चतुरता तथा स्थानीय मजदूरी के रिवाज पर निर्भर है। पाठक स्वयं हिसाब लगा लें—

३ एकड़ गन्ना, ८०० मन फी एकड, २४०० मन; ।।) आठ आना प्रति मन के भाव से......१२००) रुपया।

३ एकड़ गेहूँ, २५ मन फी एकड़, ७५ मन; ५) पाँच रु० फी मन के भाव से..... ३७५) रु०

३ एकड़ कपास, ८ मन फी एकड़, २४ मन, ८) फी मन के भाव से ..१९२) रु०

कुल योग १७६७) रुपया।

आमदनी, यदि भली प्रकार कार्य किया जाय तो, इससे और भी अधिक हो सकती है।

क्या मेस्टन हल से उपज बढ़ती है?

वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बने हुए ये उन्नतिप्राप्त मिट्टी पलटनेवाले लोहिया हल निःसन्देह देशी हलों से कई अंशो में उपयुक्त हैं। मेस्टन हल की एक जुताई, देशी हल की लगभग चार जुताई के समान होती है, और मेस्टन जैसे मिट्टी पलटनेवाले हल ही वास्तव में जुताई के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं, और इनके ही द्वारा जुते हुए खेतों से हमारे देश के काश्तकार अधिक से अधिक पैदावार ग्रहण कर सकते हैं।

यह बात हम मानने के लिए तैयार हैं कि भारतीय सभ्यता के आदि-काल में, जब कि भारतवासियों ने कृषि-कार्य करना आरंभ किया था, भारत-भूमि को खुरच करके बीज बो दिया जाता था, तो आवश्यकता से अधिक मनमानी पैदावार हो जाती थी, जिसके कारण किसानो को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति

के अतिरिक्त इतना धनधान्य बच रहता था कि इस देश में लाखों मन जव और तिल हवनों द्वारा स्वाहा करके देश का जलवायु शुद्ध किया जाता था और उसीके द्वारा इन्द्रादिक देवताओं को प्रसन्न करके उत्तम वर्षा की भी आशा की जाती थी। उस काल की आवश्यकताओं को देखते हुए उस काल के कृषि वैज्ञानिकों ने जिस रूप में देशी हल का आविष्कार किया, उस रूप में उस समय के लिए भारत-भूमि की प्राकृतिक उर्वरा-शक्ति के अनुसार उपयुक्त था, और आज भी हमारा देशी हल हमारे देश के लिए कई दृष्टियों से उतना ही उपयुक्त है, जितना पहले था।

किन्तु अब हमारे देश के किसानों को यह समझ लेना चाहिए कि संसार की परिवर्तनशीलता अनिवार्य्य है, वह किसीके टाले टल नहीं सकती। ऐसी अवस्था में यदि हम अपने देश के वाणिज्य व्यवसाय को दूसरे देशों के मुकाबले में पहुँचाना चाहते हैं तो हमें वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बने हुए कृषि-यन्त्रो को केवल खरीद कर प्रयोग में ही नहीं लाना होगा, वरन् अपने देश के लोहारों और मिस्त्रियों को इस प्रकार की ट्रेनिंग भी देनी होगी कि वे वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बने हुए कृषि-यन्त्रों के बनाने में दत्त-चित्त हों और अपने देश की आवश्यकता के अनुसार ऐसे कृषि-यन्त्र बनावें और बेचें, जिनकी आज हमारे देश के किसानों को आवश्यकता है। तभी वास्तविक सफलता मिल सकती है।

जिस प्रकार से हमारी सभी बातें अधोगति को पहुँच गई हैं, उसी प्रकार बैलों की नस्लें भी अधोगति को पहुँच गई हैं। पशुओं

के पालन-पोषण की रीतियाँ आज-कल किसानों में इस तरह भद्दे तौर पर बर्ती जाती हैं जिनका उल्लेख करना भी लज्जाजनक होगा। इस सम्बन्ध में इस समय हम केवल इतना ही कहेंगे कि हमारे देशी बैल उस नस्ल के बैलों की सन्तान हैं जिनको कि प्राचीन काल में नन्दी बैल कहते थे, और वह नन्दी बैल इन मिट्टी पलटनेवाले हलों को क्या—बाबा महादेवजी को अपनी पीठ पर बैठाकर आकाश-पाताल-मृत्युलोक में घुमा ले आता था। आज उन्हीं नन्दी बैल की सन्तानों की यह दुर्दशा है कि वे मिट्टी पलटनेवाले लोहिया हलों को भी खींचने में असमर्थ हैं। हिन्दू किसान ऐसी बातें कहते हैं, उन्हें लज्जा आनी चाहिए और उन्हें अपने बैलों तथा अन्यान्य पशुओं की नस्लों का सुधार और उनके पालन-पोषण की रीतियों में सुधार करना चाहिए। इससे हमारे देशी बैल इन मिट्टी पलटनेवाले हलो को आसानी से खींच सकेंगे।

किसान लोग कहते हैं कि इन हलो की मरम्मत देहाती लोहार नहीं कर सकते, इनका यदि कोई अंश भी खो जाता है तो हम लोगों को सरकारी गोदामो की शरण में जाना पड़ता है। इस सम्बन्ध में हम यही कहेंगे कि देहातों की सड़कों पर किराये की पचासों मोटर लारियाँ चलें, और आटा पीसने के लिये पनचक्कियाँ कस्बे-कस्बे मे लग जायँ, तो उनकी मरम्मत देहाती मिस्त्रियो द्वारा हो जाय, किन्तु मिट्टी पलटनेवाले लोहिया हलो की मरम्मत देहातों में न हो सके! इतना ही नहीं, ईख पेरने के लोहिया कोल्हू तो देहातों में मरम्मत हो जायँ और मिट्टी पलटनेवाले हलों की

मरम्मत न हो सके, यह कैसी उलटी और आश्चर्यजनक दलील है ? मेरा विश्वास है कि यदि लोहारो को इस बात के लिये काश्तकार लोग विवश करें तो वे उन हलों की मरम्मत ही नहीं कर सकते, वरन् ऐसे हलों को बनाकर बेच भी सकते हैं।

भारत-भूमि की उर्वरा-शक्ति सृष्टि के आदि-काल मे इतनी बलिष्ठ थी कि देशी हलों के प्रयोग से हम लोग सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग के प्रथम चरण के आरम्भ-काल तक पर्याप्त पैदावार ले सके। किन्तु अब भारत-भूमि के धरातल की उर्वरा-शक्ति क्षीण हो गई है। भारत-भूमि के धरातल में अब पहिले की सी उर्वरा-शक्ति नहीं रही, जिसके कारण हमारे देशी हलों की जुताइयो से अब प्रति बीघा उतनी पैदावार नही होती जितनी पहिले हुआ करती थी। इसी से काश्तकारो के खेतों की पैदावार दिन-दिन घटती जा रही है। प्रायः काश्तकार लोग यही कहा करते हैं कि जिन खेतों की पैदावार हमारे बाप-दादों के समय में १५ या २० मन बीघा थी, उसमें अब १० मन बीघा भी नहीं होती। इन सब बातों को वे समय और भाग्य के मत्थे छोड़ दिया करते हैं। किन्तु उसके असली कारण पर विचार नहीं करते। वास्तव में खेत के धरातल की उर्वरा-शक्ति बराबर पैदावार लेते-लेते नष्ट हो गई है। इसलिये अब उतनी पैदावार हम देशी हलों के प्रयोग से नहीं कर सकते, जितनी कि पहले हमारे बाप-दादा किया करते थे। किन्तु, यदि हम खेतों के गर्भ-तल के भाग को खोद या उलट सकें और धरातल की मिट्टी को खोदकर गर्भ-तल के स्थान पर

सुस्ताने के लिए भेज दें, तो हमारे खेतों की पैदावार फिर बढ़ने लगेगी, और हम उन्हीं खेतों से १५-२० मन बीघा पैदा करने लगेंगे।

खेत के गर्भ-तल की मिट्टी को हम फावड़ों द्वारा खोद करके भी ऊपर कर सकते हैं। जिन खेतों में शकरकंद या आलू तथा अन्यान्य जड़दार फसलें बोई जाती हैं और उनकी खुदाई फावड़े द्वारा होती है, उन खेतो के गर्भ-तल को मिट्टी अधिकतर ऊपर आ जाती है और खेतों के धरातल की मिट्टी नीचे चली जाती है। आषाढ़ या कार्तिक में बोई जानेवाली फसलों की पैदा-वार प्रायः इन खेतों में अन्यान्य खेतों की अपेक्षा अधिक हुआ करती है। इसका प्रधान कारण यही है कि खेत के धरातल को उलट दिया गया और गर्भ-तल की मिट्टी ऊपर लाई गई। फावड़े से यह काम होता तो अच्छा है, किन्तु ऐसा करना काश्तकारों के लिए कठिन तथा मँहगा है; क्योंकि जिसके पास दस बीघा खेत है वह कैसे दसों बीघा फावड़े से खोदकर गर्भ-तल की मिट्टी ऊपर ला सकता है?

इन्हीं सब बातों पर दृष्टि रखते हुए ये मिट्टी पलटने-वाले हल आविष्कृत किए गए हैं; जिनमें से मेस्टन हल सबसे अच्छा है और हमारे किसानों के लिए बहुत ही उपयुक्त है। इस-लिए हमारे किसानों को अधिकतर मेस्टन हल का प्रयोग करना चाहिए। इन हलों के प्रयोग का उचित समय यह है कि जब खेत से फसल कट जाय—चाहे वह रबी की फसल हो या खरीफ की, उसके कटने और उठने के पश्चात् तुरन्त खेतों को इन मिट्टी पलटने-

वाले हलों से जोत देना चाहिए। ऐसा करना ही खेतों की जुताई का मुख्य सिद्धान्त है। ऐसा करने से उस फसल की जड़ें, जो गर्भ तक गई हैं, धरातल पर आकर सूख जायँगी और इन जड़ों में फसलो को हानि पहुँचानेवाले जिन कीड़े-मकोड़े के अंडे-बच्चे होंगे वे सब ऊपर आकर सूर्य की गर्मी और वायु के कारण मर जाँयगे और अगली फसल को हानि न पहुँचा सकेंगे, और तुरन्त जुत जाने से पोधों की जड़ें उखड़-पुखड़कर ऊपर आ जाएँगी, जो खेत से खुराक खींचकर उसे नष्ट न कर सकेंगी, क्योंकि बहुत-सी फ़सलों की जड़ों में यह विशेष गुण होता है कि वे ऊपर भी भूमि से खुराक ग्रहण किया करती हैं, और खेत को बराबर कमज़ोर करती रहती हैं तथा उपयुक्त ऋतु पाने पर फिर फसल के रूप में खेत मे खड़ी हो जाती हैं। इस लिए फसल कटने के पश्चात् मिट्टी पलटनेवाले हलो से बराबर खेतों की जुताई करते रहना चाहिए।

यदि रबी की फसलें फाल्गुन में कट जाँयगी तो चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में इन हलों से जुताई करते रहना चाहिये। गर्मी में निरन्तर इन हलों से जुताइयाँ करते रहने से लाभ यह होगा कि खेत के धरातल के उलट जाने से उसपर गर्मी, वायु, लूह का भली प्रकार से प्रभाव पड़ेगा। इस कारण इस गर्भ तक की मिट्टी में, जिसमें कि पौधों की खुराक भरी हुई है, अनेकों प्रकार के भौतिक और रासायनिक परिवर्तन होंगे, जिससे गर्भ तक की मिट्टी की सारी की सारी खुराक इस रूप में परिवर्तित हो जायगी कि पौधे की जड़ें उसे आसानी से ग्रहण करके अच्छी से अच्छी पैदावार

दे सकेंगी। इसलिये काश्तकारों को चाहिये कि इन मिट्टी पलटने वाले मेस्टन जैसे हलों का प्रयोग अपनी खेतों की जुताइयों के बाद ही आरंभ कर दें और उन खेतों को चैत्र, वैशाख, ज्येष्ठ में दो तीन बार अवश्य जोत डालें।

वर्षा-काल में जब पानी बरस जाता है तो खेतों में सारे खर-पतवार के बीज उग आते हैं और खेत हरा-भरा हो जाता है और इन हानिकारक पौधों द्वारा खेत की खुराक नष्ट होने लगती है, जिससे आधी फसल की पैदावार में कमी पड़ जाती है। इन खर-पतवार के पौधों को देशी हलों की जुताइयाँ कभी भी समूल नष्ट नहीं कर सकतीं। इनके कारण खेत की उर्वरा शक्ति नष्ट हो जाती है। इस कारण वर्षा-काल में भी, इन मिट्टी पलटनेवाले हलों के प्रयोग से खर-पतवारों के पौधों को समूल नष्ट कर यदि धरातल के साथ आप नीचे गाड़ देंगे तो ये खेत की शक्ति नष्ट करने के बजाय स्वयं सड़कर खाद के रूप में खेत की शक्ति हो जायँगे और पैदावार बढ़ाने में सहायक होंगे। ऐसा करने से खर-पतवार नष्ट हो जायँगे, खेत में पानी अधिक सोखेगा, हवा और धूप का संचार भी खेत के धरातल और गर्भतल में भली प्रकार से हो सकेगा, जिससे पौधों की खुराक अच्छी तैयार होगी और पैदावार भी खूब होगी।

वर्षा-काल समाप्त होने पर क्वार के महीने से इन मिट्टी पलटनेवाले हलों को तेल लगाकर और साफ करके गोदामों में रख देना चाहिए, और उन खेतों में, जिनमें कि रबी बोनी है, कभी भी

जुताई नही करनी चाहिए। इसका कारण यह है कि उन दिनों में केवल इस बात की कोशिश की जाती है कि खेत की नमी कायम रहे जिससे बीज बोने पर उग आवें। इस कारण ऊपर की मिट्टी को भुरभुरा करते रहने के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन दिनों की जुताई के लिए "हैरो" बहुत ही उपयुक्त कृषि-यंत्र है, जिसका कि प्रयोग वर्षाकाल के पश्चात् रबी के खेतों की तैयारी के लिए किया जाता है। किन्तु किसानों के लिए इस समय में उनके देशी हल ही अच्छा काम दे सकते हैं, क्योंकि उनके जोत की गहराई भी "हैरो" के ही समान होती है। इसलिए वर्षा समाप्त होने के बाद रबी के खेतों की तैयारी के लिए देशी हल का प्रयोग करना चाहिए। उसके बाद बुवाई के समय में भी देशी हल ही हमारे किसानों के लिए सहायक और लाभप्रद हैं।

वर्षा के पश्चात् यदि मिट्टी पलटनेवाले हलों से जुताई की जायगी तो खेत गहरे जुतने के कारण फुलफुल हो जायँगे जिससे क्वार-कार्तिक की गर्म हवा भीतर प्रवेश करके उनकी सारी नमी नष्ट कर देगी और बीज बोए जाने पर जम न सकेंगे। ऐसी अवस्था में भादो के पश्चात् इन हलों को एकदम बन्द कर देना चाहिए और देशी हल अथवा "हैरो" का प्रयोग करना चाहिए। ईख तथा इसी प्रकार की अन्यान्य फसलों के लिए इस समय भी मिट्टी पलटने के लिए इन्हीं वैज्ञानिक हलों से काम करना चाहिए। सारांश यह कि गर्मी और वर्षा-काल में मिट्टी पलटनेवाले और रबी के समय देशी हल का प्रयोग करना अधिक लाभप्रद है।

ब्राह्मण-क्षत्रियों को हल जोतना चाहिये—

हमारे हिन्दू-सम्प्रदाय मे कुछ ऐसी रूढ़ बातें भी हैं जिनको कुछ लोग करते हैं और कुछ लोग करने से इनकार भी करते हैं। हल चलाना भी उन्हीं मे से एक है। हम देखते है कि संयुक्त-प्रान्त ही मे ब्राह्मण और क्षत्रियों की एक काफी संख्या हल चलाती है। तो भी कुलीन कहानेवाली उन्हीं में की एक जमात इस काम को निषिद्ध मानती है। वे यह तो कह नहीं सकते कि यह धर्म-विरुद्ध कर्म है, क्योंकि हल चलानेवालो के साथ उनका खान-पान, ब्याह-शादी होती है, लेकिन कुलीनता की शान मानने में यहाँ तक दृढ़ हैं कि वे पाँस सिर पर ढोकर खेत में भले स्वयं डाल देते हैं, पर हल चलाने के लिए दूसरों का मुँह ताकते हैं— चाहे बीज बोने का समय निकल जाय या भले ही खेत परती पड़ जाय। इसका फल यह होता है कि क्षत्रिय या ब्राह्मण को यदि धन-जन आदि का कुछ बल है, तो वह शूद्र या चमार को मार-पीट कर, न माने तो उसका घर फूँककर, अपना खेत जोताने-बोआने का उद्योग करता है। और, यदि वह निर्बल है तो किसी हल जोतनेवाले के हाथ खेत उठा देता है और आप हल जोतने से कहीं अधिक निषिद्ध सेवा-वृत्ति करता फिरता है।

हमने बहुतेरे ऐसे ग़रीब ज़मींदारों को देखा है, जो अपनी इस मर्य्यादा की रक्षा करने के लिए महाजनों और कायस्थों को चार-चार छः-छः रुपये की नौकरी करते हैं, जिसमें उन्हें सिर्फ घर और दूकान पर झाड़ू-बुहारी ही नहीं करनी पड़ती, बल्कि छोटे

बच्चों को गोद में खेलाते हुए उनका मल-मूत्र भी धोना पड़ता है। पर इसमें वे अपनी मर्यादा का नाश नहीं समझते !

हिन्दू-सम्प्रदाय की धर्म-कर्म-मर्यादा के मूल, वेदों, से यह सिद्ध है कि हमारे पूर्वज, जिनके गोत्रों से हमारी कुलमर्यादा बनी है, खेती करते थे तथा हल भी जोतते थे। वे खेती करना विद्वानों का काम समझते थे, शूद्रों का नहीं। बल्कि शूद्र वा अशिक्षित तो खेती कर ही नहीं सकते थे; क्योंकि खेती का प्रत्येक काम वेद-मंत्र से आमंत्रित किया जाता था, जिसके बिना खेत से उपजा हुआ अन्न द्विजों के नित्य-नैमित्तिक बलिवैश्य-देवादि यज्ञों के काम में नहीं आ सकता था।

यदि हम वेदों को ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो ज्ञात होता है कि भारतवर्ष में आर्यों का सबसे पहला धंधा खेती और पशुपालन था तथा उससे उत्पन्न हुए अन्न और घृत से यज्ञ करना धर्म था। यज्ञ को धर्म मानने का प्रधान अभिप्राय यही सिद्ध होता है कि उससे पानी बरसता था, जो खेती के लिए परमावश्यक है। हिन्दुओं के लिए यदि संसार में मानमर्यादा रखनेवाला कोई काम है अथवा यदि हिन्दू-धर्म-शास्त्र माननेवालों का कोई प्राचीन और प्रधान धार्मिक उद्यम है, तो वह खेती ही है। वर्तमान समय में भी "उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान" आदि कई एक लोकोक्तियाँ खेती की सर्वोत्कृष्टता का प्रमाण हैं।

परन्तु इतना सब होते हुए भी हम देखते हैं कि स्मृति-काल में ब्राह्मण-क्षत्रियों के खेती करने में रुकावट डाली गई थी और इस

रुकावट का कारण एक छोटा-सा दोप यह बतलाया गया कि हल चलाने में भूमि में रहनेवाले चींटी आदि कीटों की हिंसा होती है। वास्तव में देखिये तो चींटी आदि कीटों की हिंसा से हम अपने किसी काम में नहीं बच सकते। इसीसे उसके प्रायश्चित्त के लिए स्मृतियों ने बलिवैश्य-देव-यज्ञ को प्रतिदिन के कर्मसंध्यादि के साथ नियोजित किया है। स्वयं स्मृतिकारों ने भी यह माना है कि वेद-विरुद्ध यदि उनकी राय हो, तो वह न मानी जाय। तब कृषि-त्याग का यही कारण नहीं हो सकता, इसके भीतर कोई और ही राजनैतिक भेद है। उस समय की परिस्थिति देखते हुए इसके निम्नांकित कारण मालूम होते हैं—"(१)—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि के कर्मों का नैतिक विभाग। (२) ब्राह्मण, क्षत्रिय के—इस कार्य के—पूर्ण रूप से हथियाए रहने से वैश्य और शूद्रों को उद्यम का अभाव।" दोनों कारण एक साथ उपस्थित हुए होंगे और उन्होंने वर्णों की कर्म-व्यवस्था की जड़ डाली होगी। स्मृतियों में जो ब्राह्मणों को पढ़ाना, यज्ञ कराना और दान-लेना—क्षत्रियों के प्रजा-पालन, युद्धादि—वैश्यों के कृषि-व्यापारादि और शूद्रों के कारीगरी और सेवा-कर्म आदि की जो व्यवस्था है, और एक को दूसरे के कर्म करने का जो निपेध किया है उसका अभिप्राय यही है कि हर किसी को अपनी जीविका के उपार्जन में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। तो भी यह सोचते या देखते हुए कि इस व्यवस्था से आपत्तिकाल में जीविका में बाधा पड़ेगी, उसके साथ में यह प्रतिवाद भी लगा दिया गया कि ब्राह्मण यदि अपनी

जीविका से अपना भरण-पोषण न कर सके, तो वह क्षत्रिय की और फिर वैश्य की खेती और जीविका ग्रहण करे। इसी प्रकार क्षत्रिय वैश्य की जीविका से अपनी रोजी चलावे। वैश्यवृत्ति करते हुए भी व्यापार में कुछ वस्तुओं के बेंचने का निषेध किया गया है। जैसे मांस, मिठाई, तिल, पाषाण, नोन, पशु, मनुष्य, रँगे हुए वस्त्र, सन, अलसी, भेंड़ का ऊन, फल, मूल, जस्ता, लोहा, विष, दूध-दही, घी, तेल, गुड़, सुगन्धित द्रव्य, शहद, मोम, हाथी, घोड़ा आदि। लेकिन किसानी करता हुआ ब्राह्मण और क्षत्रिय खेत में उपजे तिलों को भी व्यापारिक अभिप्राय के बिना बेंच सकता है।

कहना न होगा कि सैकड़ों वर्षों से—जब से भारत का राज्य विदेशियो के हाथ मे गया है तब से—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, सभी पर आपत्काल का वज्र टूट पड़ा है। जो हिन्दू-राज्य के समय हिन्दुओं की राज-व्यवस्था निश्चित की गई थी, वह चालू न रह सकी। ऐसी ही परिस्थिति में शास्त्र ने अपनी मर्यादा रखने के लिए उक्त आपत्ति-कालिक व्यवस्था दी है।

ब्राह्मण-क्षत्रिय को, अपनी रोजी के अभाव में, (जो कि इस समय आम तौर से है) खेती करना ही मुख्य धर्म है और यही अपने कुल की मर्यादा है। बड़े खेद का विषय है कि हलवाई की दूकान करना, हाथी-घोड़े बेंचना, वस्त्र बेंचना, नोन-तेल और फल तथा धातु आदि का व्यापार, जिसे धर्मशास्त्र ने आपत्काल में भी करने का निषेध किया है, करने में तो हमारे ब्राह्मण, क्षत्रिय

अपनी मर्य्यादा वा धर्म की हानि नहीं समझते; परन्तु खेती—जिसके करने की विधि है, जो हमारा सनातनी वैदिक कर्म है—करने में अपनी मर्य्यादा का लोप मानते हैं।

अभी तक अधिकांश द्विजातियों में हल-ग्रहण की प्रथा नहीं है। परन्तु जैसा विकराल समय आ गया है, उसे देखते हुए हम द्विजातिमात्र से प्रार्थना करेंगे कि उन्हें कृपा करके बिना सभा किये, बिना शास्त्रार्थ किये, बिना किसी से चिढ़े और बिना लड़े-भिड़े यथावकाश हल जोतना चाहिए। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सभी अपने-अपने खेतों में ६ या ८ बैलों के जोड़े से हल जोत सकते हैं। अपना पूजा-पाठ भी यथासमय करते रहें और अपनी जाति-पाँति भी निभाते रहें। आपत्तिकाल में जीविका का प्रश्न सर्व्व-शास्त्रसम्मत है। सैकड़ों प्रमाण के श्लोक ऐसे मिलते हैं, जिनसे आपत्तिकाल में हल-ग्रहण सिद्ध होता है। विवाद से कोई बात हल नहीं हो सकती। केवल सरल स्वभाव से ही जो बात समाज ग्रहण कर लेता है, वही उचित हो उठती है। इसलिए सबको अपनी-अपनी इच्छा से ही हल-ग्रहण में प्रवृत्त होना चाहिए।

यदि जिला बोर्ड मिडिलस्कूलों में १०—२० बीघा खेत व २-२ जोड़ी बैल रखकर लड़कों को उनके इच्छानुसार कृषि-शिक्षा तथा हल जोतने की भी पढ़ाई जारी कर दें, तो धीरे-धीरे द्विजातियों के लड़के हल से घृणा करना छोड़कर अगली पीढ़ी तक आनन्द से अपनी जीविका का प्रश्न सरल कर सकेंगे और मिडिलची लोग मारे-मारे न फिरेंगे। यों तो शिक्षा में गृहस्थी की

प्रत्येक बात जितनी ही बतलाई जावे उतनी ही उपयोगी हो सकती है, पर हल जुतवाना अतीव आवश्यक है।

एक प्रत्यक्ष उदाहरण लीजिए। काशी के दैनिक 'आज' में यह समाचार छपा था—

"रीवाँ राज्य के किसानों की प्रगति के इतिहास में ६ जुलाई (१९३२) स्मरणीय दिवस कहा जा सकता है। उस दिन २० हजार मनुष्यों की उपस्थिति में रीवाँ-नरेश महाराज बांधवेश ने अपने हाथ से हल चलाया। उनके बाद मन्त्रियों और सरदारों ने भी उनका अनुकरण किया। यह समारंभ इस उद्देश्य से किया गया कि हल को स्पर्श न करने के संबंध में राज्य के ब्राह्मणों और क्षत्रियों में जो गहरा विश्वास जमा हुआ है, वह दूर किया जाय। राज्य के अधिकांश किसान ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं। इसलिये इस विश्वास के कारण खेती की उन्नति में भारी बाधा पहुँचती थी। यही नहीं, इस अन्धविश्वास के कारण एक तरह की बेगारी की प्रथा भी चल पड़ी। इसके पहले महाराज ने सुधार के प्रयत्न किये, पर उनका कुछ फल न हुआ। अन्त में जनता के सामने स्वयं अपने हाथ से हल चलाकर उदाहरण दिखा देने का महाराज ने निश्चय किया। इस अवसर पर उन्होंने एक उपयुक्त भाषण भी किया जिसमें उन्होंने इस विषय को आर्थिक और सामाजिक दोनों दृष्टि से समझाया। महाराज ने कहा कि यदि अपने हाथ से हल चलाने में कोई पाप लगता हो, तो प्रजा की भलाई के लिये मैं उस पाप को अपने ऊपर ले लेता हूँ। महाराज ने यह भी घोषणा

की कि जो क्षत्रिय और ब्राह्मण अपने हाथ से हल चलावेंगे, उन्हें खास इनाम दिया जायगा। इस सभारम्भ से जनता पर गहरा प्रभाव पड़ा है।"

क्या हमारे ब्राह्मण-क्षत्रिय भाई हमारे नम्र-निवेदन पर ध्यान देकर विचार करेंगे ? राजा जनक ने भी इसीलिये हल चलाया था कि प्रजा की मूर्खता से पड़ा हुआ अकाल दूर हो। यदि अब भी ब्राह्मण क्षत्रिय नहीं चेतेंगे, तो भारत में उनकी अवस्था अवश्य संकटापन्न हो जायगी।

डेनमार्क के कृषक—

यहाँ हम योरप के एक कृषि-प्रधान देश का हाल इसलिये लिखते हैं कि हमारे देश के किसान इन बातों से कुछ सबक सीखें और आदर्श ग्रहण करके उत्साह के साथ उन्नति करें।

डेनमार्क योरप के उत्तरी भाग में एक छोटा-सा स्वतंत्र देश है। उसकी जनसंख्या लगभग २८,५१,०७६ है और विस्तार २४२१५ वर्गमील है। उसका प्रधान व्यवसाय कृषि, गोपालन एवं वाणिज्य है। लोग बड़े परिश्रमी, चतुर एवं उद्यमी हैं।

सन् १८८२ ईसवी के पूर्व डेनमार्क के कृषकों की आर्थिक दशा वैसी ही थी जैसी आजकल भारतवर्ष की है; किन्तु अब समस्त संसार में डेनमार्क के कृषक अधिक धनवान, शिक्षित एवं कृषिकार्य में निपुण हैं। डेनमार्क के कृषक भारत की तरह केवल कृषि ही नहीं करते, वरन् कृषि की उपज से वे अन्य सुन्दर-सुन्दर

पदार्थ एवं वस्तुएँ भी निर्माण करते हैं जिनकी बिक्री से उन को भली-पूरी आय हो जाती है।

भारतवर्ष में यदि किसी वर्ष वर्षा न हुई, तो देश में दुर्भिक्ष से हाहाकार मच जाता है। इसका मूल कारण यही है कि हमारा सारा सुख एवं सम्पत्ति कृषि ही होती है और उसी पर हमारा भरण-पोषण निर्भर रहता है। किन्तु डेनमार्क के कृषकों में आपस में सहकारिता अधिक है। साझे के कारखानों में भिन्न-भिन्न व्यक्ति के माल को मिलाकर उपयोगी पदार्थ तैयार कर लेते हैं और उसे बेचने में पूर्ण सहकारिता रखते हैं।

कृषकों की सहकारी मण्डलियों का प्रारम्भिक कार्य इस क्रम से होता है—एक या अनेक कार्य करनेवाले आपस में मिलकर एक प्रतिज्ञा-पत्र तैयार करते हैं। उसपर सम्मिलित होनेवाला प्रत्येक व्यक्ति अपना हस्ताक्षर करता है। उस पत्र में दो मूल प्रतिज्ञाएँ रहती हैं—

(१) प्रत्येक सभासद अपनी खेती से प्राप्त हुई या बिकने—या दूसरा माल बनाने—योग्य सम्पूर्ण उपज को अपनी ही सहकारी मंडली के द्वारा तैयार करावेगा अथवा बेचेगा।

(२) अपने सहकारी कारखाने या व्यवसाय के लिये जो पूँजी उधार ली जावेगी, उसके लिये प्रत्येक सभासद सबके लिये और सब सभासद प्रत्येक के लिये ज़िम्मेदार होंगे।

इस प्रकार प्रतिज्ञा-पत्र लिख जाने पर कम्पनी खोलने के लिये उनका रुपया किसी भी बंक से प्राप्त हो सकता है।

कृषकों की सहकारी-मंडलियों के मुख्य दो विभाग रहते हैं—एक व्यापार-सम्बन्धी, दूसरी खेती के उपयोगी कार्य-सम्बन्धी। अन्य मंडलियाँ पशुओं की वृद्धि के एवं गोपालन पर पूर्ण ध्यान देती हैं। वाणिज्य-सम्बन्धी मंडलियों के उद्देशों में इन विषयों का समावेश होता है—

(१) सहकारी डेयरी—दूध से मक्खन, पनीर इत्यादि बनाना।

(२) सम्मिलित बिक्री के कारखाने और कम्पनियाँ, जिनमें गेहूँ, आलू, पशु आदि बेचे जाते हैं।

(३) खरीद और बाँटने की दूकानें, जिनमें कृषकों की वस्तुएँ—बीज, खाद, चारा, दाना, हल, कलें इत्यादि—कृषकों ही को बेची जाती हैं।

(४) सहकारी बीमे की मंडलियाँ।

यद्यपि भारत के कृषकों में भी आपस मे सहकारिता है; किन्तु डेनमार्क की तुलना में उनको कोई भी स्थान नहीं मिलता। खेती की भिन्न-भिन्न उपज से नाना प्रकार की वस्तुएँ बनाने के लिये वहाँ अनेक प्रकार के बड़े-बड़े कारखाने बना रक्खे गये हैं, जिनमें उत्तमोत्तम कलों से काम होता है। प्रत्येक गाँव या गाँवों के थोक में कई-कई प्रकार के कार्यालय होते हैं। प्रत्येक प्रकार के काम अथवा व्यापार के लिये भिन्न-भिन्न कार्यालय हैं। जैसे—

(१) घोड़ों की पैदायश के लिये।

(२) गायों और बैलों की पैदायश के लिये।

(३) भेड़ और बकरियों की पैदायश के लिये।

(४) गायों की—दूध और मक्खन देने की—शक्ति बढ़ाने के लिये।

(५) दूध से मक्खन इत्यादि बनाने के लिये।

कृषि के लिये पहला कार्य सुन्दर और बली पशुओं का उत्पादन है। डेनमार्क के गाँवों में प्रत्येक जाति के पशुओं की उत्पत्ति के लिए एक-एक समिति होती है। समिति कम-से-कम एक उत्तम साँड़ रखती है, जो समिति के सभासदों के पशुओं के काम आता है। साँड़ का मूल्य और पालन-व्यय समिति ही देती है। उसका कुछ भाग सरकार से भी मिलता है, शेष खर्च सभासदों के पशुओं की संख्या के अनुसार बाँटकर सभासदों से ही लिया जाता है। कभी-कभी तो समिति एक-एक साँड़ के लिये कई सौ रुपये खर्च कर देती है। इसका फल यह होता है कि नसल उत्तमोत्तम होती जाती है। यही कारण है कि वहाँ की गाएँ बीस-बीस और पचीस-पचीस सेर तक दूध देती हैं।

डेनमार्क के कितने ही महाजनों ने अच्छे-अच्छे साँड़ों और दुधार गौओं के उत्पादन और बिक्री का व्यवसाय कर रक्खा है। इससे उनको बड़ा लाभ हो जाता है। उत्तमोत्तम जानवरों के कितने ही उत्पादन-केन्द्र बन गए हैं जिनमें सब प्रकार की नसलों के पशु मिलते हैं। दूसरे प्रकार की दुग्ध-सम्बन्धिनी समितियाँ, प्रबन्धकर्त्री समितियों के नाम से, प्रसिद्ध हैं। इन्होंने गउओं को कामधेनु बना दिया है। वे मनोवांछित दूध-घी देती हैं।

दूध के व्यापार से सम्बन्ध रखनेवाली एक और समिति होती है। उसमें दूध पकाना, मलाई उतारना, मलाई जमा करना और मक्खन निकाल कर शोधना, दूध और मट्ठे से पनीर बनाना एवं नाना प्रकार के दूध दही-मट्ठे इत्यादि तैयार करना आदि काम होते हैं। यह सब कार्य कलों से लिये जाते हैं इसलिए शीघ्र और अल्प व्यय में हो जाते हैं।

इसके सिवा दूध के प्रत्येक भाग से नाना प्रकार के लाभ-दायक पदार्थ बनाए जाते हैं। दूध, दही एवं मट्ठे का कोई भी अंश व्यर्थ नहीं जाता। प्रत्येक कृषक इस समिति का सभासद् होता है। उसके घर में जितना दूध उसके खर्च से बचता है, वह सब नित्य समिति के कार्यालय में आ जाता है। समिति की ही गाड़ी उसके गृह से उसे ले आती है। वजन करके उसकी तौल उसके खाते में जमा हो जाती है और समय-समय पर उसके दूध में मक्खन के अंश की जाँच कर ली जाती है। इसी मक्खन के अंश पर उसके दूध का मूल्य उसे दे दिया जाता है।

इस प्रकार सब सभासदों के दूध का क्रय-विक्रय एक ही कार्यालय द्वारा होता है। कार्यालय की सब वस्तुयें सब सभासदों के साझे में होती हैं। साझे में सब खर्च और साझे में ही माल की बिक्री की जाती है।

मक्खन, पनीर इत्यादि बेचने के लिए भी सम्मिलित दूकानें हैं, जहाँ अनेक दुग्धशालाओं की उपज साझे में ही बेची जाती है।

ऐसी कम्पनियाँ केवल डेनमार्क में ही नहीं हैं, किन्तु देश-

देशान्तरों में भी, जहाँ-जहाँ डेनमार्क का माल बिकता है, स्थापित होती हैं। दूध से मलाई निकालने के बाद जो माठा-दूध अथवा मलाई से मक्खन निकालने के पश्चात् जो सुस्वादु मट्ठा रहता है, उसके भी अच्छे दाम खड़े हो जाते हैं। यह दोनों वस्तुयें खाने-पीने के लिए बिक जाती हैं। जो शेष बच रहता है, उनमें कुछ भाग असली दूध का मिलाकर अथवा बिना मिलाए कई प्रकार की पनीरें बनाई जाती हैं, अर्थात् दूध के अलग-अलग अंशों को बार-बार उपयोग में लाया जाता है। उसका कोई भी अंश बिगाड़ा या फेंका नहीं जाता।

यहाँ के कृषक फल, फूल, गोभी इत्यादि की उपज से भी पर्याप्त आय प्राप्त कर लेते हैं। अपना उपजाया अन्न अपने देश में ही रखते हैं, इसीलिये सदा अन्न भरा-पूरा रहता है। वे अधिकांश समय गोपालन और वाणिज्य में ही व्यतीत करते हैं।

कृषकों के बालकों के लिए शिक्षा का सुन्दर प्रबन्ध है। बालकों को कृषि-सम्बन्धी शिक्षा भी दी जाती है।

डेनमार्क की पनीर संसार के प्रत्येक भाग में भेजी जाती है, इसी वस्तु के कारण वहाँ के निवासी धनवान बन गए और देश-देशान्तरों में डेनमार्क की ख्याति हो गई।

वहाँ एक-एक किसान बहुत-से पशु पालता है, जिनसे उसको अपार सुख और सम्पत्ति प्राप्त होती है। पशुओं के रोग-निवारणार्थ भी समितियाँ और अस्पताल खोल रक्खे गये हैं।

यदि हमारे देश के किसान भी अपने खेतों की उपज बढ़ाकर

उनकी पैदावार को बेचने के लिये गाँव-गाँव में सहयोगपर्ण मण्डियाँ खोलें, तो एकमत होने के कारण वे काफी लाभ उठा सकते हैं। आपस की फूट और वैर-विरोध तथा खींचातानी का नतीजा यह होता है कि गाँव-भर के अन्न एक ही भाव से नहीं बिकने पाते। इसी प्रकार यदि पशु-पालन में गाँव-भर के किसान पूरी दिलचस्पी लें, मिथ्या लोकलज्जा और मूर्खतापूर्ण संकोच छोड़कर घी-दूध-दही-मक्खन आदि के व्यापार का सहयोगपूर्ण संगठन करें, तो उन्हे काफी फायदा हो सकता है।

'उपले' या 'खाद' पर महात्मा गान्धी की राय—

किसानो और ग्रामवासियों के हित की बहुत-सी उपयोगी बातें महात्मा गान्धी ने लिखी हैं। यहाँ हम प्रसंगवश एक बात की चर्चा करेंगे। और-और बातें आगे के प्रसगों में मिलेंगी।

महात्मा गान्धी ने "खाद" के लिये गोबर की रक्षा करने पर बहुत ज़ोर दिया है, और कहा है कि गोबर के उपले या कंडे बनाकर कभी जलाना न चाहिये। किसानों को इन बातों पर विचारपूर्वक ध्यान देना चाहिये।

महात्माजी लिखते हैं—"गोबर का उपयोग अधिकतर उपलों (कण्डों) के लिये किया जाता है। इसमे जरा भी शक नहीं कि गोबर का अगर यह दुरुपयोग नहीं, तो कम-से-कम उपयोग अवश्य है। यह तो ताँत के लिए भैंस मारने के समान है। अगर एक उपले की कीमत एक पाई होती, तो गोबर का पूरा उपयोग रने से एक उपले के बराबर गोबर की कीमत कम-से-कम दस-

गुनी अधिक होती है। आज अगर हम इससे होनेवाली अप्रत्यक्ष हानि का ही अन्दाज लगावें, तो वह इतनी अधिक होगी कि उसकी कीमत आँकना ही मुश्किल होगा।

गोबर का पूरा-पूरा सदुपयोग तो उसकी खाद बनाने में ही है। कृषिशास्त्र के जानकारो का मत है कि गोबर के जला डालने से हमारे खेतों की ताकत घटी है। बगैर खाद के खेत और बगैर घी के लड्डू में कोई फर्क नहीं होता, दोनों शुष्क होते हैं।

गोबर की खाद के मुकाबिले रासायनिक खाद कहीं घटिया होती है। रासायनिक खाद से जहाँ लाभ होता है, वहाँ हानि भी होती है। रासायनिक खाद से खेत में अधिक गेहूँ पैदा होंगे, दाना सुन्दर और बड़ा होगा; लेकिन कुदरती खादवाले खेत में पैदा होनेवाले गेहूँ तादाद में भले ही कम हों, मिठास और पौष्टिकता में तो रासायनिक खादवालों से कहीं बढ़कर होंगे।

यह भी हो सकता है कि इस विषय के वैज्ञानिक शोध के बाद रासायनिक खाद का महत्व भी आज की अपेक्षा कहीं अधिक घट जाय। किन्तु यह हो या न हो, इतना तो निर्विवाद है कि गोबर का उपयोग खाद के लिए ही किया जाना चाहिए।

अतएव ढोरों के गोबर और पेशाब का भलीभाँति उपयोग करने का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करना किसान या ग्राम-सेवक के ही कर्त्तव्यों में से एक है। ग्राम-सुधारकों और ग्राम-सेवकों का यह कर्त्तव्य है कि वे कण्डों (उपलों) के सम्बन्ध में लोगों के भ्रम दूर करें, उनके स्थान पर कोई ईंधन ढूँढ निकालें, गोबर और

गौ मूत्र की खाद-विषयक महत्ता को तरह-तरह से समझावें, और आवश्यक ज्ञान स्वयं भी प्राप्त कर लें।"

तरकारियों की खेती—

ग्रीष्म और वर्षा-काल की सब्जी फाल्गुन से आषाढ़ तक तथा शीतकाल की सब्जी भादो से अगहन तक, पहाड़ और ठण्डे देश में फाल्गुन से जेठ तक होती है। मिट्टी, पुराने पत्तों की खाद और पुराने गोबर को बराबर मिलाकर चौरस जमीन बना कर बीज बोना चाहिये। बोने के चार घंटे पहिले मिट्टी अच्छी तरह भिगा कर बीज छिटका देना चाहिये और मिट्टी को खूब नरम-नरम दबा देना चाहिये। बीज जितना छोटा या पतला या मोटा हो उसी के अनुसार मिट्टी उस पर डालना चाहिये। मिट्टी ज्यादा गीली रहने से बीज नष्ट हो जाता है, इसलिये जहाँ बीज बोये जायँ उस जमीन में पानी ठहरने न पावे। मगर उसको सूखा भी नहीं रहना चाहिये। खेतों में ऐसी ज्यादती से पानी सींचना चाहिये कि पानी जमीन के ऊपर बह जाय, नहीं तो तरकारी छोटी होती है। बड़े-बड़े गड़हे खोदकर उनमें गो, बैल, भैंस, घोड़े, बकरों का विट (विष्ठा), सूखी पत्ती अलग-अलग डालकर अच्छी तरह दबाकर एक घन-फुट मिट्टी ऊपर से फैला दे। पत्ती चार मास, गो-भैंस का गोबर आठ महीने और घोड़े की लीद एक से डेढ़ साल के अन्दर पेड़ों और पौधों के व्यवहार योग्य होती है। खाद व्यवहार करने के पहले, उसे अच्छी तरह सुखा कर चूर्ण करना चाहिये। पुराना गोबर एक भाग और पानी आठ

भाग अच्छी तरह मिलाने से पेड़-पौधे के लिये व्यवहार करने योग्य उत्तम खाद होती है। तूतिया के पानी में १०-१५ मिनट भिगा कर बीज बोने से पेड़ बहुत जोर बढ़ता है और पेड़ में कीड़े भी नहीं लगते हैं। किरासिन तेल एक सेर, पानी बीस सेर और दूध आधा सेर, इनको अच्छी तरह से मिला कर पेड़ अथवा जड़ में लगाने से कीड़े मर जाते हैं। तेजी मालूम होने से अधिक पानी मिलाना चाहिये।

कड़ी धूप वा हवा न लगे, ऐसी छायादार तीन हाथ चौड़ी और बीस हाथ लम्बी जमीन के टुकड़े को फावड़ा से खोद कर और उसे धूप में सुखा कर, ऊपर से एक वा डेढ़ इञ्च घन खाद बराबर बिछा कर, पीछे फावड़े से अच्छी तरह से मिला कर, चौरस करके उसे दबा दो। ऐसी जमीन में जो बीज बोये जायँगे, वे खूब जोर से जमेंगे। गोभी, बैंगन, प्याज आदि बहुत-सी तरकारियों के लिये ऐसी ही जमीन की आवश्यकता होती है। धूप, वर्षा और ओस से नये पेड़ों को बचाने के लिये डेढ़ वा दो हाथ ऊँचा बाँस के मचान के ऊपर ताड़ की पत्तियाँ, चटाई वा मोटा कपड़ा तान देना चाहिये। जमीन तैयार होने से सात दिन पीछे बीज बोना चाहिये। खूब खाद वाली दोमट जमीन में बीज बोना चाहिये।

"कोंहड़ा, कुम्हड़ा या कद्दू" हर जमीन में हो सकता है। भादो से वैशाख तक बीज बोने का समय है, परन्तु भादो में बोने से पेड़ अच्छा फलता है। ६ हाथ की दूरी पर गड़हा खोद

कर ४।५ बीज बोओ ; बड़े होने पर हर एक गड्हे में दो पौधे रखकर बाकी फेंक देना चाहिये और आवश्यकतानुसार पानी से सींचना चाहिये। "करेला" दोमट जमीन में अच्छा होता है। चार हाथ की दूरी पर गढ़ा खोदकर खाद मिला कर हर गढ़े में ४।५ बीज बोओ। बड़ा होने पर बाँस के मचान पर चढ़ा दो। इसकी दो फसल होती है, एक चैती और दूसरी बरसाती। इसलिये आवश्यकतानुसार कार्त्तिक वा वैशाख में बीज बोना चाहिये। करेला की तरह 'करैली' की भी खेती करनी चाहिये। इसका फल छोटा होता है, परन्तु खाने में बड़ा रुचिकर है। 'कॉंकड़ी' नदी के किनारे पर अथवा बलुमट जमीन में उत्तम जमती है। पाँच हाथ दूरी पर एक हाथ गहरा गढ़ा खोद कर खाद मिलाओ और ५।६ बीज बो दो। यह भी दो प्रकार की है, चैती और बरसाती। माघ से वैशाख-जेठ तक बीज बोने का समय है। कार्त्तिक, अगहन से फाल्गुन तक 'खरबूजा' का बीज बोया जाता है। बलुमट जमीन वा नदी के किनारे अच्छा फलता है। पाँच हाथ की दूरी पर एक वा डेढ़ हाथ गहरा और आध हाथ चौड़ा गढ़ा खोदकर मिट्टी को महीन कर के गढ़ा भर दो और पाँच रोज के बाद हर गढ़े में ५।७ बीज बो कर सूखी बालू से ढक दो। पौधे निकलने पर २।३ रखकर बाकी उखाड़ दो। घास, कुस वा चटाई बिछाकर इसकी बेल जमाई जाय, तो बहुत बड़ा, सुमिष्ट और सुगन्धित होता है। 'खीरा' के वास्ते थोड़ी छायादार, सरस दोमट जमीन सबसे अच्छी है। ६ हाथ की दूरी पर गढ़ा खोदकर

बहुत-सा पुराना गोबर मिलाकर वैशाख-जेठ वा भादो-आश्विन वा पौष-माघ से बीज बोना चाहिये ; शीत की फसल जमीन पर अच्छी होती है, किन्तु वैशाखी पेड़ों को मचान पर उठा देना चाहिये। वर्षा के कारण बहुत-से फल नष्ट हो जाते हैं, इसलिए सूखा के रोज दोपहर में माच को धीरे-धीरे हिलाने से फूलों से रेणु गिर जाते हैं। इससे फल सड़ता नहीं है, बहुत फलता है। आश्विन और कार्त्तिक में 'गाजर' बोया जाता है। दोमट जमीन में अच्छा जमता है। खूब नरम, बड़ा और स्वादिष्ट गाजर तैयार करना हो तो ३।४ महीने पहिले ही से जमीन में बहुत-सी गोबर की खाद मिलाकर ७।८ वार अच्छी तरह जोतो। बोने के ४ घण्टे पहले जमीन अच्छी तरह भिगाकर ८ इञ्च के फासले पर पंक्ति में छोटा-छोटा गढ़ा खोदकर ८।१० बीज बो दो और ऐसा पानी सींचो कि जमीन एकदम न सूख जाय, और धूप के समय पंक्तियों को चटाई से ढक दो। पन्द्रह दिन के अन्दर पौधे निकलेंगे। बढ़ने के समय दो चार पौधे निकालकर अन्य स्थानों में बो दो और बीच-बीच में जमीन खोदकर नरम कर दो। महीने में तीन-चार वार अच्छी तरह से पानी सींचना चाहिये। यह छीट कर भी बोया जाता है। जिन स्थानों में घना हो जाय, उन स्थानों से निकालकर दूसरी जगह बो दो, ताकि उस स्थान की संकीर्णता दूर हो जाय।

"गाँठ गोबी" का पौधा १२ से १५ इञ्च फासले तक लगाना चाहिये। जहाँ से पत्तियाँ निकलें, उस स्थान को जमीन से ऊपर

रखकर सींचना चाहिये। उसको मिट्टी से नहीं ढँकना चाहिये। सावन से कातिक तक 'फूल गोभी' के बीज बोना चाहिये। खूब खादवाली मिट्टी में बीज बोने चाहिये। दस-बारह दिन के बाद पौधे फूट आने पर वहाँ से उखाड़ कर दूसरी जगह लगाने चाहिये और ऐसा यत्न करना चाहिये कि जिससे गाँछ तक तैयार हो जाय। भादो-आश्विन में प्रति बीघा १०० मन करीब पुराना गोबर डालकर जमीन को चार-पाँच बार उलट-पुलट करो। २० दिन बाद बड़े-बड़े जखीरे उठाकर जमीन में १॥ हाथ के फासले पर लगाकर बैठा दो और पाँच-सात दिन तक प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा पानी सींचते जाओ। पेड़ लग जानेपर जिस तरह पत्ते फैलते जायँ उसी तरह दोनों पत्तियों के बीच की मिट्टी खोदकर पेड़ों की जड़ों में लगाना चाहिये, जिससे पानी जाने का सुभीता रहता है। गोभी में जितनी खाद और उत्तम पानी का प्रबन्ध रहेगा उतनी ही जल्दी अच्छी, मोटी और स्वादिष्ट गोभी तैयार होगी। सिवाय गोबर के रेंड़ी की खली, नील की सिट्ठी, हड्डी का चूर्ण आदि भी इसकी खाद के काम में आते हैं। तीन चार मास में गोभी खाने लायक तैयार हो जायगी। पेड़ रोपने के साथ हर गढ़े में थोड़ी खाद डालना अच्छा है, उससे गोबी बहुत जल्द बढ़ती है। महीने में तीन चार-बार सींच देना चाहिये।

"चटनी बैंगन वा टमाटो" को ऊँची और गरम जमीन में खूब खाद डालकर रोपना चाहिये। भादो-आश्विन में पौधे जमाओ। बढ़नेपर खेतों में, दो हाथ के फासले पर, रोपकर चार-पाँच दिन

तक थोड़ा-थोड़ा पानी देना और धूप से बचाना चाहिये। पश्चात् महीने में एक बार जमीन खोदने और बीच-बीच में पानी और खाद देने से फल बहुत लगता है। चार मास में फलता है।

इसी प्रकार बैंगन, परवल, भिण्डी (रामतरोई), घी-तरोई (नेनुआ), सेम, मूली, सतपूती, चौलाई, लहसुन, मेथी और सोआ-पालक आदि साग-सब्जी की खेती करने का यत्न करना चाहिये। थोड़ी-सी अच्छी जमीन को भली भाँति सुन्दर बनाकर यदि तरकारियों की खेती की जाय, तो लाभ तथा सुख एक ही साथ प्राप्त हो सकते हैं। हम पहले भी कह आये हैं कि हर एक किसान को तरकारी की खेती करनी चाहिये, अब यहाँ और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं।

फसल की बीमारियाँ और उनके इलाज—

फसलों में लगनेवाली बीमारियाँ प्रायः बीज के ही साथ आती हैं। यदि बीज नीरोग है तो फसल में बहुत कम बीमारियाँ लगेंगी। इसलिये जहाँ तक हो सके, नीरोग बीज बोना चाहिये। हम तीन प्रमुख फसलों की बीमारियों तथा उनके इलाज के संबंध में कुछ बातें यहाँ देते हैं—

ईख में एक ऐसी बीमारी लगती है, जिससे फसल की बढ़वार रुक जाती है और पैदावार घट जाती है। इसकी पहिचान यह है कि हरी पत्तियों में पीले-पीले धब्बे पड़ जाते हैं। इस बीमारी से बचाने का उपाय यही है कि अगली फसल ऐसे गन्नों से बोई जाय जिसमें कि यह बीमारी न हो। दूसरी बीमारी है

लाल रेशों का पड़ जाना। गन्ना छीलनेपर देखा जाता है कि पोर के अन्दर के रेशे लाल हो गये हैं। इस बीमारी से गन्ने सूख जाते हैं, गुड़ का पड़ना कम हो जाता है और चूसने में गन्ने का स्वाद खराब हो जाता है। बोते समय ऐसे गन्नों को न बोना चाहिये जिनमें कि लाल रेशे हो। पेंड़े या टुकड़े काटते समय सिरों को देखने से इस बात का पता आसानी से चल जाता है कि लाल रेशे मौजूद हैं या नहीं। तीसरी बीमारी में प्रायः देखा जाता है कि गन्ने की पोर मे छेद हो रहा है और वह पोर आस-पास की पोरों की अपेक्षा पतली पड़ गई है। इसे चीरने पर अन्दर गन्ना पोला मिलेगा और उसके अन्दर एक कीड़ा। यदि ऐसा गन्ना बो दिया जावेगा, तो यह कीड़ा अगली फसल को हानि पहुँचावेगा। इसलिये ऐसे टुकड़ों को, जिनमें कि छेद हों, न बोना चाहिये। उपर्युक्त तीनों बीमारियाँ, छाँटकर अच्छा बीज बोने से, दूर हो सकती हैं।

कपास में उक्टा की बीमारी होने से पेड़ खड़ा-खड़ा सूख जाता है। ऐसे स्थानों को, जहाँपर कि ऐसा हो, फावड़े (कुदाल) से गहरा खुदवा देना चाहिये और वहाँ पर पानी न भरने देना चाहिये। पानी का निकास ठीक कर देने पर वर्षा में पानी न इकट्ठा होने पावेगा। इससे इस बीमारी का डर न रहेगा। एक कीड़ा भी कपास के फल में छेद करके अन्दर घुस जाता है और कपास और बिनौले को खा जाता है। इससे बचाने के लिये बोये जानेवाले बिनौले को गरमियों के दिनों में सूखी कड़ी ज़मीन पर

इकहरा बिछाकर १२ बजे दोपहर से ३ बजे तक सुखा लेना चाहिये। ऐसा दो-तीन बार करने से कीड़ा मर जावेगा और अगली फसल को हानि न पहुँचेगी।

गेहूँ में प्रायः देखा जाता है कि पत्तियों पर लाल रंग की बुकनी-सी जम जाती है। इसे 'गिरवी' कहते हैं। यह बढ़ते-बढ़ते वाली में पहुँच जाती है और दाने को बढ़ने नहीं देती। खेत की पैदावार घट जाती है। यह उस समय विशेषकर लगती है, जब कि आकाश में बादल अधिक दिनों तक रहे और खेत में नमी हो। इससे बचाने का उपाय यही है कि गेहूँ की ऐसी किस्में बोई जाँय, जिनमें कि यह बीमारी न हो। खड़ी फसल में इससे बचाने का कोई उपाय नहीं।

इसी प्रकार धान, जौ, मटर, चना, उड़द, मूँग, तेलहन आदि फसलों को तरह-तरह की बीमारियों से बचाने का उपाय करना प्रत्येक किसान का कर्त्तव्य है। सबसे अच्छा उपाय है उत्तम और पुष्ट बीज बोना।

हरे चारे के लिये जई की खेती—

खरीफ में मक्का, ग्वार और ज्वार के बोने से गौओं को हरा चारा काफी मिल जाता है। रबी में जई के अतिरिक्त और कोई दूसरी फसल नहीं, जिससे कि हरा चारा काफी मात्रा में मिल सके। किसान प्रायः सरसों, लाही, मटर, गाजर आदि का हरा चारा काम में लाते हैं जो कि भूसे के साथ मिला-मिलाकर खिलाया जाता है; परन्तु ऐसा चारा एक-आध महीने ही के लिए

मिलता है। बाद को सिवाय भूसे के और कोई चारा नहीं रहता। ऐसी दशा में यदि जई की खेती रबी में कर ली जाय तो विशेष लाभ हो। वर्षा बन्द होते ही खेत तैयार करके जई का बीज बो देना चाहिए। गेहूँ के लिए उपयुक्त खेत इसके लिए भी ठीक रहता है। बीज १ मन से १॥ मन फी एकड़ तक बोया जाता है। खेत की तैयारी और बुवाई गेहूँ की तरह ही होती है। जहाँ पर यह फसल बोई जाय, वहाँ पर सिंचाई का प्रबन्ध होना आवश्यक है। खेत में १०-१५ गाड़ी खाद डाल देनी चाहिये। सिंचाई दिसम्बर तक दो बार करनी पड़ती है और जनवरी में पहिली कटाई शुरू हो जाती है। आवश्यकतानुसार काटते रहने से पहली कटी हुई फसल दो महीने बाद फिर तैयार हो जाती है। तीसरी कटाई फिर दो महीने बाद की जा सकती है। समय पर सिंचाई बराबर करते रहना चाहिये। यदि अगले साल के लिये बीज लेना आवश्यक हो तो एक ही बार कटाई करनी चाहिये। यदि अधिक क्षेत्रफल में जई बोई जाय तो इसे काटकर गड्ढों में भर देना चाहिये। गरमियों के दिनों में इस दबे हुए चारे को भूसे के साथ मिलाकर पशुओं को खिला सकते हैं। हरे चारे की कमी से ही हमारे देश के पशु निर्बल रहते आते हैं। अगर उनके लिये बराबर हरे चारे का प्रबन्ध हो तो वे बराबर सबल बने रहेंगे।

सनई की खेती से विशेष लाभ—

सनई की खेती दो अभिप्रायों से की जाती है। एक रेशा निकालने के लिए और दूसरे हरी खाद के लिए। अभी हाल में

विलायत के एक समाचार-पत्र में प्रकाशित हुआ है कि सनई की रस्सियाँ जहाज़ों में काम में लाई जाने लगी हैं। इससे इसके रेशे की उपयोगिता और माँग बढ़ती जाती है। इसलिए भारतीयों को इसकी खेती की ओर विशेष ध्यान देना चाहिये। रेशा निकालने में एक विशेष दिक्कत सनई को सड़ा कर साफ करने के लिए पानी का न मिलना है। जहाँ पर वर्षा तथा कुँओं से खेती होती है, वहाँ पर ऐसे तालाब बना लेने चाहिए, जिसमें कि वर्षा का पानी इकट्ठा हो जाया करे; या नील के-से पक्के हौज़ कुँओं के पास बना लेने चाहिये जिनमें कुँए से पानी भर कर यह काम कर लिया जाय। जहाँ पर नाले या नदियाँ हैं, वहाँ पर उपर्युक्त कार्य और भी सरलता से हो सकता है।

सनई की खेती बहुत ही सरल है। जिस खेत में सनई बोनी हो, उसे मई-जून में एक बार जोत देना चाहिये। यदि सिंचाई के लिये पानी मिल सकता हो तो खेत सींचकर ३०, ४० सेर बीज फी एकड़ छिड़क कर खेत में जोत कर पाटा दे देना चाहिये। जब पौधे लगभग एक बालिश्त के हो जाँय, तो बौंड़ी नामी खर उखाड़ कर फेंक देना चाहिये। नहीं तो बड़े होने पर यह पौधों के साथ लिपट जायगा और तनों को अलग-अलग करना कठिन हो जायगा।

जहाँ पर नहरें न हों वहाँ पर वर्षा के शुरू होते ही उसे बो देना चाहिये। फूल निकलते समय (अगस्त सितम्बर में) फसल को काट लेना चाहिये। यदि उसी समय रेशा निकालने का

अवकाश न हो तो इसे ऐसी जगह रख देना चाहिये जहाँ पर दीमक न लगे या वर्षा का पानी न पड़े। फिर जब कभी फुर्सत मिले, तब ३ या ४ दिन पानी में सड़ाने के बाद धो और सुखा कर रखते जाना चाहिये। फिर रेशा अलग कर लेना चाहिये। रेशा जितना साफ और लम्बा होगा उतने ही अच्छे दाम मिलेंगे। बीज लेने के साथ-साथ भी रेशा निकाला जा सकता है; परन्तु वह मजबूत, लम्बा और साफ नहीं होता। वर्षा के समय बोने से ५-६ मन और पहिले बोने से ८-१० मन रेशा फी एकड़ हो जाता है।

ऊपर बताया गया है कि हरी खाद के लिये इस फसल को अगस्त के महीने में खेत में हेंगे या पाटे से गिरा कर मिट्टी पलटनेवाले हल से जोत देना चाहिये। इसके बाद गेहूँ की फसल बोने से अच्छी पैदावार होती है। ईख की भी अच्छी पैदावार होती है। कृषि-विभाग कानपुर से सनई का अच्छा बीज मिल सकता है।

किसानों के लिये नये धन्धे—

गत जर्मन युद्ध के बाद से तो मानों किसानों पर अकालों के बादल सदा के लिये घिर गये। किसान की पैदा की हुई चीजें तो सब सस्ती हैं, मगर किसान के व्यवहार में आने वाली चीजों का वही भाव है जो पहिले था। ऐसी दशा में आवश्यक है कि अपनी आमदनी बढ़ाने का उपाय वे सोचें और समझें। हमारे देश में सैकड़ों ऐसे पौधे और वृक्ष हैं, जिनको बिना खेती किये हुए भी

हम सब जगह स्वयं उत्पन्न हुए पाते हैं और जिनके हजारों टन बीज प्रति वर्ष गिर कर सड़ जाते हैं; परन्तु हम लोग उनका उपभोग नहीं करते हैं। जैसे (१) 'कोट-कटैया' (सत्यानाशी)—नालों में, घूरों पर, गाँव के इर्दगिर्द, जिधर देखिये उधर, खुद-बखुद, बहुतायत से, पैदा होती है। यह जाड़ों में बिना पानी के खूब फलती-फूलती है। इसके बीज यदि संग्रह कर कोल्हू में पिरा लिये जावें तो इसका तेल जलाने और इसकी खली पशु-खाद्य के काम में आ सकती है। अगर इसके बीज कार्तिक के महीने में खाली और बेकार जगहों में छिटका दिये जावें, तो अगले वर्ष तेल की एक बड़ी जिन्स पैदा हो सकती है। इसका तेल दाद, खाज, छाजन जैसे चर्म-रोगो के लिये भी बहुत ही मुफीद होता है। (२) 'तितली'—रबी की फसल काटी जाने पर असाढ़ के महीने में खेतों में इसी पौधे की हरियाली होती है। इसके बीज से भी तेल निकाला जा सकता है। (३) 'गुल्ली' (महुआ का फल)—लाखों मन विदेश को जाती है, फिर भी लाखों मन पेड़ों के नीचे पड़ी रहती है। विन्ध्याचल की पर्वत-माला पर, विशेषकर मध्यप्रदेश में, यह जंगलों में बहुत पाई जाती है। इसके भी पेरने से तेल निकलता है। (४) 'फुलवा'—नैपाली इसे चूरी कहते हैं। यह हिमालय पर बहुतायत से पाया जाता है। जब 'वैसलीन' (चरबी) नहीं चली थी, या डाक्टरी विद्या का प्रचार नहीं था, तब फुलवा को जाड़ों में होठ या हाथ फट जाने पर लगाते थे। साबुन और मोमबत्ती बनाने के लिये 'फुलवा' बहुत अच्छा तेल

है। (५) 'कोसम—यह वह कुसुम नहीं है, जिसमें कपड़े रँगे जाते हैं। यह वह वृक्ष है, जिस पर लाख का कीड़ा बैठ कर बहुत अच्छी लाख पैदा करता है। मध्यप्रदेश, छोटा नागपुर तथा मद्रास के जंगलों में बहुत पैदा होता है। इसका लाखों मन बीज पड़ा-पड़ा सड़ जाता है। इसके तेल से जर्मन लोग 'मैकासर' नाम का एक तेल बनाते हैं। इसके बीजों को फूलों में बसा कर कोल्हू में पेरने से सुगन्धित तेल तैयार होता है जो बालों में डालने से बालों को बढ़ाकर चमकीला और स्याह बनाता है तथा मस्तक ठण्डा रखता है। मालिश के लिये भी इसका तेल बहुत उपयोगी है। (६) नीम—यह पेड़ कम या ज्यादा हर प्रान्त में पाया जाता है। इसकी निबौली (बीज) बरसात में सिवाय सड़ने के कोई काम नहीं आती। अगर इसका तेल पिराया जावे, तो जलाने के काम ही नहीं, वरन् बहुत-से रोगों को दूर करने के काम भी आवे। नीम के गुण तो सभी किसान जानते हैं। इस प्रकार जलाने का तेल भी तैयार हो सकता है और व्यापार भी। खर्च भी घटेगा और आमदनी बढ़ेगी। क्या ही अच्छा हो अगर हमारे किसान भाई इन चीजों से लाभ उठावें। इसी तरह के और भी बहुत-से धन्धे हैं, जिनपर ध्यान देने और लगन के साथ जुट जाने से किसान लोग भरपूर लाभ उठा सकते हैं।

खेती और किसानी की कहावतें—

१—अग्नि कोन जब बहै समीरा। पड़े काल दुख सहै सरीरा॥

२—उत्तर से जल-फूही परै। मूस साँप दोनों अवतरैं॥

पच्छिम समया नीको जानो । आगे बहै तुषार प्रमानो ॥
जो कहुँ बहै इसानहु कोना । आवै बिस्वा दो-दो दूना ॥
जो कहुँ हवा अकासै जाय । पड़े न बूँद काल पड़ जाय ॥

३—अद्रा बरसे पुनरवस जाय । दिन में अन्न कोऊ नहिं खाय ॥

४—पानी बरसे आधा पूस । आधा गेहूँ आ... ...॥

५—सावन पहिली चौथ में जो मेघा बरसाय ।
तो भाखें यों भड्डरी साख सवाई जाय ॥

६—हथिया पूँछ डोलावे । घर-बैठे गेहूँ आवे ॥

७—हथिया बरसे चित्रा मँड़राय । घर-बैठे किसान रिरियाय ॥

८—कर्क बुवावे काकरी, सिंह अबोनी जाय ।
ऐसा बोवे भड्डरी, कीड़ा फिर-फिर खाय ॥

९—जो कहुँ मघा मे बरसे जल । सब नाजन में होई फल ॥

१०—जै दिन जेठ चले पुरवाई । तै दिन सावन धूर उड़ाई ॥

११—हथिया बरसै तीन होयँ, शाली शक्कर मास ।
हथिया बरसै तीन जाँय, तिल कोदौ कपास ॥

१२—चित्रा गेहूँ स्वाती भूसा । अनुराधा में नाज न भूसा ॥

१३—चढ़तै बरसै आदरा, उतरत बरसै हस्त ।
केतिक राजा डाँड़ ले, आनँद रहै गृहस्त ॥

१४—लाल पियर जब होय अकास, तब नाहीं बरसा की आस ॥

१५—छिन पुरवैया छिन पछियाव । छिन में बहै बबूला बाव ॥
उलटा-पलटा बादर धावै । भागौ 'भड्डर' पानी आवै ॥

१६—चमकै पच्छिम उत्तर ओर । तब जानौ पानी है जोर ॥

१७—दूर मंडल नेर पानी। नेर मंडल दूर पानी॥

१८—रात्त निरमली दिन को घटा। कहैं 'घाघ' यह बरषा लटा॥

१९—खेती करै खाद से भरै। सौ मन कोठला में लै धरै॥

२०—खाद परै तो खेत। नाहिं तो कूड़ा रेत॥

२१—गोबर राखो पानी सरै। तब खेती में दाना परै॥

२२—दस हर राव आठ हर राना। चार हरों का बड़ा किसाना॥
दो हर खेती एक हर वारी। एक वैल ते भली कुदारी॥

२३—जोते खेत घास ना टूटै। ताकर भाग साँझ ही फूटै॥

२४—जितना गहरा जोतै खेत। बीज परे फल अच्छा देत॥

२५—तेरह कातिक तीन असाढ़।

२६—कातिक बोवै अगहर भरै। ताको हाकिम फिर का करै॥

२७—बड़सिंगा जनि लीजो मोल। कुआँ में डारो रुपया खोल॥

२८—पतरी पिंडुरी मोटी रान। पूँछ होय भुईं में तरियान॥
जाके होवै ऐसी गोई। वाको तकै और सब कोई॥

२९—माघ में बादर लाली धरै। तब तुम जानो पाथर परै॥

३०—माहै पूस चलै पुरवाई। तब सरसों को माहू खाई॥

३१—फागुन माहिं चले पुरवाई। तब गेहूँ माँ गेरुई धाई॥

३२—सोमै खेती बुद्धै घरा। जब चाहो तब सिद्धि करा॥

३३—उत्तम खेती जे हर गहैं। मध्यम खेतो जे सँग रहैं॥
त्रिया बिसार गँवायो तहाँ। जब उठि पूछ्यो हर गे कहाँ॥

३४—बाढ़ै पूत पिता के धरमा। खेती उपजै अपने करमा॥

३५—सुथना पहिरे हर जोतैं, औ पौला पहिरि निरावैं।

घाघ कहैं ये तीनो भकुआ, सिर बोझा औ गाव ॥

३६—माघ क ऊखम जेठ क जाड़, पहिले बरखे भरिगे गाड़ ।

कहैं घाघ हम होइब योगी, कुआँ खोदि कै धोइहैं धोबी ॥

३७—सावन सुकला सत्तमी, जो गरजे अधरात ।

तू पिय जैहो मालवा, हौं जैहो गुजरात ॥

३८—सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगे तुरन्त ।

की जल मिले समुद्र में, की नागरि कूप भरन्त ॥

३९—सावन सुकला सत्तमी, छिपि के ऊगे भानु ।

तब लगि देव बरीसिहैं, जब लगि देव-उठान ॥

४०—नीचे ओद ऊपर बदराई, कहे घाघ अब गेरुई खाई ।

पछिवाँ हवा ओसावै जोई, घाघ कहैं घुन कबहुँ न होई ॥

४१—सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखे भान ।

चार महीना बरसे पानी, याको है परमान ॥

४२—जेठ मास जो तपै निरासा, तो जानो बरसा की आसा ।

दिवस बादरा रात को तारे, चले कन्त जहँ जीवें वारे ॥

४३—गया पेड़ जब बकुला बैठा, गया गेह जब मुड़िया पैठा ।

गया राज जहँ राजा लोभी, गया खेत जहँ जामी गोभी ॥

४४—बैल चौंकना जोत में, औ चमकीली नार ।

ये बैरी हैं जान के, कुसल करैं करतार ॥

४५—बूढ़ा बैल बिसाहे, झीना कपड़ा लेय ।

आपन करै नसौनी, दैवै दूषन देय ॥

४६—बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन के रार ।

बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार ॥

४७—आछा बैल पतुरिया जोय, ना घर रहे न खेती होय।
नसकट खटिया दुलकन घोर, कहे घाघ यह बिपत क ओर ॥

४८—कुचकट पनही बतकट जोय, जो पहलौठी बिटिया होय।
पातर कृपी बौरहा भाय, घाघ कहैं दुख कहाँ समाय ॥

४९—आलस नींद किसानै नासै, चोर नासै खाँसी।
अँखिया लीचर बेसवै नासै, तिरमिर नासै पासी ॥

५०—मुइयाँ खड़े हर हैं चार, घर है गिहिथिन गऊ दुधार।
अरहर की दाल जड़हन का भात, गागल निबुआ औ घिव तात।
सहरस खंड दही जो होय, बाँके नैन परोसे जोय।
कहै घाघ तब सब ही झूठा, उहाँ छाड़ि इहवें बैकुंठा ॥

५१—सावन घोड़ी भादो गाय, माघ मास जो भैंस बिआय ॥
कहैं घाघ यह साँची बात, आपै मरै कि मलिकै खाय ॥

५२—ताका भैंसा गादर बैल, नारि कुलच्छनि बालक छैल।
इनसे बाँचें चातुर लोग, राज छोड़िके साधें जोग ॥

५३—घर घोड़ा पैदल चले, तीर चलावे बीन।
थाती धरे दमाद घर, जग में भकुआ तीन ॥

५४—उधार काढ़ि ब्योहार चलावे, छप्पर डारें तारो।
सारे के सँग बहिनी पठवें, तीनिउँ का मुँह कारो ॥

५५—मुये चाम से चाम कटावे, मुइँ सँकरी माँ सोवैं।
घाघ कहैं ये तीनों भकुआ, उढ़रि गये पर रोवैं ॥

५६—ना अति बरखा ना अति धूप, ना अति बकता ना अति चूप।

लरिका ठाकुर बूढ़ दिवान, ममिला बिगरे साँझ बिहान।

५७—बहु बजार बनिहार बनि, बारी बेटा बैल।
ब्योहर बढ़ई बन बबुर, बात सुनो यह छैल॥
जो बकार बारह बसैं, सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा, आप रहै अलमस्त॥

५८—सावन पछिवाँ भादों पुरवा, आसिन बहै इसान।
कातिक कन्ता सींक न डोलै, गाजें सबै किसान॥

५९—कदम २ पर बाजरा, मेढ़क कूदे ज्वार।
ऐसे जो बोवे कोई, घर-घर भरे कोठार॥

६०—आलू बोवे अँधेरे पाख, खेत में डारे कूड़ा राख।
समय समय पर करे सिचाई, दूना आलू घर में आई।

६१—जो गेहूँ बोवै पाँच पसेर, मटर की बीघा तीन सेर।
बोवे चना पसेरी तीन, सेर तीन की जुन्धरी कीन्ह।
दो सेर मोथी अरहर मास, डेढ़ सेर बीघा बीज कपास।
पाँच पसेरी बीघा धान, तीन पसेरी जड़हन मान।
डेढ़ सेर बजरा बजरी सवा, कोदों काकुन सवैया बवा।
सवा सेर बीघा सावाँ जान, तिल्ली सरसों अँजुरी मान।
बर्रे कोदों सेर बोआव, डेढ़ सेर बीघा तीसी नाव।
यहि विधि से जब बवै किसान, दूना लाभ खेत में जान।

६२—बीज पुष्ट फल अच्छा देत, गहरा जोत बनावे खेत।

६३—धान गिरे सौभागे का, गेहूँ गिरे अभागे का।

६४—असाढ़ में खाद खेत में जावै, तब मूठीभर दाना पावे।

६५—बरद मुसरहा जो कोई ले, राजभंग पल में कर दे।
तिरिया बाल सबै छुटि जाय, भीख माँग के घर २ खाय।

६६—सींग मुड़े माथा उठा, मुँह का होवे गोल।
रोम नरम चंचल करन, तेज बैल अनमोल॥

६७—एक हल हत्या, दो हल काज।
तीन हल खेती, चार हल राज॥

६८—कान कछाटा झवरे कान, इन्हें छाँड़ि जनि लीजो आन।

६९—निटिया बरद छोकरा हारी, दूध कहे मोर काह उखारी॥

७०—बैल लीजै कजरा, दाम दीजै अगरा।

७१—बैल बिसाहन जाओ कन्ता, भूरे का मत देखो दन्ता।

७२—लम्बे लम्बे कान और ढीला मुतवान।
छोड़ो छोड़ो किसान, न तो जात हैं प्रान॥

७३—सात दाँत उदन्ता को रङ्ग जो कारो होय।
इन्हें कबहुँ नहिं लीजिये, दाम चहै जो होय॥

७४—हिरन मुतान और पतली पूँछ, बैल बेसाहो कन्त बेपूछ।

७५—बाँधा बछड़ा जाय मठाय, बैठा ज्वान जाय तुँदियाय।

७६—छोट सींग औ छोटी पूँछ, ऐसे को ले लो बेपूछ।

७७—घोंची देखे वहि पार, थैली खोले यहि पार।

७८—बरद बिसाहन जाओ कन्ता, कुबरा का मत देखो दन्ता।

७९—फेंट बँधीला देह गठीला, आँखों का चमकीला।
भाषैं नानकचन्द मर्द है, वर्ध कन्ध का नीला॥

८०—छोटा मुँह ऐंठा कान, यही बरद की है पहिचान।

८१—छिया पूँछ औ छोटे कान, ऐसे बरद मेहनती जान।

८२—जब देखो पिय सम्पति थोड़ी, बिसहो गाय बिआउर घोड़ी।

८३—बरद बिसाहन जाओ कन्ता, खीरे का जनि देखो दन्ता।

जहाँ परे खीरे की खुरी, तो कर डारे चपरा पुरी॥

जहाँ परे खीरे की लार, बढ़नी लेके बुहारो सार।

जहाँ देखो पटवा की डोर, तहाँ दीजो थैली छोर॥

८४—या तो बोवे कपास अरु ईख, नाहीं माँग के खाये भीख।

८५—जो हल जोते खेती वाकी, और नहीं तो जाकी ताकी।

८६—मंगल बारी पड़े दिवारी, रहे किसान रोये व्योपारी।

८७—साठी पके साठवें दिन, जो पानी पावे आठवें दिन।

८८—ठाढ़ी खेती गाभिन गाय, तब जानो जब मुँह में जाय।

८९—परहथ बनिज सँदेसे खेती, बे बर देखे व्याहे बेटी।

द्वार पराये गाड़े खाती, ये चारों मिल पीटें छाती॥

९०—ऊँचे चढ़ के बोला मँडुआ, सब नाजों का मैं हूँ भँडुआ।

आठ दिना मुझको जो खाय, भले मर्द से उठा न जाय॥

९१—बुध बीफे सुक भरे बखार, सनि मंगल बीज न आवे द्वार।

९२—धान पान उखेरा, ये पानी के चेरा।

९३—असाढ़ मास जो घूमा कीन, ताकी खेती होवे हीन।

९४—साठी होवे साठ दिना, जब पानी बरसे रात दिना।

९५—छोड़ि खाद जोत गहराई, तब खेती का मजा दिखाई।

९६—खूब जोतै औ लावे खाद, तब देखे गेहूँ का स्वाद।

९७—सावन भादो खेत निरावे, तब गृहस्त बहुतै सुख पावे।

९८—पानी बरसे बहल न पावे, तब खेती को मजा दिखावे।
९९—जब बरसे तब बाँधो क्यारी, असल किसान जो हाथ कुदारी।
१००—पहिले छाओ तीन घरा, सार भुसौला औ मझ्हरा।
१०१—कौंध कुदारी खुरपी हाथ, लाठी हँसिया राखे साथ।
काटे घास निरावे खेत, पुरा किसान वही फल देत॥
१०२—जो तुम देहु नील की जूठी, सब खादों में रहे अनूठी।
१०३—सन के डएठल खेत छिटावे, तिनते लाभ चौगुना पावे।
१०४—जो कपास न गोडी, उहिके हाथ न लागे कौड़ी।
१०५—गेहूँ आये घाल, खेत बनाओ ताल।
१०६—बोओ गेहूँ काट कपास, फिर होवें ना ढेला घास।
१०७—काले फूल न आया पानी, धान मरा अधबीच जवानी।
१०८—तरकारी है सच तरकारी, या में पानी को अधिकारी।
१०९—तीन कियारी तेरह गोड़, देखो ईख तबै मुँहफोड़।
११०—जो ढेले दे तोर मरोर, ताके कोठला दूँगा फोर।
मेंड़ बाँध दस जोतन दे, दस मन बिगहा मो से ले।
१११—कच्चा खेत न जोते कोई, नाही बीज न अँकुरे होई॥
११२—गहरा जोत खाद से भरै, घर में अन्न रासि ले धरै।
११३—वही किसानी में है पूरा, जो छोड़े हड्डी का चूरा॥
११४—जाके खेत पड़ा ना गोबर, उहि किसान को जानो दूबर।
गोबर मैला नीम की खली, यहि से खेती दूनो फली॥
११५—धनि वह राजा धनि वह देस, जहँवाँ बरसै अगहन सेस।
पूस में दूनी माघ सवाई, फागुन बरसै घरो से जाई॥

११६-सुक्रबार की बादरी, रही सनीचर छाय।
कहे घाघ सुन भड्डरी, बिन बरसे नहिं जाय॥
११७-ढेले पर जब चील बोले, गली गली में पानी डोले॥
११८-माघ मास जो पड़े न सीत, महँगा नाज जानियो मीत॥
११९-रात में बोले काकुला, दिन में बोले स्याल।
तो यों भाखे भड्डरी, निश्चय पड़े अकाल॥
१२०-पुष्य पुनरबस ना भरे ताल, सो फिर भरिहैं अगले साल।
१२१-पुरवाई बहुतै बहै, विधवा पान चबाय।
वह ले आवै नीर को, यह काहू सँग जाय॥
१२२-सावन सुक्ला सत्तमी, उगत जो देखे भान।
या जल मिलिहैं कूप में, या गंगा अस्नान॥
१२३-कृष्ण असाढ़ी प्रतिपदा, जो उत्तर गरजन्त।
घाघ भड्डरी सो भखैं, निश्चय काल परन्त॥
१२४-दसी असाढ़ी कृष्ण को, मंगल रोहिन होय।
सस्ता धान बिकायगो, हाथ न छुइहैं कोय॥
१२५-तीतरपंखी बादरी, बिधवा कज्जल रेख।
यह बरखै वह घर करै, या में मीन न मेख॥
१२६-काले बादल डरावने, धौले बरसनहार।
१२७-असाढ़ मास पूनो दिवस, बादल घेरैं चन्द।
तो भड्डर जोसी कहैं, होवे परम अनन्द॥
१२८-कोठी चढ़े पुकारे जई, खिचड़ी खाकर क्यों ना बई।
जो कहुँ बोते बीघा चार, तो मैं डरती कुठिला फार॥

१२९-बोये बाजरा आये पुक्ख, फिर मन कैसे भोगे सुक्ख।
१३०-आगे गेहूँ पीछे धान, उसको कहिये बड़ा किसान।
१३१-सावन सावाँ अगहन जौ, जितना बोवे उतना लौ॥
१३२-घनी घनी जो सनई बोवे, तो सुतरी की आसा होवे।
१३३-जब बरसा चित्रा में होय, सिगरी खेती जाये खोय।
१३४-चित्रा गेहूँ अद्रा धान, इनके गेरुई न उनके घाम।
१३५-कोठिला बैठी बोले जई, आधे अगहन काहे न बई।

कुछ जानने योग्य फुटकर बातें—

(१) हिन्दूधर्मशास्त्र में यज्ञ की बड़ी महिमा कही गई है। आज-कल उतनी तैयारी के साथ यज्ञ नहीं हो सकते, जितनी धूमधाम से प्राचीन भारत में होते थे; क्योंकि प्राचीन भारत में धन-धान्य की कुछ भी कमी न थी, और वर्तमान काल में देश-भर में अभाव तथा दरिद्रता व्याप रही है। इसलिये आज-कल के यज्ञ में केवल हवन और दरिद्रनारायण का सत्कार मात्र होना चाहिये। लँगड़े, लूले, अन्धे, अपाहिज, कोढ़ी, बुढ़िया बेवा, अनाथ बालक आदि को अन्न-वस्त्र देना तथा शुद्ध अग्नि में पवित्र एवं सुगन्धित पदार्थों का हवन करना ही आज कल का सबसे बड़ा यज्ञ है। हवन से लाभ यह है कि उसके पवित्र धुएँ से सुन्दर मेघ बनते हैं और मधुर जल बरसता है। साल-भर में एक-दो बार सारे गाँव के किसानों की ओर से विशेष तैयारी के साथ विधि-पूर्वक हवन होना चाहिये। घर-घर में नित्य हवन होने

से घर की हवा साफ़ रहती है और मच्छड़ आदि जहरीले कीड़े दूर भागते हैं। जब से घर-घर हवन होना छूट गया, तब से हमारी दशा गिर गई। प्राचीन काल में प्रत्येक हिन्दू अपने घर में नित्य ही गन्ध-धूप जलाता था। यदि देहातो में रोज घर-घर हवन हो और साल-भर में एक-दो बार सामूहिक रूप से हवन किया जाय, तो निश्चय ही वृष्टि यथेष्ट होगी, जिससे खेती की दशा सुधर जायगी।

(२) खेती-बारी के विषय में पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये कृषि-सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ना चाहिये। जो किसान अपढ़ हों, उन्हें अपने गाँव के पढ़े-लिखे व्यक्तियों से सहायता लेने का प्रयत्न करना चाहिये। जो पढ़े-लिखे लोग देहातों में रहते हैं, उन्हें चाहिये कि कृषि-सम्बन्धी अच्छी पुस्तकों को मँगाकर गाँव-भर के अपढ़ किसानों को एकत्र कर पढ़ सुनावें। जो लोग देहातों में रहकर आधुनिक पत्र-पत्रिकाएँ मँगाते हैं, वे भी उन पत्र-पत्रिकाओं में छपे हुए कृषि-सम्बन्धी लेखों को किसानों में प्रचारित करें। यदि पुस्तकों और लेखों की भाषा कठिन हो, तो उसका असल मतलब खूब सरल भाषा में समझाने की चेष्टा करें। स्कूल और कालेज के अध्यापक तथा विद्यार्थी इस काम को छुट्टियों में आसानी से कर सकते हैं। गाँवों में रहनेवाले जमीन्दार और शिक्षित पुरुष भी इस रीति से अपने देश के किसानों की बहुत बड़ी सेवा कर सकते हैं। जो लोग हृदय से किसानो की भलाई करने पर उतारू हो जाते हैं, उन्हें सब किसान पूज्य देवता

तुल्य समझने लगते हैं। आजकल ऐसे देवताओं की बड़ी जरूरत है। ऐसे ही देवताओं से हमारे गाँवों का उद्धार होगा।

(२) आधे जेठ से आषाढ़ तक कपास बोने का मौसिम है अर्थात् वर्षा होने के कुछ पूर्व ही बोना चाहिये, जिसमें ३ या ४ पत्ती का पौधा वर्षा के पहले ही हो जाय, अन्यथा कीड़े-पतिङ्गे का बड़ा डर रहता है। कपास के लिये ऐसे खेत की आवश्यकता होती है जिसकी मिट्टी काली हो। ऐसा ही खेत कपास के लिये अति उत्तम है। दक्षिण-भारत, मध्यभारत, बुन्देलखण्ड, बरार और संयुक्त प्रांत की भूमि कपास के लिये बहुत अनुकूल है; क्योंकि काली मिट्टी इन स्थानों में बहुतायत से पायी जाती है। ऐसी मिट्टी में कपास बोने से पानी की कम आवश्यकता होती है। जिस भूमि के ऊपर का ३ या ४ इंच मोटा तल लाल और नीचे का काला हो वह जमीन इसके लिये अच्छी होती है। जिस खेत मे गेहूँ, गन्ना, जुआर और चना हो सकता है उसमें कपास आसानी से हो सकती है। लेकिन लाल मिट्टी में नहीं। जिस जमीन में पानी सोखने की शक्ति अधिक होती है, वह कपास के लिये अच्छी होती है। बंजर, ऊसर, चिकनी और रेतीली जमीन कपास के लिये बिलकुल बेकार है। कपास के लिये आवश्यक खाद है हड्डी, राख, बिनौले, नमक, सड़ी हुई मिट्टी। बीज मोटा और पुष्ट होना चाहिये। बीज कभी भिगोकर नहीं बोना चाहिये। पीले फूलवाली कपास की उपज अधिक होती है। बोने के लिये बिनौले को रुई के साथ ही रखना चाहिये और जब बोने का समय आवे, उसे

हाथ की चर्खी से ओटकर तब बोना चाहिये। अच्छी कपासों के नाम ये हैं—नरमा, हीरामणि, मिस्र की कपास, मठिया राम-कपास, देव कपास इत्यादि। कपास के अच्छे बीज "साबरमती आश्रम, अहमदाबाद, गुजरात" से मिल सकते हैं, जिनको मँगाना हो वहीं से मँगावें।

(४) दीमक से हमारी फसलो को बड़ी हानि होती है और कभी-कभी तो इससे सारी की सारी फसल चौपट हो जाती है। इसलिये गर्मी की ऋतु में गहरी जुताई करके यदि खेत को खुला पड़ा रहने दिया जाय तो दीमक बहुत कम लगती है। जहाँ जहाँ पर खेत में दीमक लगी हो, वहाँ-वहाँ पर मिट्टी का तेल पानी मिलाकर छिड़क देना चाहिये। जहाँ पर दीमक लगी हो, वहाँ पर पानी गिराओ; कुछ देर मे दीमक की रानी निकलेगी, उसको मार डालने से फिर दीमक नहीं लगती। कचनार की पत्तियों को कूट लो, फिर हींग मिला कर पानी में घोल दो; इसको छान कर ठंढा करके दीमक लगे हुए पौदों की जड़ों में छिड़क दो। मदार की पत्ती १० सेर, हींग १ छटाँक, नीम की खली १२ सेर, चूना ४ सेर, सब को अलग-अलग कूट कर मिला लो, और एक हौज में पानी डालकर इन सब चीजों को घोल दो, एक सप्ताह के पश्चात् १ मन पानी सब चीजों में मिला दो, और पिचकारी से पौदों की जड़ों में छिड़क दो। गोबर को यदि कहीं खेत में छिड़क दिया जाय तो दीमक आकर उससे लगने लगेंगी; इस समय उस दीमक लगे हुए गोबर को दीमक के

साथ जला देना चाहिये! नीम की खली भी देने से दीमक भाग जाती है; इसको पीस कर देना चाहिये, और फिर सिंचाई करनी चाहिये।

(५) जो खेतों में उत्पन्न होता है वह बहुत-सी सूरतें बदलता हुआ अन्त में खाद के रूप में परिवर्तित हो जाता है। खेतों की सम्पूर्ण उपज हमारे खाने-पीने, पहनने-ओढ़ने आदि के काम आती है। उससे माँस, हड्डी, थूक, पेशाब-पाखाना इत्यादि बनते हैं जो सड़ कर खाद बन जाते हैं। खेती करने वाले सभी लोग जानते हैं कि यदि खेतों को उतनी खाद न पहुँचाई जावे जितनी उनमें से पैदावार ली गई है तो भविष्य में उतनी पैदावार नहीं होगी। यदि किसी खेत में लगातार कई वर्ष तक उतनी खाद न दी जावे, जितनी उनमें से पैदावार कर ली गई है, तो अन्त में उस खेत में बहुत कम गल्ला पैदा होगा। अर्थात् उस खेत की पैदावार घटती ही चली जावेगी। हमारे देश का करोड़ों मन गल्ला (तिलहन आदि) प्रति वर्ष बाहर जाता है। उसके बदले में चाहे हमें जवाहरात, सोना आदि मिलता हो, परन्तु वह खाद—जो उनसे बनती है—नहीं मिलती। परिणाम यह कि हमारे देश की जमीन कमजोर होती चली जाती है और यदि अधिक पैदा करके गल्ला इसी प्रकार बाहर भेजते रहे तो कोई समय आवेगा, जब भारतवर्ष की सारी जमीन बंजर हो जावेगी। कोई कहते हैं कि हड्डियाँ देश के बाहर जा रही हैं और कोई कहते हैं कि गोबर का बड़ा दुरुपयोग होता है। मैं स्वीकार करता हूँ कि यह भी खराबियाँ

हैं कि पत्ती, गोबर आदि का उपयोग ठीक रूप से नहीं किया जाता है, परन्तु क्या गोबर, हड्डी, पत्ती इत्यादि के ठीक उपयोग से वह कमी पूरी हो जावेगी जो गल्ले के बाहर चले जाने से होती है? वैज्ञानिक तरीके दो प्रकार के हैं। पहला तरीका यह है कि खेत को नये प्रकार के हलों से जोता जावे ताकि ज़मीन अधिक गहरी खुदे। दूसरा तरीका यह है कि खनिज पदार्थों की खाद बनाई जावे और वह खेतों में डाली जावे। पहला तरीका कम परिश्रम और व्यय से भूमि को अधिक उर्वरा करने का है। परन्तु इससे खाद की कमी पूरी नहीं हो सकती। यह तो भूमि के अन्दर के उपजाऊ परमाणुओं को जमीन से निकाल कर उसे शीघ्र ऊसर बना देगा। हाँ, दूसरे प्रकार की नई खाद बना कर खेतों की कमज़ोरी दूर की जा सकती है। परन्तु यह कुछ असंभव-सा है और साथ ही साथ पर्याप्त भी नहीं है। जब खेती की उन्नति का प्रश्न हमारे सामने इस वास्ते है कि अन्न भी गल्ला अधिक पैदा करके बाहर भेजें और अधिक रुपया पैदा करें, तो हमें उसी क़दर खनिज खाद को पैदा करना पड़ेगा, जितनी गल्ले के चले जाने से खाद की कमी होती है और इस खाद को प्रत्येक गाँव के प्रत्येक खेत में पहुँचाना होगा। मेरे विचार में किसानों की दशा इस प्रकार सुधर सकती है कि गल्ला बाहर जाने से रोक दिया जावे, तीन-चौथाई जमीन जोती जावे, एक-चौथाई चारागाह के वास्ते छोड़ दी जावे। कुछ किसानों का ध्यान दस्तकारी की ओर आकर्षित किया जावे। लोगों की जरूरतों की चीजें

लोगों से ही पैदा कराई जावें, ताकि वे विदेशों पर अपनी साधारण-सी भी जरूरतों के लिये निर्भर न हों। किसानों में सामाजिक सुधार की भी आवश्यकता है जिससे वे विवाहादि में परिमित-व्ययी बनें। किसानों को यह भी बताने की आवश्यकता है कि अवकाश के समय में वे रस्सी बट सकते हैं, चर्खा कात सकते हैं, इसी प्रकार के और भी दूसरे काम कर सकते हैं जिनके लिये न अधिक रुपये की जरूरत है और न अधिक योग्यता की आवश्यकता है, जैसे दरी बुनना, टाट बुनना आदि। छोटे-मोटे व्यवसाय करने के ढंग आगे बताये गये हैं।

आठवाँ अध्याय

पशु-पालन और गो-रक्षा

तृन घास खाती पै खिलाती तुम्हे घृत दूध
मरने के बाद भी पवाई बने चाम की।
बछड़े बियावे हर जोतने में आवे सदा
गोधन की खाद अति खेतन के काम की॥
नाम सुनते ही विघ्न-बाधा भग जावे 'चन्द्र'
सुधा सम मूत्र है दवाई बिनु दाम की।
देख यंत्रणाएँ क्यों न भोगे परतंत्र बन
मारी जायें गायें जब ऐसी घनस्याम की॥ *

---

* 'सुरभि-संकीर्तन' से।

पशु-पालन की रीति प्रत्येक किसान को जानना चाहिये। कारण, खेती और गृहस्थी में तभी सुख-समृद्धि हो सकती है, जब पशु-पालन की रीति भली भाँति ज्ञात हो। खेती बिना बैलों के नहीं हो सकती और गाय-भैंस के बिना दूध-दही का सुख नहीं मिल सकता। भेंड़-बकरी पालनेवाले किसान अगर न रहें तो जाड़े में सस्ते कम्बल और रोग में गुणदायक बकरी का दूध कहाँ से मिले? गधे और कुत्ते भी बड़े काम के पशु हैं। गधों से हमारे समाज के धोबियों का काम निकलता है और कुत्ते हमारे घरों की रखवाली करते हैं—गाय-भैंस और भेंड़-बकरी तथा खेत-खलिहान की रखवाली में भी कुत्ते बड़े काम के सिद्ध होते हैं। घोड़े हमारी सवारी के काम में आते हैं। इसलिये इन उपयोगी पशुओं की रक्षा के विषय में मोटी-मोटी बातें जानना जरूरी है।

सबसे जरूरी और खास बात यह है कि इन पशुओं के रहने का स्थान खूब साफ-सुथरा और सूखा तथा हवादार होना चाहिये। अगर गोशाला की जमीन पक्की हो और किनारे-किनारे पतली नाली बनी हो तथा दीवारों में खुली हवादार खिड़कियाँ हों तो हमारी गौओं को हर मौसिम में सुख मिल सकता है। गोशाला में अगर हम गुग्गुल और लोबान रोज जलाया करें तो मच्छड़ों से भी गौओं की जान बचे। गोशाला के बाहर थोड़ा सहन, खुला मैदान या चौरस जमीन होनी चाहिये, जो सूखी और ऊँची तथा समतल हो—जहाँ जाड़े और बरसात में गौओं को खुली धूप मिल सके। जहाँ घने पेड़ों के नीचे गौओं को रक्खा जाता है

वहाँ भी पेड़ के तने के चारों ओर जमीन ऊँची और पक्की होनी चाहिये। गौओं के रहने के स्थान में कीचड़ होने ही से मच्छड़ पैदा होते हैं और अनेक प्रकार के पशु-रोग भी उत्पन्न होने लगते हैं। अतएव पशुओं के रहने के लिये नीरोग स्थान का प्रबन्ध अवश्य ही करना चाहिये; क्योंकि किसान और गृहस्थ उन्हीं बेचारों की कमाई पर मौज करते हैं। नीरोग पशु से खेती में विघ्न-बाधा नहीं पड़ती, शुद्ध दूध मिलने से बाल-बच्चों की तन्दुरुस्ती भी ठीक रहती है, अच्छा गोबर और मूत्र होने से बढ़िया खाद बनती है। हर तरह से पशुओं को नीरोग रखने में ही कल्याण है।

इंगलैंड में पशु कैसे पाले जाते हैं?—

बिहार-प्रान्त के सर्वमान्य नेता बाबू राजेन्द्रप्रसादजी जब विलायत गये थे, तो उन्होंने वहाँ के पशुओं की दशा पर भारत-वासियों का ध्यान खींचते हुए एक लेख लिखा था, जिसका कुछ अंश यहाँ देना आवश्यक है। उनके इन विचारों पर किसानों को ध्यान देना चाहिये—

"हमारे देश के लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि इंगलैंड के लोग जानवरों के साथ बहुत प्रेम करते हैं। हम तो यह समझते हैं कि जो इतना मांस खाते हैं—जिनको प्रतिदिन उदर भरने के लिये लाखों जानवरों को मारना पड़ता है, वे जानवरों के साथ क्या प्रेम कर सकते हैं? पर बात ऐसी ही है। जिस जानवर को वे पालते हैं, उसे तो घर के बच्चों के समान ही मानते हैं। कुत्ते,

बिल्ली, चिड़िया, घोड़े आदि घर में शौक से पाले जाते हैं। इन जानवरों की सेवा-सुश्रूषा में बहुत खर्च किया जाता है। उनके खाने का और सोने का पूरा प्रबन्ध है। हिन्दुस्थान में तो मुझे कभी-कभी इस बात की हसद हुआ करती थी कि हिंदुस्थानी नौकरों के मुक़ाबले इनके कुत्तों की अधिक कदर हुआ करती है और उन-पर अधिक खर्च हुआ करता है। पर बात यह है कि इन जान-वरों के प्रति इनको प्रेम है। जो पालतू जानवर हैं उनको छोड़कर चिड़ियों के साथ भी बहुत प्रेम दर्शाते हैं। यहाँ बड़े-बड़े बागों में, जहाँ लोग हवा खाने जाया करते हैं, अकसर देखने में आता है कि बहुतेरों के पास चिड़ियों को खिलाने के लिये कुछ दाने हुआ करते हैं। जहाँ-जहाँ चिड़ियों के अड्डे हैं, दाने बखेर दिया करते हैं।

"जो जानवर यहाँ देखने में आते हैं उनमें दुबला तो एक भी नहीं मिलता। मैंने एक भी दुबली गाय या दुबला घोड़ा नहीं देखा। भेड़ों को देखकर तो आश्चर्य होता है कि वे कैसे इतनी मोटी होती हैं। जान पड़ता है कि उनको खाने की तकलीफ नहीं है। मारकर खाने के लिये जो जानवर पाले जाते हैं उनको भी खूब खिला-पिलाकर तैयार रखते हैं। देश तो छोटा है, आबादी बहुत अधिक है; पर यहाँ जितनी परती जमीन देखने में आती है उतनी हमारे देश में—कृषिप्रधान होने पर भी—नहीं देखने में आती। जिसको कुछ भी खेती है उसकी जमीन में प्रायः आधी जमीन नाज उपजाने के लिये है तो आधी जमीन घास के लिये, जिसमें जानवर चर सकें। जो जमीन परती रखी जाती है उसकी

भी पूरी हिफाजत की जाती है। अकसर देखने में आता है कि प्रत्येक खेत चारों ओर तार से अथवा लकड़ी के कठघरो से घेरा हुआ है। उसमें छोटा-सा फाटक लगा हुआ है, जिसमें ताला लगा रहता है। गृहस्थ अपने जानवरों को उसी घिरी हुई परती मे लाकर छोड़ देते हैं और ताला बन्द करके घर पर चले जाते हैं या दूसरे काम मे लग जाते हैं। जानवर दिन-भर उसमें चरते रहते हैं और खाकर खूब मोटे हो जाते हैं। भेड़, गाय और घोड़े ऐसी ही परती में रहते हैं। बहुत स्थानों में तो इसी परती में उनके रहने के लिये भी स्थान बना रहता है। उसीमें बन्द कर दिये जाते हैं। पर मैंने यह भी देखा है कि बहुतेरो में कोई बन्द जगह नहीं है और रात को भी जानवर मैदान में ही पड़े रहते हैं। यहाँ की सर्दी का उनपर कुछ भी असर नहीं पड़ता—विशेषकर भेड़ो पर।

"हिंदू अपने को गोभक्त कहते हैं। हिंदू-धर्म में जीव-दया का बहुत माहात्म्य है। उसी जीव-दया की पराकाष्ठा गोभक्ति है। कितना खून-खराबा प्रत्येक वर्ष गोवध के कारण हुआ करता है! पर हिंदुओं की पूज्य गायें उतने आराम से नहीं रखी जाती हैं जितने आराम से अंग्रेजों की खाद्य गायें! मैंने देखा है कि हिंदू जमीन्दार भी गायों के लिये परती छोड़ना बहुत बड़ा नुकसान मानते हैं। हिन्दू राज्यो में भी गायों की चरी पर 'कर' लगाया जाता है! उन गरीब रैयतों से, जिनको अपने पेट भरने के लिये भी काफी अन्न नहीं मिलता, गायों और भैंसों के चराने के लिये लगान वसूल किया जाता है। छोटे-मोटे हिंदू गृहस्थ भी, जहाँ

थोड़ी भी जमीन परती देखने में आई, उसे या तो आहिस्ते-आहिस्ते किसी-न-किसी प्रकार से कब्जे में कर लेते हैं, या यदि जमीन्दार कड़ा आदमी है तो उससे लगान पर ले लेते हैं !"

गोरक्षा से भारत-रक्षा—

गोधन ही भारत का धन रहा है, पर हमारी गुलामी ने हम से यह धन छीन लिया। कहावत है, "जिसका दूध पी लिया वह माता-तुल्य हो गई।" इसी कथनानुसार पाठक विचार करें तो ज्ञात हो जायगा कि गोमाता का स्थान कितना ऊँचा है। अपनी माता तो बस एक निर्धारित समय तक ही दूध पिलाती है। हाँ, नव महीने तक अपने उदर में रखकर यह माता अवश्य हमारे ऊपर ऐसा ऋण लाद देती है कि उससे उऋण होना हमारे लिये कठिन हो जाता है। पर विचार-पूर्वक देखने से पता लगता है कि अपनी माता और गोमाता में भारी भेद है। गोमाता का स्थान अपनी माता से कई-गुना बड़ा है। इसका कारण है। गोमाता जन्मकाल से लेकर मरण-काल पर्यन्त हमें दूध पिलाती है। मृत्यु के पश्चात् भी गोमाता हमारे काम मे आती है। परलोक-गत आत्मा के निमित्त भी समय-समय पर घी, दूध एवं दही की आवश्यकता पड़ती है। गोमाता के ऋण से मानव-समाज को कौन कहे, देव-मण्डली भी दबी हुई है। यज्ञादि कार्यों में गोमाता की कृपा से ही घी मिलता है। इतना ही नहीं, हम गोमाता के गोबर को भी परम पवित्र मानते हैं। गो महत्व का यही जीता-जागता प्रमाण है। इसी महत्ता के कारण हिन्दू-जाति ने यह

स्वीकार किया है—"गावस्त्रैलोक्यमातरः", अर्थात् गौ तीनों लोकों की माता है। यह बात अक्षरशः ठीक है। पर लिखते समय मार्मिक व्यथा होती है कि इसी गोभक्त भारत में प्रति वर्ष प्रायः एक करोड़ से अधिक गो-वंश का बध किया जाता है। जिस देश में महाराज दिलीप ने एक गौ की रक्षा में ही अपनी कीर्त्ति की रक्षा समझी थी, जिस देश में बाल-गोपाल कृष्ण ने गो-सेवा में वन-वन भ्रमण करना अपना दैनिक कार्य बना रखा था एवं जिस देश में वशिष्ठ महाराज की एक गौ चुराने के अपराध में आठों वसुओं को शाप का भाजन बनना पड़ा था, आज उसी देश में हम गो-घात जैसा महापाप देख रहे हैं !

हमारे देश के नेताओं को गोरक्षा पर विचार करने का अवसर ही कहाँ मिल सकता है ? हमारे देश के प्रकांड पंडितों को गोरक्षा पर विचार करने की चिन्ता ही कहाँ है ? हमारे देश के नवयुवकों को इस विषय को हाथ में लेने का शौक ही कहाँ है ? हमारे देश के राजों-महाराजों को गोरक्षा करने की धुन ही कहाँ है ? हाँ, शिशुरक्षा एवं शुद्ध दूध की समस्या लेकर हमारे सार्वजनिक कार्यकर्त्ता होहल्ला मचाने में एक भी नहीं उठा रखते। पर गोरक्षा करने का कुछ भी उपाय नहीं करते ! यदि हमारे देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता गोरक्षा के निमित्त निरन्तर प्रयत्न करते तो विजयश्री प्राप्त होते देर ही न लगती। यदि गोरक्षा को लेकर सरकार से कहा जाय कि वह भारत से गोहत्या एकदम उठा दे, तो हमारा विश्वास है कि लाखों नहीं करोड़ों हिन्दू सन्तानें

सामने आ जायँगी ; देश मे फिर ऐसी जागृति उत्पन्न होगी कि सरकार हमारी माँग की उपेक्षा ही नहीं कर सकती। गोरक्षा से तो सरकार और भारत दोनों का परम कल्याण है। पर न जाने क्यो, सरकार उसकी उपेक्षा करती है। भारत पर शासन करने का उसे अजहद शौक है, पर भारत रक्षा की उसे परवाह ही नहीं है। इस भूल का भी कहीं ठिकाना है कि "सिर काटकर बालों की रक्षा की जाय!" वास्तव में गोरक्षा ही भारत-रक्षा है। देश ही नहीं रहेगा, तो न्याय और शांति की रक्षा किस मर्ज की दवा है? भारत गारत हो रहा है; पर इसे बचाने की चिन्ता ही किसको है? एक ओर तो सरकार उदासीन है और दूसरी ओर हमारे लीडर गोरक्षा की उपेक्षा कर रहे हैं। मुट्ठीभर माई के लाल गोरक्षा कर रहे हैं। पर यह आवश्यकता से बहुत कम है। एक गोशाला से काम नहीं चलेगा। ग्राम-ग्राम में गोशाला की आवश्यकता है। इस काम में सरकार और लीडर तो तटस्थ हैं ही; पर जनता भी तो चुप है। उसने गोचर-भूमि के लिये क्या किया है या कर रही है? उसने गौओं को मतलब निकल जाने के बाद कहाँ रखने का प्रबंध किया है? एक की भूल नहीं है। सब की भूल है। इसलिये सबको मिलजुल कर गोरक्षा में तत्पर होना चाहिये। गौरक्षा से ही भारत की खेती और जनता का वास्तविक कल्याण होगा। विना गोरक्षा के न तो पुष्ट बैल सस्ते मिलेंगे, न बच्चों को शुद्ध और काफी दूध मिलेगा, न शुद्ध हवन-सामग्री मिल सकेगी और न भारत की श्रीवृद्धि ही होगी।

गोवध कैसे रोका जाय ?—

हिन्दुस्थान में लगभग १५०० गोशालाएँ हैं। मगर न तो कहीं संगठन है और न वे आज मिलकर काम करना चाहती हैं। मुश्किल से ७०० गोशालाओं का पता लगता है। किन्तु इन ७०० गोशालाओं की व्यवस्था भी अच्छी नहीं है! ऐसी गोशालाएँ, जिनका प्रबन्ध सन्तोषजनक है, उँगलियों पर गिन लेने योग्य हैं। जिस देश में हजारों छोटे-बड़े नगर और सात लाख गाँव हैं, वहाँ गोशालाओं की इतनी कमी बड़ी लज्जा की बात है। यदि गाँव-गाँव में नहीं, तो दस-दस गाँवों के बीच में एक-एक गोशाला तो होनी ही चाहिये। इसके लिये दस गाँव के भलेमानस मिलकर ही उद्योग करें तो अच्छा होगा। दाना, चारा, पुआल आदि माँग कर ही एकत्र किया जा सकता है, खरीदने की जरूरत नहीं। हम कह चुके हैं कि हिन्दुस्थान में प्रतिवर्ष एक करोड़ से ऊपर गो-वध होता है। यहाँ पर ७ करोड़ मुसलमान रहते हैं। कुल गायों की संख्या १४ करोड़ और साढ़े चौदह करोड़ के बीच में है। अगर सब ही मुसलमान गोमांस खाते, तो वे एक साल में कुल १४ करोड़ गौओं को मारकर खा सकते थे। दो गाय का मांस क्या एक वर्ष के ३६५ दिन में भी एक मुसलमान नहीं खा सकता? अगर ऐसा होता तो १४ करोड़ गौएँ यहाँ एक वर्ष में मारी जा सकती थीं। एक वर्ष नहीं, तो पाँच वर्ष में गौओं का नाम-निशान मिट जाता और गो-वध-सम्बन्धी हिन्दू-मुसलमानों का झगड़ा भी बन्द हो जाता। मगर बात ऐसी नहीं है। सात करोड़ मुसलमानों

में १० लाख भी मुसलमान ऐसे नहीं हैं, जो गोमांस खाते हों। बड़े शहरों में रहनेवाले मुसलमान, अपने अंग्रेज और ईसाई साथियों के साथ, नित्य गोमांस खाते होंगे। मगर उनकी संख्या भी प्रायः उतनी ही होगी जितनी कि अन्य मांस खानेवाली जातियों की। यही नहीं, अगर हिसाब लगाकर देखा जावे तो मुसलमान कदापि उतना गोमांस नहीं खाते जितना कि अंग्रेज और ईसाई आदि। इसके अतिरिक्त विदेशों को चालान होनेवाले सूखे मांस के लिये जो पुष्ट और नई गौएँ मारी जाती हैं, उनकी प्रतिवर्ष की संख्या भी ३०-३५ लाख के करीब है! बारह लाख गौओं का मांस तो बृटिश फौज भक्षण कर जाती है। इस लिये केवल मुसलमानों को दोष देने से गोबध में कमी होने की जरा भी सम्भावना नहीं है। वस्तुतः गोबध की जिम्मेदारी सरकार पर ही अधिक पड़ती है और तब तक गोबध बन्द होने की सम्भावना बहुत कम है जब तक सरकार ध्यान न दे। अगर यह राजकीय प्रश्न न होता तो बाबर, अकबर, हुमायूँ आदि मुगल सम्राटों को कदापि इस बात की आवश्यकता न पड़ती कि वे शाही फरमान द्वारा गोबध बन्द कराते। खाने-पीने की वस्तुओं को नियमित करने तथा प्रजा के सुख और स्वास्थ्य-संबंधी कार्यों की जिम्मेवारी हमेशा से सरकार या राज्य पर ही रही है, और सचमुच राज्य ही इनको नियमित कर भी सकता है—अगर वह राज्य वस्तुतः प्रजा के हित के लिये हो।

यदि सरकार का सहारा छोड़ दिया जाय, इस बारे में उस

पर कुछ भरोसा ही न किया जाय, तो फिर गो-साहित्य का प्रचार ही एकमात्र ऐसा उपाय है, जिससे गोवध रुक सकता है। भारत की सभी भाषाओं में गो-साहित्य का निर्माण करके समस्त देश की जनता में प्रचार करने की आवश्यकता है। गो-साहित्य का प्रचार ही सच्ची गोरक्षा का उपाय है। इस समय भारत में जितनी पिंजरापोल और गोशाला या गोरक्षिणी नाम की संस्थाए हैं और उनके पास गोरक्षा के नाम पर बटोरा हुआ जितना धन जमा है उसे यदि वे नियमपूर्वक गो-साहित्य के प्रचार में खर्च करना प्रारंभ कर देवें, तो आगामी दस वर्षों में ही आप देखेंगे कि भारत का गोधन कितना उन्नत होकर भारत का कितना हित करता है। सामयिक और स्थायी गो साहित्य के प्रचार से जब भारत के किसान भाइयों में गोपालन की शिक्षा का प्रचार किया जायगा तब उसके ज्ञान से ही सच्ची गोरक्षा की जा सकेगी। इस समय समस्त भारत में ऐसे २४ करोड़ लोग बसते हैं जो अपने-आपको बड़े अभिमान के साथ गोभक्त कहा करते हैं। उनमें कई ऐसे भी हैं, जो बड़े-बड़े छापेखाने तथा सामयिक पत्रों के सञ्चालक और प्रकाशक हैं। वे यदि गोपालन की शिक्षा के प्रचार की आवश्यकता को समझ लें तो वे आसानी से गो-साहित्य का प्रकाशन कर सकते हैं। हिन्दी में गोपालन-संबंधी सुबोध साहित्य न होना गोभक्तों के लिये बड़ी लज्जा की बात है।

अति सरल, अत्यन्त सुबोध, भाषा में गो-पालन-सम्बन्धी बातें गाँव-गाँव के घर-घर में पहुँचाने की जरूरत है। गोरक्षा का महत्व,

गो-सेवा के लाभ, गो-हत्या की हानियाँ आदि बातों को स्पष्ट अक्षरों और सुगम शब्दों में हर एक भारतवासी के पास पहुँचाना चाहिये। हमारे किसानों में निम्नलिखित विषयों की जानकारी फैलाने की जरूरत है—(१) गौओं की दूध देने की शक्ति धीरे-धीरे किस प्रकार बढ़ायी जा सकती है। (२) दुधार गौओ और बली साँडों का परिपालन शुरू से ही किस प्रकार किया जाना चाहिये। (३) गौओ को किस प्रकार के स्थानों में रखना चाहिये और उन्हें किस प्रकार का चारा, दाना और पानी किस समय और कितना देना चाहिये। (४) जो चारे और दाने गौओं के लिये हितकारक सिद्ध हुए हैं, उनकी खेती कब और किस प्रकार करने से वे, कम खर्च और कम परिश्रम में, अधिक मात्रा में पैदा किये जा सकते हैं। (५) गौओं को कौन-कौन-से रोग किस प्रकार की असावधानी के कारण सताया करते हैं और उनसे उनकी रक्षा किन उपायों से की जा सकती है। (६) किन प्रकार के रोगों से पीड़ित होनेवाले पशुओं का दूध और मक्खन जनता को हानि पहुँचाता है। (७) दूध, दही और मक्खन आदि को किस-रीति से बनाने से वे अधिक लाभदायक हो सकते हैं। (८) किस प्रकार के पात्रो में गौओं को दुहना और दूध, दही, घी आदि रखना चाहिये। (९) किस प्रकार के सेवक उनकी सेवा के लिये रक्खे जाने चाहिये, या उनके सेवक को कैसा होना चाहिये। (१०) जिस साँड़ की माँ और बेटियाँ दुधार होती हैं, वही सुलक्षण और उत्तम साँड़ माना जाता है। उसी प्रकार जिस गो की माँ दुधार

होती है और जिसका बाप दुधार गौ का बेटा तथा दुधार गौ का पोता होता है, वह गौ अवश्य ही अधिक दूध देनेवाली होती है। (११) जो गौ सुस्वादु, रसीले और पौष्टिक चारे-दाने को जितनी अधिक मात्रा में खाकर पचा सकती है, वह उतना ही अधिक दूध और मक्खन देती है। (१२) किस प्रकार की धरती को कौन-सी खाद कितनी मात्रा मे कब और किस प्रकार देने से कौन-से चारे-दाने की कितनी उपज हो सकती है और वे कितने पशुओं को कितने दिनों तक खेतों में और कितने दिनों तक गोशालाओ में खिलाये जा सकते हैं। (१३) गौओं के दूध, दही, मट्ठा, घी आदि से कितनी तरह की खानेवाली चीजे, बनाई जा सकती हैं। (१४) उनके गोबर, मूत्र, खुर, सींग, चाम आदि से मनुष्य-जाति को क्या लाभ पहुँचता है—लोगों का कितना उपकार होता है। (१५) गोरक्षा द्वारा खेती और तिजारत में कहाँ तक वृद्धि और उन्नति हो सकती है। (१६) गोवध रोक देने से कितने कम दिनों में देश की दशा किस तरह पलट सकती है। (१७) गौओं की हत्या से हाथ खींच लेने पर अहिन्दू जातियों को उनसे कितना लाभ पहुँच सकता है और कितना लाभ इस समय पहुँच रहा है।

ऐसी ही बातों को खूब सरल भाषा में गाँव-गाँव और शहर-शहर में फैलाने की जरूरत है। सब लोग जहाँ कहीं मिल बैठें, वहाँ भी इसी तरह की चर्चा करें। बोलचाल और चिट्ठी-पत्री में भी इन बातों पर ध्यान रहे। हर-एक गाँव में एक-एक दो-दो आदमी इसी काम में अपनी जिन्दगी खपा देने को तैयार हो जायँ।

अखबारवालों के पास चिट्ठियाँ और सँदेसे भेज-भेजकर उन्हें सुझाया और उकसाया जाय कि वे किसानों के हित के लिये खेती और गो-रक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली बातें बराबर छापा करें तथा गोवध बन्द कराने के काम में अपनी बुद्धि और सोचावट से जनता को शिक्षा दें। इसी प्रकार गोवध बन्द करने का प्रयत्न हो सकता है।

उत्तम साँड़ की आवश्यकता—

हमारे देश में साँड़ों की बड़ी दुर्दशा है। अच्छे साँड़ों के अभाव में गो-वंश की वृद्धि कभी हो ही नहीं सकती। गौओं के मालिक शिवजी की राजधानी काशी में भी साँड़ों की बड़ी दयनीय दशा है! देहातों में तो साँड़ों की दुर्गति का कोई ठिकाना ही नहीं है। विदेशों में एक साँड़ का मूल्य कई हजार रुपये होता है। इसी लिये वहाँ की गायें खूब पुष्ट बछड़े और दुधैल बछिया पैदा करती हैं तथा अधिक दिनों तक काफी दूध भी देती हैं। साँड़ों के विषय में एक विद्वान् सज्जन के विचार सुनने योग्य हैं। ध्यान दीजिये—

'वृषोत्सर्ग' अर्थात् 'साँड़ों का छोडना' शास्त्रों में बहुत ही उत्तम धर्म-कार्य कहा गया है। इतिहास में भी इसका उल्लेख मिलता है। 'सर जान मार्शल', जो भारत-सरकार के पुरातत्व-विभाग में डायरेक्टर-जनरल हैं, लिखते हैं कि "पिछले वर्ष जो चीजें भूगर्भ से निकली हैं उनमें सबसे आश्चर्यजनक एक साँड की मूर्ति है। इसकी मुटाई अधिक है और सजावट बड़ी

सुन्दर है।" इस मूर्ति से प्रमाणित होता है कि साँड़ छोड़ने की विधि आज से ५००० वर्ष पहले भी इसी प्रकार जारी थी जैसे कि आजकल है। 'सर मोनियर विलियम' इसको हिंदुओं को सुख बढ़ानेवाली दूरदर्शिता बतलाते हैं। पारसियों की धर्मपुस्तक "जेन्द अवस्ता" में बैल को 'सब पशुओं का बाबा आदम' माना है। उसी से २८० प्रकार के पशुओं की उत्पत्ति बतायी गई है! हमारे शास्त्रकारों ने यह भी बताया है कि साँड़ में क्या-क्या गुण होने चाहिये। उनमें से एक यह भी है कि साँड़ ऐसी गाय का बछड़ा होना चाहिये जिसका एक भी बच्चा न मरा हो, न गर्भपात ही हुआ हो। 'श्री रेलफ ए० हाइन' अपनी एक पुस्तक (धनधान्य की जननी गाय) में लिखते हैं—"क्या आप इस प्रकार का साँड़ रखते हैं, जिसके माँ-बाप के उत्तम जाति के और अधिक दूध देनेवाले वंश के होने का आपके पास प्रमाण है? अथवा, आप केवल एक साधारण ही साँड़ काम में ला रहे हैं, जिसके माता-पिता के बारे में किसी को कुछ भी मालूम नहीं?" फिर 'प्रोफेसर सी० एच० इकल' अपनी एक पुस्तक (दूध देनेवाले पशु और उनकी उत्पत्ति) में लिखते हैं—"मसूरी यूनिवर्सिटी की गाय एक मामूली साँड़ से लगायी गयी और इससे जो बछिया पैदा हुई वह अपनी माता से साल-भर में १००९ पौंड कम दूध देनेवाली निकली।" आगे वे बतलाते हैं कि एक उत्तम साँड़ से क्या फल हो सकता है—"एक कृषि-कालिज में एक गाय छोड़ी गयी, जिसे अच्छी खुराक ने और देखभाल करने पर सालाना ३८७५ पौंड दूध और १९३

पौंड मक्खन मिलता था। उसका संबध एक उत्तम साँड़ से कराया गया। उसकी जो बछिया हुई उससे ५९५६ पौंड दूध और २६६ पौंड मक्खन निकला। फिर इसी की बछिया उत्तम जाति के साँड़ से गाभिन करायी गयी। परिणाम यह हुआ कि उससे १२८०४ पौंड दूध और ४८२ पौंड मक्खन मिलता था।" उत्तम जाति के साँड़ से उत्पन्न दो नसलों में इतना अन्तर हो गया! एक उत्तम साँड़ ५० मामूली साँड़ों से अधिक लाभदायक है। २०० गाय पीछे ३ साँड़ काफी होते हैं। कौटिल्य-अर्थशास्त्र में १०० गाय पीछे ४ साँड़ लिखे हैं।

कहने का मतलब यह कि अच्छा तथा बलिष्ठ बैल तभी पैदा हो सकता है जब उसकी माता अधिक दूध देनेवाली हो। सुन्दर तथा अधिक दूध देनेवाली गाय तभी पैदा हो सकती है, जब उसके पिता (साँड़) की माता अच्छी और अधिक दूध देनेवाली होगी तथा साँड़ सुन्दर होगा। हमारी अधिकतर गायें ऐसी हैं कि वे बड़ी कठिनता से दो सेर दूध प्रतिदिन देती हैं, सो भी साल मे ६ महीने के लगभग! शायद ही कोई किसान अपनी गाय के लिये साँड़ स्वयं पालता है। भारतवर्ष के अधिकतर लोग अपने पिता या किसी श्रेष्ठ पुरुष के मरने पर एक बछड़ा, जो कि कम से कम मूल्य पर मिलता है, उसके नाम से छोड़ देते हैं। उसी समय से वह बाँधा नहीं जाता। छुटा हुआ वह हमारे खेतों की फसल को नष्ट करता है। जिस समय में यह प्रथा प्रचलित हुई थी, उस समय इसकी हालत ऐसी नहीं थी। वह विचार,

जिससे इस प्रथा का आरम्भ हुआ था, अत्यन्त ही श्रेष्ठ था। कोई जमींदार अपने किसी सगे श्रेष्ठ प्राणी के मरने के पश्चात् एक सुन्दर तथा अच्छी गाय का बछड़ा बिना बधिया किये ही छोड़ देता था। उसका मतलब यह था कि वे किसान, जो स्वयं साँड़ नहीं पाल सकते तथा नहीं मोल ले सकते, उसे काम में लायें। उनकी गायें इन अच्छे साँड़ों से लगती थीं और अधिक दूध देनेवाली गाय तथा बलिष्ठ बैल पैदा होते थे। एक प्रकार का यह परोपकार था। परन्तु अब निर्बल तथा थोड़ा दूध देनेवाली गायों के बछड़ों को लोग छोड़ते हैं, उनकी नसल तक का पता नहीं होता। वे अनेक विकारों से युक्त होते हैं। क्या हम इन दीन हीन साँड़ों से अपनी गायों के सुधार का स्वप्न देख सकते हैं? कभी नहीं! इनसे गोवंश के सुधार की आशा करना निरी मूर्खता है। जब तक इन साँड़ों से काम लेना बिलकुल बन्द न हो जायगा, तब तक हमारी गायों की यही हालत रहेगी। हमारा मतलब यह कदापि नहीं है कि इनको मार डाला जाय, बल्कि १० गाँवों के बीच में एक गोशाला बना दी जाय और तमाम साँड़ उसी में कर दिये जावें। इनके जीवन-निर्वाह के लिये अच्छा खाना दे दिया जाया करे। इस प्रकार थोड़े ही वर्षों में इनसे छुटकारा मिल सकता है। साथ ही, नये साँड़ों का छोड़ना मना कर दिया जाय। यदि कोई साँड़ छोड़ना ही चाहे तो उसको ग्राम-पंचायत या जमीन्दार या सरकार से आज्ञा लेनी चाहिये और पंचो तथा सरकार को चाहिये कि हर प्रकार उस बछड़े का निरीक्षण करा

कर तथा शास्त्रानुसार विधि पर ही आज्ञा दे। अर्थात् वह मनुष्य प्रथम उन सब शर्तों को पूर्ण करे, जो साँड़ छोड़ने के लिये शास्त्रानुसार आवश्यक हैं। इस प्रकार का निरीक्षण गाँव की पंचायतों द्वारा ही भली भाँति हो सकता है। इसी प्रकार अच्छे साँड़ों की संख्या बढ़ सकती है।

अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि फिर किसानों की गायों को किन साँड़ों से लगाया जाय। देश के प्रत्येक प्रान्त में सरकार ने गो-पालन के फार्म खोल रक्खे हैं। इस संयुक्त-प्रान्त में ऐसा एक फार्म मथुरा में है और दूसरा खीरी जिले में है। इन दोनों फार्मों का उद्देश्य यही है कि किसानों को थोड़े मूल्य में साँड़ दिये जायँ। किसी-किसी शर्तों पर वहाँ से साँड़ बिना मूल्य भी मिल सकते हैं। पंजाब में सन् १९२५--२६ साल मे ऐसे फार्मों से ३२० साँड़ किसानों के पास गये और हमारे संयुक्त-प्रांत में केवल ७५ अन्य प्रान्तों की संख्या निम्न-लिखित हैं—आसाम ७, बंगाल ५, बिहार-उड़ीसा ८, बम्बई २, मध्यप्रदेश ५२, मद्रास २०।

इस प्रकार के फार्म बड़े-बड़े जमींदारों द्वारा भी खोले जा सकते हैं। भारत की उन्नति तभी हो सकती है।

इन साँड़ों का उपयोग इस प्रकार किया जाय—प्रत्येक गाँव में एक पंचायत या सभा होनी चाहिये। उस सभा के पास एक या अधिक साँड होना चाहिये। पंचायत-सभा भी इससे लाभ उठा सकती हैं। जिला-बोर्डों का भी यह कर्तव्य है कि वे कुछ अच्छे साँड़ निश्चित स्थानों पर रक्खें और नाम-मात्र की फीस

लेकर किसानों को लाभ उठाने में मदद दें। आज-कल जो साँड़ फिरा करते हैं, उनका कुछ हिसाब नहीं लिखा जाता। यह नहीं पता चलता कि अमुक साँड़ साल में कितनी गायों से लगा। उनके खाने का कोई प्रबन्ध नहीं होता। इससे वे बहुधा निर्बल रहा करते हैं। कभी-कभी रोगी गायो से लगकर दूसरी गायों में वही रोग फैलाते हैं। यदि साँड किसी निश्चित जगह पर निश्चित मनुष्य की रक्षा में रहेगा, तो उपर्युक्त सब बुराइयाँ दूर हो जायँगी। यदि इन साँड़ो का चुनाव सोच-विचार कर, सब अंगों का पूर्ण रूप से निरीक्षण करके, किया जाय तो गायों तथा बैलो की जाति बहुत ही उन्नति को पहुँच सकती है।

गोमाता की महिमा—

वेद-शास्त्रों और पुराणों के मतानुसार देवता और मनुष्य, दोनों के सुख का साधन गोमाता ही है। गोमाता के अंग में समस्त देवता निवास करते हैं। पीठ में ब्रह्मा का निवास, गले में भगवान विष्णु का निवास और मुख में रुद्र का निवास है। बीच के अङ्गों में देवतागण विराजते हैं। रोमकूप (बालों की जड़) में महर्षि-समूह रहते हैं। पुच्छ मे अनन्त नाग, खुरों में कुल पर्वत, मूत्र में गङ्गादि नदियाँ, तथा नेत्रों में चन्द्र और सूर्य का निवास है। गोमाता को पीठ में ब्रह्मा का निवास है, इसका विज्ञान यह भी हो सकता है कि ब्रह्मा सृष्टि के देवता हैं, अतः जितनी ही गोमाता की पीठ की रक्षा होगी, उतनी ही संसार में मानवी सृष्टि बढ़ेगी। आज भी बहुत-से सन्तान-हीन सज्जन गोमाता की सेवा द्वारा

पुत्र-रत्न लाभ करते हैं। इसी प्रकार गोमाता के गले में भगवान विष्णु का निवास है—इसका यही सिद्धान्त है कि भगवान विष्णु सृष्टि का पालन करने के देवता हैं। पालन का सम्बन्ध गले के साथ है। जब तक गला है तब तक जीवन है। अर्थात् जब तक गोमाता के गले की रक्षा होगी, तब तक संसार में मनुष्यों का पालन होगा और जितना ही गोमाता का गला कटेगा उतना ही मनुष्यों का संहार होता जायगा। फिर, गोमाता के मुख में रुद्र का निवास है—इसका यह अर्थ है कि रुद्र रुलाने के देवता हैं और रोने का सम्बन्ध मुख के साथ है। अर्थात् संसार में गोमाता का मुख जितना ही रोवेगा, उतना ही संसार के मनुष्य रोवेंगे। अर्थात् गाय के दुःखी होने से समस्त संसार दुखी हो जायगा। पुनः गोमाता के मध्य भाग में देवताओं का निवास है—इसका तात्पर्य यह है कि देवता दूसरों को आनन्द और सुख देते हैं। आनन्द और सुख का सम्बन्ध शरीर के साथ है। गोमाता का शरीर भी प्राणियों को सुख देता है। देवताओं के दर्शन से सब पाप नष्ट हो जाते हैं। यात्रा के समय सवत्सा गो देखने से यात्रा की विघ्न-बाधायें दूर हो जाती हैं और यात्रा में इच्छानुकूल सफलता प्राप्त होती है। प्राचीन भारत के राजा नित्य प्रातःकाल गोदर्शन करते थे। गोमाता के स्पर्श करने और सहलाने-खुजलाने से गोमाता की सत्वगुणमयी विद्युत्शक्ति स्पर्शकर्त्ता के शरीर में प्रवेश कर उत्साह बढ़ाती है और बल-प्रदान करती है। यह अनुभव-सिद्ध बात है। गोमाता के पुच्छ द्वारा बालकों का बालग्रह

दोष और दृष्टिदोष दूर हो जाता है। यथा घवड़ाई हुई माता यशोदा ने कृष्ण को गोद में लेकर उनके चारों ओर गाय की पूँछ घुमाकर बालग्रह-दोष दूर किया था। गाय की पूँछ पकड़कर मनुष्य नदियों और नालों को पार करते हैं तथा मरने पर गोपुच्छ पकड़कर नरक की वैतरणी पार करते हैं और सुखमय लोक को जाते हैं। गोमाता के मूत्र में गङ्गा आदि नदियों का निवास है। अतः जिस प्रकार गङ्गा द्वारा मनुष्य पवित्र होते हैं, ठीक उसी प्रकार गोमूत्र से पवित्र हो जाते हैं। गोमूत्र में खुजली नष्ट करने की अद्भुत् शक्ति है। गोमूत्र-प्रयोग करने से चर्मरोग थोड़े ही काल में नष्ट हो जाते हैं। समस्त उदररोग (अजीर्ण, तिल्ली, आँव आदि) और सम्पूर्ण धातु-रोग (धातु-क्षीणता, प्रमेह, मधुमेह आदि) अच्छे करने की अद्भुत शक्ति गोमूत्र में विद्यमान है। गोमूत्र से हृदय-रोग भी नष्ट हो जाता है। गोमूत्र से नेत्ररोग तक दूर हो जाते हैं, नेत्रों की शक्ति बढ़ती है। गोमूत्र-पान करने से दमा का रोग छूट जाता है। आयुर्वेद ने भी प्रसूता स्त्री को गोमूत्र-पान करने की आज्ञा दी है। इसका कारण यही है कि गोमूत्र स्त्री के पेट में जमे हुए सूखे मल को ढीला कर बाहर निकाल देता है और गर्भाशय को शुद्ध कर देता है। गोमूत्र से पञ्चगव्य बनता है, जिससे सारे शरीर का विकार और मल साफ हो जाता है तथा प्रायश्चित्त के समय भी शुद्धि होती है। इस प्रकार गो-माता के गुणों का पूर्ण वर्णन हो सकना असम्भव है।

गोचर-भूमि—

सरकारी रिपोर्ट में गोवंश और महिष-वंश की संख्या कुल १७९४४८६३३ बताई गई है। इस संख्या में यदि घोड़े-घोड़ी की संख्या २१६४२२६ और खच्चरों की संख्या ८०६८६ जोड़ दी जाय, तो कुल १८१६९३५५५ घास पर गुजर करनेवाले पशु माने जा सकते हैं। गोचर भूमि के लिए वर्तमान समय में प्रति पशु साढ़े तीन बीघा जमीन के हिसाब से छोड़ देनी चाहिये। इस हिसाब से ५९ करोड़, ५९लाख, २७ हजार, ४४२ बीघा—अर्थात् ३७ करोड़, २४ लाख, ५४ हजार, ६५१ एकड़—जमीन स्थायी गोचर-भूमि के लिये बहुत ही जरूरी है। इतनी भूमि प्राप्त किये बिना गो-वंश की रक्षा और उसकी वृद्धि अच्छी तरह नहीं हो सकती, अर्थात् भारतवर्ष की एक-तिहाई भूमि गोचारण के लिए सुरक्षित होनी चाहिये। विदेशों में लगभग इसी हिसाब से गोचर-भूमि छोड़ी जाती है।

कुछ विशेषज्ञों का कहना है कि एक गौ के लिए एक बीघा जमीन भी काफी होती है। यह एक बीघा एक गौ के लिए तभी काफी हो सकता है, जब कि उस भूमि में वैज्ञानिक रीति द्वारा चारे उत्पन्न किये जावें। इस हिसाब से भी ११ करोड़, ३३ लाख, ५८ हजार, ४७२ एकड़ जमीन गोचर-भूमि के लिए होनी चाहिये। किन्तु इतनी थोड़ी जमीन को जब तक पाश्चात्य ढंग से गोचर-भूमि के लिये तय्यार नहीं किया जायगा, तब तक इतनी भूमि भारतीय पशुओं के लिए काफी नहीं हो सकती। इसके

अतिरिक्त बिलकुल नपी-तोली जमीन रखने से जब गोवंश की वृद्धि होगी, तो आगे चलकर फिर गोचर-भूमि बढ़ाने के लिये प्रयत्न करने पड़ेंगे। यदि गोवंश की वृद्धि हो, तो वर्तमान पशुओं से तिगुने पशु होंगे। तब वैज्ञानिक रीति द्वारा जमीन तैयार करके प्रति बीघा एक पशु के हिसाब से गोचर भूमि काम में लाई जा सकेगी।

इस समय सारे भारत में ४७००८०३५ गाएँ और एक करोड़ ७५ लाख ६० हजार ७८० भैंसें—कुल ६४५३८८१५ दुधारू पशु हैं। इस हिसाब से ५॥ मनुष्यों के पीछे एक दुधारू पशु आता है। जब इनकी वृद्धि होगी, तो उस समय २२ करोड़, ५९ लाख, ९० हजार, ८५२ दुधारू पशु देश में रह सकेंगे। उस वक्त चार मनुष्यों में ३ दुधारू पशु होंगे। परन्तु यह तभी हो सकेगा, जब कि अभी से प्रति पशु के लिये ३॥ बीघे अर्थात् लगभग २। एकड़ जमीन गोचर-भूमि के रूप में रखी जावेगी। इतनी गोचरभूमि स्थायी रूप से रखकर जब गोरक्षा के उपायों को काम में लाया जायेगा, तब भारतवर्ष पुनः प्राचीनकाल की भाँति सुख, समृद्धि और ऐश्वर्य का भण्डार बन जायगा। 'आईन-ए-अकबरी' में जो पैसे-सेर दूध का भाव लिखा है, वह फिर एक वार सत्य हो जायगा।

चारे या गोखाद्य के लिये अब खेती करने की बहुत जरूरत है। ग्रटब्रिटेन की तृतीयांश भूमि स्थायी गोचर-भूमि है, तथापि वहाँ गोखाद्य की खेती होती है। भारत में भी गौओं के चरने के लिये गोखाद्य पैदा करने की अत्यन्त आवश्यकता है। मटर, सेम,

अरहर, जई, जिनोरा, भुट्टा, बाजरा, धान, सावाँ, दूब, चीना, मूली, गाजर आदि की खेती करके गौओं को नियमित रूप से नित्य खाने के लिये देना चाहिए।

गौएँ हमेशा ताजी और कच्ची घास खाने की इच्छा करती हैं। इसके लिये पश्चिमी देशो मे सदा हरी और कच्ची घास ढोरों को खाने के लिये देते हैं। हरी-हरी घास काटकर गढों में जमा देने से हरा चारा तैयार हो जाता है। गढों में हरी घास भर कर रखी जाती है। गोल गहरा गड्ढा जमीन के अन्दर बनाया जाता है और बाहर भी इसकी बनावट इस प्रकार की होती है कि जिसमें घास पर वर्षा, शीत और ग्रीष्म ऋतु का कुछ भी असर नहीं होता। ऐसी रखी हुई घास तीन साल तक नहीं बिगड़ती। ऐसे चारे को गाएँ बड़े चाव के साथ खाती हैं। इस तरह सदैव उन्हें हरी घास मिलती है। गढ़ा विधि-पूर्वक बनाना चाहिए, अन्यथा उसमें घास अच्छी नहीं रह सकेगी। भारत में भी ऐसी घास गौओं को खाने के लिये दी जानी चाहिये। दस से पचास गौओ तक के लिये १६ फ़ीट गहरा, और १० फीट व्यास का गड्ढा बनाना चाहिये। १०० गौओ के लिये ३२ फीट गहरा और २० फ़ीट व्यास का गड्ढा बनाना चाहिये।

गोचर-भूमि के लिए कानून बनाने की इस समय बड़ी भारी जरूरत है। यद्यपि ऐसी बातों के लिए कानून बनना बड़ी लज्जा-जनक बात है, तथापि ऐसा किए बिना काम बनता दिखाई नहीं देता। गाँव के जमींदारो, नम्बरदारों और काश्तकारों को बाध्य

करके गोचर-भूमि छुड़ानी पड़ेगी। प्रत्येक गौ के लिए कम-से-कम एक बीघा ज़मीन अवश्य छोड़ देनी पड़ेगी। जैसे, किसी गाँव में तीन सौ पशु हैं, तो कम-से-कम ३०० बीघा गोचर-भूमि उस गाँव में अवश्य छूटनी चाहिये। पहले जमींदार लोग गोचर-भूमि का 'कर' लेना पाप समझा करते थे, परन्तु आज-कल के जमींदार ऐसी बातों की परवाह न करके एक-एक इंच भूमि का टैक्स वसूल करते हैं। गोचर-भूमि के अभाव से गाय खूँटे पर ही बँधी हुई अपने नम्बरदार तथा जमींदारों को आशीर्वाद (!) दिया करती हैं।

गोचर-भूमि के प्रबन्ध का कार्य म्युनिसिपल्टियों और जिला-बोर्डों का है। जनता के अभाव-अभियोगों की रक्षा करना इन संस्थाओं का कर्त्तव्य कर्म है। यदि टैक्स का कुछ लोभ त्यागकर ये संस्थाएँ गोचर-भूमि छोड़ दिया करें, तो गो-रक्षा में बहुत-कुछ सहायता मिल सकती है। गोचर-भूमि के इस आवश्यक प्रश्न पर लोकल बोर्ड, डिस्ट्रिक्टबोर्ड आदि संस्थाओं का ध्यान शीघ्र ही जाना जरूरी है।

गोचर-भूमि के सम्बन्ध में लगान की अधिकता भी अत्यन्त बाधक है। भारतवर्ष की जमीन पर इतना अधिक टैक्स लगा हुआ है कि जो गरीब किसानों और जमींदारों के लिए भार बन रहा है। इस विषय में एक अँग्रेज विद्वान का ही कथन है कि—"भारतवर्ष मे लगान इतना अधिक लिया जाता है कि किसान अपनी उन्नति नहीं कर सकते। अच्छी उपज होने पर

भी यहाँ के कृषकों के पास लगान देने के बाद कुछ थोड़ा-सा धन बच जाता है। लगान के अधिक होने ही से देश दिन-दिन दरिद्री होता जा रहा है। लगान की ज्यादती के कारण रैयत कर्ज के बोझ से दबे जा रहे हैं। अन्य देशों से पाँच-छः गुना ज्यादा लगान भारत को देना पड़ रहा है। देखिए—खेत की सौ रुपया वार्षिक आमदनी पर इङ्गलैंड ८।) रु०, इटली ७) रु०, जर्मनी ३) रु०, बेलजियम २।।।) रु०, और भारतवर्ष १५) रु० लगान देता है!"

इस भारी लगान का प्रभाव गोचर-भूमि पर पड़ा है। अर्थात् कृषकों ने लगान की अधिकता के कारण गोचर-भूमि को खेत बना लिया और उसमें खेती करने लगे। इतना भारी टैक्स देकर पशुओं के लिये कोई भी जमीन नहीं छोड़ सकता। फल यह हुआ है कि गोचर-भूमि न रहने पर सहज ही में वध करने के लिये पशु मिलने लगे। किन्तु गोचर-भूमि के लिये अब यह प्रजा का कर्तव्य है कि वह सरकार से इसके लिये अनुरोध करे कि वह पशुओं की संख्या के अनुसार यथेष्ट गोचर-भूमि कम-से-कम लगान पर देवे।

गाय पालना चाहिए या भैंस—

युक्तप्रान्त में किसान गाय की अपेक्षा भैंस को अधिक रखते हैं, इसका क्या कारण है? गोपालन से किसानों की दशा सुधर सकती है अथवा भैंस पालने से? मैं यहाँ पर यह समझाऊँगा कि जब तक प्रत्येक किसान बढ़िया गाय न रखेगा तब तक उसका भला नहीं हो सकता, न उसके बालबच्चे ही नीरोग रह सकते हैं

और न वह बनिया के कर्ज के फन्दे से ही मुक्त हो सकता है, और खेती तो अच्छी हो ही नहीं सकती। यह बात तो स्पष्ट है कि भैंस का दूध १९—२० वर्ष की आयु तक तो लड़कों या लड़कियो को देना ही न चाहिये और छोटे बच्चो को तो भैंस का दूध देना उनके साथ अत्याचार करना है। जो दूध पी सकते हैं वे गाय का दूध पियें। उसके अभाव में बकरी का और कुछ न मिले तो भैंस का। क्यों ? इस लिये कि भैंस का दूध बुद्धिवर्द्धक नहीं होता। वह दिमाग को कुन्द बनाता है और गाय का दूध फुर्ती ही नहीं लाता वरन् बुद्धि को प्रखर बनाता है।

लोगों का खयाल है कि गाय की अपेक्षा भैंस अधिक दूध देती है। यह बिलकुल गलत है। गाय के बराबर भैंस दूध दे ही नहीं सकती। यदि दो सौ रुपये की एक गाय ली जावे और दो सौ रुपये की एक भैंस ली जावे तो दोनों में किसान के लिए गाय अधिक लाभदायक रहेगी। शहरों में तो दूध की बिक्री हो जाती है, पर गाँवों में दूध का लेनेवाला कोई नहीं है, इसलिए किसान लोग दूध का घी बनाते हैं, और करते यह हैं कि बनिया के पास जाकर भस के लिये रुपया लाते हैं और घी "कटऊ" करते हैं। सत्तर-अस्सी रुपयेवाली भैंस पर एक बियान में लगभग एक मन के घी ठहरता है, सो भी उस किसान के साथ जो घी को जमाकर सके। मान लीजिए कि दो सौ रुपयेवाली भैंस एक बियान में ढाई मन घी करती है तो उसका मूल्य वर्तमान दर से लगभग एक सौ पचास रुपये हुआ, और यदि भैंस ने नर-बच्चा दिया तो उसका

मूल्य अधिक से अधिक चालीस रुपये होगा। अर्थात् दो सौ रुपयेवाली भैंस से अधिक से अधिक आमदनी एक बियान में पौने दो सौ या दो सौ रुपया हो सकती है। अब गाय की आमदनी के आँकड़ों पर ध्यान दीजिये। दो सौ रुपये में हरियाना या मौण्टेगोमरी की, बारह सेर दूध देने वाली, पंजाबी गाय मिल सकती है। इस गाय ने यदि बछड़ा दिया और किसान यदि आधा दूध बछड़े को पिला दे और आधा उसका कुटुम्ब पीवे तो दो बरस का बछड़ा एक सौ पचीस रुपये से कम में नहीं बिक सकता। अर्थात् भैंस के घी से जितनी आमदनी हुई थी उतनी गाय के केवल बछड़े से ही हो जावेगी। और एक किसान के लिये छः सेर दूध प्रति दिन मिलने के मानी यह हैं कि वह और उसके बच्चे हृष्ट-पुष्ट रहेंगे, बीमारी उनके पास नहीं फटकेगी और वे जीवन के बहुत कुछ सुख भोग सकेंगे।

पशु-चिकित्सा—

पशुओं के रोगों की दवा प्रायः सब गृहस्थों को जानना चाहिये। किसानों के लिये तो यह बहुत ही जरूरी है। पशु भी किसानों और गृहस्थों की सम्पत्ति हैं, उनकी रक्षा का उपाय जाने बिना बड़ी हानि की सम्भावना रहती है। अतएव यहाँ कुछ प्रचलित और प्रधान पशु-रोगों की चिकित्सा-विधि लिखी जाती है। रोगों की पहचान आदि लिखने का स्थान यहाँ नहीं है। प्रायः अधिकांश लोग रोगों के नाम ही से बहुत परिचित हैं।

(१) "अफरा रोग की दवा"—देशी शराब आध पाव,

काली मिर्च सवा तोला, सोंठ एक छटाँक। सबको कूटकर शराब में मिलाकर पशु को खिलाओ। खिलाने से डकार आवे तो समझो कि पशु अच्छा हुआ। इस दशा में सूखा चारा न देना चाहिये। हरी-हरी घास ही खिलाना चाहिये।

यदि दाना खाने से पेट फूल गया हो, तो खारा नोन एक छटाँक और कड़वा तेल आधा पाव—दोनों मिलाकर पिलाओ, अथवा एक तोला नौसादर पाव भर पानी में पिलाओ; अथवा आध पाव गुड़ और सवा तोला तम्बाकू का पत्ता डेढ़ पाव साफ़ पानी मे पिलाओ।

(२) "बैल के कन्धे की सूजन" पर अलसी (तीसी) का तेल मलना चाहिये। तीन माशे अफ़ीम, एक तोला हल्दी, दोनों को कड़वे तेल में मिला कर लेप लगाना चाहिये।

(३) "शीतळा या चेचक रोग की दवा"—यदि पशु को ज्वर हो और पेट चले तो पानी न देना चाहिये, बल्कि चावल का माँड़ अथवा खली पतली-पतली घोलकर पिलाना चाहिये। गरम पानी में कड़वा तेल डालकर दिन भर में एक-दो बार तब तक पिचकारी लगाओ, जब तक आँतें ढीली न हों। यदि रात से दिन में विशेष दस्त आवें तो खरिया मिट्टी पौने चार तोळा, ढाक को गोंद नौ माशे, अफ़ीम साढ़े चार माशे, चिरायता सवा तोला—सबको पीसकर मैदा के बराबर महीन कर लो, फिर इनमें एक छटाँक देशी शराब मिलाओ, और एक सेर चावल के माँड़ में सबको मिलाकर एक तोला नमक भी मिलाओ, तब पशु को

खिलाओ। जब शरीर पर दाना निकल आवे तब समझो कि पशु मौत से बच गया। यदि अत्यन्त अधिक दाने निकल आवें और आँव के साथ बदबूदार पाखाना तथा खून जारी हो जाय, तो समझो कि लक्षण अच्छे नहीं हैं—कुछ अनिष्ट होगा। यदि पेट या गला फूल आवे, तो बिलकुल भरोसा न करो। यों तो ईश्वर की जैसी इच्छा!

हाँ, चेचकवाले पशु को अन्य पशुओं से अलग सूखे घर में रखना चाहिये, जिसमें शुद्ध वायु का प्रवेश हो। चेचकवाले पशु का मूत्र और गोबर कभी बाहर न फेंकना, जमीन के अन्दर गाड़ देना चाहिये। उसके घर में कच्ची लकड़ी की आग मे गन्धक जलाना जरूरी है। खाने के लिये चावल का माँड़, पानी में घोल-कर जौ का सत्तू, नरम-नरम पत्ता या थोड़ी ताज़ी मुलायम घास देनी चाहिये। चारे के साथ कुछ अधिक नमक मिलाकर देना और भी अच्छा होता है। चावल का माँड़ एक सेर हो तो आध सेर तक नमक देना चाहिये। इस खाद्य से अगर एक घंटे में पाखाना न उतरे तो एक पाव पानी में एक ही पाव रेंडी का तेल मिलाकर पाखाने की राह से पिचकारी देनी चाहिये। एक पाव काला नमक, आध पाव सनाय की पत्ती और आध छटाँक सोंठ का चूर्ण यदि एक सेर चावल के गरम माँड़ के साथ खिलाया जाय, तो दस्त साफ़ होने से पेट शुद्ध होगा और चेचक-रोग ठंढा पड़ने लगेगा। तारपीन का तेल आध छटाँक, रेंड़ी का तेल एक छटाँक, हींग एक पैसा-भर, साबुन का गरम पानी दो सेर—इन

सबको मिलाकर पिचकारी देने से भी दस्त खुलासा और पेट साफ़ होता है।

यदि पशु का गला फूल उठे, तो यह दवा लगावे—जमालगोटा का बीज एक छटाँक और तारपीन का तेल एक पाव, दोनों एक ही साथ मिलाकर एक बोतल में भरकर १४—१५ दिन तक रख देना चाहिये; फिर उसको छानकर उसमें उतना ही नारियल या अलसी का तेल मिलाकर गले में मालिश करना चाहिये। यह दवा प्रत्येक किसान गृहस्थ को अपने घर में पहले ही से तैयार करके रखना चाहिये।

जब शीतला का दाना फूटकर पीव निकलने लगे, तब धेला भर फिटकरी, एक पैसा-भर कोयले का चूर्ण और एक छटाँक खरिया मिट्टी, तीनों मिलाकर इस प्रकार लगावे कि घाव का मुँह बन्द हो जाय। इसके सिवा, फिटकरी और कसीस को आग में जलाकर और गोंद का चूर्ण, तीनों बराबर-बराबर, एक में मिलाकर घावों पर लगाना चाहिये।

(४) "सूखी खाँसी या धसका रोग की दवा"—नरम-नरम हरी-हरी घास खिलाओ, खूब शुद्ध और स्वच्छ जल पिलाओ, चावल का माँड़ भी दो; भुस और सूखी घास मत खिलाओ। शोरा ९ माशे, कपूर ९ माशे, धतूरे का बीज ४॥ माशे, शराब आधी छटाँक, सबको मिलाकर खिलाओ।

(५) "बदहजमी या अजीर्ण की दवा"—यदि पेट फूल गया हो तो पीड़ा के कुछ कम होने पर थोड़ी-थोड़ी कच्ची और ताज़ी

घास खाने के लिये देना चाहिये। पिसी हुई लाल मिर्च आधा तोला, अदरख एक छटाँक, हींग एक तोला—तीन-तीन घंटे के बाद गरम पानी के साथ खिलाने से फूला हुआ पेट ठीक हो जायगा।

यदि सिर्फ बदहज़मी हो, तो आध-पाव शराब, पिसी हुई भंग सवा तोला, काली मिर्च का चूर्ण सवा तोला, एक छटाँक जीरा का चूर्ण, डेढ़ छटाँक गुड़—सबको एक सेर गरम पानी के साथ मिलाकर तीन-तीन घंटे के बाद खिलाना चाहिये।

(६) "खुराहा और जीभी की दवा"—खुर और मुँह के पकने पर अधिकतर देहातों में बहुत-से पशु बेमौत मर जाते हैं। इस बीमारी में पशु को शुद्ध स्थान या मकान में रखना चाहिये, जिसकी जमीन सूखी हो और जो पूरा हवादार भी हो। सवा तोला फिटकरी को पानी में मिलाकर गरम कर लो और दिन में कई बार पशु के मुँह और पैर में उसका पुचाड़ा दो। अगर घाव हो गये हों, तो यह मलहम लगाओ—चार तोला कड़वा तेल, एक तोला कपूर, तीन माशे तारपीन का तेल, एक तोला गन्धक—इस मलहम से न मक्खी लगेगी और न कीड़े पड़ेंगे।

अगर जखम के साथ-साथ बुखार भी हो तो एक तोला शोरा, नौ माशे कपूर और आधी छटाँक शराब मिलाकर पशु को खिला दो, नमक लगाकर माँड पिलाओ और हरी-हरी नरम घास खिलाओ। अगर खुरों से खून जारी हो, तो खुरों को अलसी के तेल से खूब तर करो और कोयले को सुरमे की तरह

खूब बारीक पीसकर खुरों में भर दो। अगर उनमें कीड़े पड़ गये हों तो तुलसी के पत्ते कूटकर खुरों में भर दो।

पके मुँह और पैर के घावों को धोने के लिये एक पाव नीम की पत्ती को दो सेर साफ़ पानी में औंटकर ठण्ढा कर ले। अथवा, एक छटाँक तूतिया का चूर्ण और एक ही छटाँक फिटकरी लेकर दो सेर पानी में औंटे। इसी तरह के पानी से घाव को धोकर कोई अच्छा मलहम लगावे। एक दो तरह के मलहमों के नुस्खे फिर यहाँ लिखे जाते हैं—आध पाव अलसी का तेल और आध पाव मोम आग की मीठी आँच पर पिघलाओ, उसमें छः आने-भर तूतिया का चूर्ण और तारपीन का तेल डाल दो, फिर जबतक ठंढा न हो तबतक हिलाते रहो; इसके बाद मलहम को काम में लाओ। दूसरा मलहम—एक छटाँक तूतिया और आध पाव पत्थर का कोयला अलग-अलग कूटो। जब खूब मिहीन पिस जाय तब फिर दोनों को एक साथ मिलाकर घोटो। इसके बाद आध पाव सुरती को अन्दाज-भर पानी में घोलकर धूप में गरम कर लो, तब वह घोंटा हुआ मिश्रित चूर्ण उसमें मिलाओ; और सबके बाद एक पाव या आवश्यकतानुसार सरसों का तेल (कड़वा तेल) मिलाकर मलहम तैयार कर लो।

अगर जखम में तेल लगाने की जरूरत हो तो ऐसा तेल बनाकर लगाना अधिक लाभदायक होगा—एक हिस्सा तूतिया, एक ही हिस्सा कपूर, चौथाई हिस्सा तारपीन का तेल, चार हिस्सा

अलसी का तेल। सबको अच्छी तरह मिलाकर दो दफे लगाने से बहुत फायदा होगा।

(७) "मोच या चोट की दवा"—नौसादर और शोरा बराबर-बराबर लेकर दो सेर पानी में मिला लो और चोट या मोचवाले स्थान पर लगातार पुचाड़ा दो। अथवा, आध छटाँक नमक और आध छटाँक नौसादर को डेढ़ पाव पानी में मिलाओ, फिर उसमें साफ कपड़ा भिगोकर मोच की जगह पर बाँधो। जब दर्द कम हो जाय, तो एक छटाँक तारपीन का तेल और पाव-भर अलसी का तेल एक साथ मिलाकर चोट या दर्द की जगह मालिश करो।

(८) "टूटे हुए सींग के घाव की दवा"—कपड़े में तार का तेल (अलकतरा) लगाकर टूटे सींग में लपेट देना चाहिये। अगर घाव में कीड़े बढ़ने लगें, तो पशु को खूब प्याज खिलाना चाहिये।

(९) "प्रसव के समय का उपचार"—यदि गाय या भैंस के प्रसव (बछड़ा जनने) के समय दर्द बहुत देर तक रहे और शीघ्र प्रसव न हो, तो थोड़ा चावल का गरम-गरम माँड़ पिलाना चाहिये। प्रसव में अधिक विलम्ब होने पर आध सेर नमक और आध तोला पिसी हुई अदरख गरम माँड़ के साथ पिला देने से अधिक-से-अधिक बारह घंटे में अवश्य ही प्रसव हो जाता है। यदि प्रसव का स्थान फूल जाय तो साफ कपड़े को आग की मधुर आँच पर गरम करके सेंकना चाहिये। ऐसा उपाय करना

चाहिये कि उसपर मक्खी न बैठे, नहीं तो कीड़े पैदा हो जायँगे। प्रसव के बाद तीन रोज तक ठंढा जल या कोई ठंढी चीज न खिलानी चाहिये। प्रसव से पहले जितनी रक्षा और सेवा की ज़रूरत होती है, उससे कहीं अधिक सेवा और रक्षा की आवश्यकता प्रसव के बाद होती है। स्वच्छ स्थान, शुद्ध जल, खुली हवा, सर्दी से बचाव, पुष्टिकर गरम भोजन, बछड़े की देखभाल आदि इन्हीं उपायों से गाय-भैंस की तन्दुरुस्ती बच सकती है और गृहस्थ को उनसे अधिक बछड़े तथा दूध-घी की प्राप्ति हो सकती है।

(१०) "घोड़े की खाँसी (ज़ुकाम) को दवा"—अदरख के एक छोटे-से टुकड़े में एक या दो चने के आकार के बराबर हींग भरकर आग में भून लो। फिर जौ के पिसान से गेंद के बराबर एक गोली बनाओ। उसीमें वह भूनी हुई चीज़ लाकर छोड़ दो। दाना खाने के बाद वही गोली लगभग तीन-चार दिन लगातार शाम को खिलाओ। यदि घोड़ा बड़ा हो तो दिन में दो बार एक बादाम की गुद्दी खिलाओ। छोटे घोड़े को एक बादाम की आधी गुद्दी चार-पाँच दिन तक दो। यदि इतने पर भी अच्छा न हो, तो आध सेर प्याज, पाव भर घी, मस्तक-बकरा एक—तीनों को कूटकर ढाई सेर पानी के साथ मन्द-मन्द आग पर चढ़ा दो और मधुर आँच से १२ घंटे तक चुरने दो; जब पानी आध सेर बच रहे तो उतारकर अन्दाज़ से थोड़ा नमक छोड़ दो और दाना खिलाने के बाद पिला दो; अगर पिलाने

में दिक्कत हो तो बेसन में मिलाकर उसकी रोटी खिला दो, लेकिन फिर उस दिन जल न पिलाओ। रोगावस्था में घोड़े को पानी पिलाने के बाद एक प्याज खिला देना चाहिये, और तब फिर बाँस की हरी पत्तियाँ।

(११) "घोड़े के अन्य रोगों की दवा"—अगर पेशाब बन्द हो गया हो, तो एक सेर पानी में थोड़ी-सी इमली घोलकर पिला दो, अथवा खीरा या ककड़ी के बीज बराबर-बराबर लेकर थोड़े से पानी में पीसकर पिला दो। अगर दस्त बन्द हो, तो तीन छटाँक गुड़, १० रत्ती हींग, एक छटाँक सौंफ, आध छटाँक अजवाइन, आध छटाँक सोहागा और एक छटाँक नमक—सबको मिलाकर तीन गोलियाँ बनालो और फी घंटा एक-एक करके तब तक दो जब तक दस्त न हो। अगर उसकी थकावट दूर करनी हो, तो एक छटाँक भाँग, आध छटाँक पिसी हुई हल्दी, टुकड़ा-भर फिटकरी, एक पाव गुड़—सबको मिलाकर गोला बना लो और उसे खिला दो।

इस प्रकार अनेक पशुओं के अनेक रोग और उनके अनेक उपचार आदि हैं। यहाँ सबका विस्तृत वर्णन नहीं हो सकता। कामचलाऊ बातें दे दी गई हैं। बहुत-सी बातें देहातवाले जानते भी हैं। इस विषय की पुस्तकें गृहस्थों के घर में रहनी चाहियें। पशु-चिकित्सा जाने बिना पशु-पालन हो ही नहीं सकता। और, पशु-पालन में प्रवीण हुए बिना कोई गृहस्थ या किसान कभी किसी तरह सुखी नहीं हो सकता।

गोरक्षिणी संस्थाओं का सदुपयोग—

ऐसे कितने हिन्दू-परिवार हैं जिनमें गाय मौजूद रहती है तथा जो उसे खिला-पिलाकर सच्चे अर्थ में अपने को 'गोपाल' चरितार्थ करते हैं? न्यूजीलैण्ड आदि देशों में गोवंश-वृद्धि पर अधिक ध्यान दिया जाता है। आपको वहाँ बीस-बीस सेर दूध देनेवाली सैकड़ों-सहस्रों गायें मिलेंगी। उनके रहने के स्थान ऐसे उत्तम होते हैं कि भारत में बहुत-से अमीर लोग भी वैसे मकानों में नहीं रहते। उनके पास आपको मल-मूत्र का चिन्ह भी दिखाई न देगा। वे नित्य-प्रति नहलाई जाती हैं। उनकी स्वास्थ्य रक्षा पर पूरा ध्यान दिया जाता है। गोरक्षा केवल परोपकार-वृत्ति ही नहीं, उससे स्वार्थ-सिद्धि भी खूब होती है। साधारण-सी बात है कि यदि प्रत्येक हिन्दू-परिवार में कम-से-कम एक गाय रहने लगे तो कई करोड़ गायें कटने से बच सकती हैं। जिन इने-गिने परिवारों में गाय रखने का रिवाज है उनमें एक और बुरा ढंग प्रचलित है। जब दूध देते-देते गाय बूढ़ी हो जाती है, और किसी काबिल नहीं रहती, तो उसे पुरोहित के हवाले किया जाता है। 'पुरोहितजी' भी क्या किसी से कम गो-भक्त हैं? वे तुरन्त इस 'आदर्श गोदान' के लिए हाथ पसार देते और गाय को चट कसाई के हाथ बेंच देते हैं!!! गोशालाओं की प्रणाली तो बड़ी ही विचित्र है। लोग समझते हैं कि कुछ गायों को एक बेढंगे बाड़े में बन्द कर उनके आगे सूखा-रूखा चारा डाल देना ही गो-रक्षा है। कितने ही स्वार्थियों ने तो गोशालाओं को अपनी उदरपूर्ति का साधन बना रखा है।

रेलों और मेलों में कितने ही धूर्त 'गो-सेवक' पैसों से भरी हुई गोलकें खनखना कर गोरक्षा के नाम पर ठगते फिरते हैं। यदि गोशालाएँ तिजारती ढंग से चलाई जायें तो उनसे बड़ा लाभ हो सकता है। वे अपना खर्च आप निकाल सकती हैं और इस प्रकार हम बड़ी आसानी से गोरक्षा करने में समर्थ हो सकते हैं। शहरों में शुद्ध दूध-दही या घृत कहाँ मिलता है ? यदि गोशालाएँ इस कमी को पूरा करना अपना लक्ष्य बना लें, तो 'एक पन्थ दो काज' की कहावत चरितार्थ हो सकती है। अर्थात् गोरक्षा भी हो जाय और जनता को शुद्ध और सस्ता घी-दूध भी मिलने लगे।

हर्ष का विषय है कि गो-रक्षिणी संस्थाओं की ओर हमारे हिन्दू-समाज का ध्यान विशिष्ट रूप से आकृष्ट हो रहा है। कतिपय विजातीय पुरुष भी हमारे इस धर्म-रक्षा के कार्य में समय-समय पर सहायता प्रदान करने लग गये हैं। पर गो-रक्षिणी संस्थाओं की ओट में कतिपय धूर्त और वंचक व्यक्ति भोली-भाली जनता को धोखे में डालकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने से बाज नहीं आते। इन धूर्त और स्वार्थी वंचकों से समाज की रक्षा करना चाहिए। सार्वजनिक संस्थाओं की संख्यावृद्धि उत्तरोत्तर होती चली जा रही है। पर उदार दाताओं की तादाद परिमित है। यह देश का दुर्भाग्य है कि यहाँ के जनसाधारण की आर्थिक स्थिति सन्तोषजनक नहीं है। परमात्मा ने जिनकी स्थिति सराहने योग्य की है, उनके ऊपर भी नई-नई संस्थाओं के नित्य नये-नये भार पड़ते जाते हैं। ऐसी अवस्था में इन ग्रन्थियों को सुलझाने का

एक ही सरल साधन है। गोरक्षिणी संस्थायें, जो आकाशवृत्तियों के बल पर चलाई जा रही हैं, यदि व्यावसायिक बुद्धि द्वारा चलाई जायँ तो देश और समाज का कहीं अधिक उपकार हो। पाश्चात्य देशवालों ने इसके महत्व को समझ लिया है। भारतवासी भी इस प्रणाली को समझने लग गये हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि सभी गोरक्षिणी सस्थायें गोरसशाला (डेयरी फार्म्स) के ढङ्ग पर चलाई जायँ। शुद्ध दुग्ध के अभाव में, कहने की आवश्यकता नहीं, इन संस्थाओं द्वारा पर्याप्त आय होगी। साथ ही साथ पंगु और असमर्थ गौओं का भरण-पोषण, उसकी बचत की रकम से, सहज ही किया जा सकता है। शहर वालो में शुद्ध दुग्ध का वितरण कर उनकी सहानुभूति प्राप्त करने के साथ-साथ इससे मानवसमाज का भी बहुत उपकार होगा।

कुछ जानने योग्य फुटकर बातें—

(१) हमारे हिन्दू-समाज में एक बहुत अच्छी प्राचीन प्रथा है। भोजन-सामग्री में से गो-ग्रास निकालने की रीति आज तक अनेक हिन्दू-घरो में बरती जाती है। रोटी, दाल, भात, साग, पूआ, पूरी, लड्डू, रबड़ी, मलाई, चाहे जो चीज़ खाने के लिये थाली में परसी जाय; सब मे से थोड़ा-थोड़ा अश गोमाता के लिये शुद्ध बरतन में निकाल देना चाहिये। यदि घर में गो हो, तो उसको उसी समय खिला देना उचित है; नहीं तो पड़ोस की गो को खिलाना चाहिये। गाय का पुत्र बैल ही खेतों और बाग-बगीचों को जोत-सींचकर आबाद करता है। अन्न और साग-भाजी तथा फल-फूल के उत्पन्न

करने में सबसे अधिक परिश्रम बैल ही करता है। बैलगाड़ियों पर रसद ढो-ढोकर दूर-दूर तक पहुँचाता भी वही है। इसलिये सब चीज़ों में उसका हिस्सा मिलना जरूरी है। यदि गाँव-गाँव और नगर-नगर में घर घर गो-ग्रास निकालने की चाल चल पड़े, तो देश और समाज में सुख-समृद्धि का बोलबाला हो जाय। गाँवों, शहरों और कस्बों में प्रायः देखा जाता है कि गाय और साँड़ गली कूचे और गड्ढे में तथा घूरे पर सड़े-गले चीथड़े और गन्दे लत्ते तथा कूड़ा-कचरा आदि खाते फिरते हैं। यदि घर-घर में गो-ग्रास निकालने की प्रथा जारी हो जायगी, तो यह दृश्य दुर्लभ हो जायगा।

(२) गाँवों में और कहीं-कहीं शहरों में भी गायों और बैलों को रसोई के जूठे बरतनों का धोवन तथा थालियों से बटोरा हुआ जूठन दिया जाता है। कहीं-कहीं तो कई दिनों का एकत्र किया हुआ जूठन कुछ-कुछ सड़ भी जाता है, उसमें से दुर्गन्ध आने लगती है। भला वैसे भोजन से पशुओं में रोग न फैलेगा तो और क्या होगा? सड़े जूठन खानेवाली गाय के दूध में क्यों नहीं विविध दोष उत्पन्न होंगे? गाय-बैल को घर-भर का गन्दा जूठा खिलाना भी हिन्दू-धर्म की दृष्टि से अपराध ही है। उचित तो यह है कि सब लोग ऐसी सावधानी और समझदारी के साथ भोजन करें कि थाली में व्यर्थ जूठन छूटने ही न पावे, और अगर कोई जूठन छोड़े भी, तो वह इतनी सफाई से छोड़े कि थाली देखने से घिन न पैदा हो और वह जूठन बड़ी सफाई के साथ सम्हाल-

कर किसी साफ बरतन में अलग रख दिया जाय; फिर उसे कुत्ते-बिल्ली को खिला दिया जाय; क्योंकि किसान गृहस्थों के लिये एक-एक कुत्ता भी पालना बहुत जरूरी है, जो घर और गोशाला तथा खेत-खलिहान की रखवाली कर सके। जिस बरतन या नाँद में जूठन-धोवन रक्खा जाता है, उसको भी नित्य खूब खँगालना चाहिये; क्योंकि बिना माँजे-धोये वह बरतन दुर्गन्ध और मच्छर का भण्डार बन जायगा, जिससे हवा बिगड़कर बीमारी फैलावेगी। यों तो रोज घास-भुस और सानी-खली खिलानेवाली नाँद को भी धोना चाहिये, नहीं तो पशु रोगी होकर चिन्ता बढ़ावेगा।

(३) प्रायः यह देखने में आता है कि लोग पशुओं को मारते भी बहुत हैं। हलवाहे, चरवाहे, गाड़ीवान और मोट या रहँट चलानेवाले लोग बुरी तरह पशुओं को मारते हैं। मारने का नतीजा यह होता है कि जो कुछ खिलाया-पिलाया जाता है और उससे जो रक्त बनता है, वह सूखता चला जाता है। यदि पशु को खूब खिलाया जाय और आवश्यक विश्राम दे-देकर उचित मात्रा में काम लिया जाय, तो कभी मारने की जरूरत नहीं पड़ेगी। पशुओं को लोग पूरा खाना भी नहीं देते और उनकी शक्ति से बाहर कसकर काम भी लेते हैं, इसीलिये उन बेचारों में थकावट और सुस्ती आ जाती है जिससे उन्हे लाचार होकर मार खानी पड़ती है। असल में मार खाने के पात्र वे ही हैं जो मारते हैं या पशु को पालते हैं। पशु बेचारा निर्दोष है। भरपूर भोजन और आवश्यक विश्राम के बिना कोई प्राणी जी-तोड़ मेहनत नहीं कर

सकता। पशुओं के विषय में भी यही बात लागू है। दुर्बल पशु को जो मारता और सताता है तथा थके हुए पशु से जो जबरदस्ती काम लेता है, वह निर्धन और दरिद्र तो होता ही है, ईश्वर के दरबार मे भी दण्ड-भागी बनता है; क्योंकि मूक प्राणियों पर अत्याचार करनेवाला व्यक्ति सबसे बड़ा पापी कहा जाता है।

(४) कार्त्तिक की गोपाष्टमी के अवसर पर गो-पालन और गो-पूजन से सम्बन्ध रखनेवाले शुभ कार्यों को उत्साह तथा श्रद्धा से करना चाहिये। गोशालाओं की सफाई, पुताई, मरम्मत आदि। गौओ को सजाना-सिंगारना, सींगों में तेल लगाना, गले में हल्दी का रंग लगाकर घण्टियाँ और घुँघरू बाँधना इत्यादि। गौओं को बढ़िया-बढ़िया चीजें—पकवान, मिठाई आदि खिलाना। गाँव-भर के गौओं का जलूस निकालना। गो-रक्षिणी संस्थाओं के लिये चारा, अन्न और द्रव्य संग्रह करना। भगवान् श्रीकृष्ण की गो-सेवा की कथा कहना-सुनना। बूढ़े, लँगड़े-लूले, अन्धे, लाचार और कमजोर पशुओं को गोरक्षिणी संस्थाओं में भेजना। साँड़ों की रक्षा का प्रबन्ध करना। गोरक्षा पर व्याख्यान देना दिलाना और गोभक्ति का प्रचार करना। यही सब काम दीवाली से गोपाष्टमी तक एक सप्ताह-भर होना चाहिये। गाँव-गाँव में इसकी व्यवस्था करनी चाहिये। शहरों में भी सब लोगों को स्थानीय गोरक्षिणी संस्था के उत्सव में सम्मिलित होना चाहिये। पशुओं ने अपनी सेवा का जो ऋण हम मनुष्यों पर लाद दिया है, उससे छुटकारा पाने का यही समय साल-भर में एक बार आता

है, इसका उपयोग सब लोगों को अवश्य करना चाहिये।

(५) हिन्दी के प्रसिद्ध कवि "नरहरि" का निम्नलिखित छप्पय एक ऐसी चीज है, जिसका प्रचार मुसलमान भाइयों में करना चाहिये। इसी छप्पय के प्रभाव से दिल्ली के बादशाह अकबर ने अपने राज्य-भर में गोवध वन्द करा दिया था। इस छप्पय को कण्ठस्थ करके प्रत्येक हिन्दू प्रत्येक मुसलमान को सप्रेम सुनावे। जिस तरह गोसाईं तुलसीदास के दोहे-चौपाई प्रायः देहातों में लोग बात-चीत के समय कहा करते हैं, उसी तरह हिन्दू जब अपने मुसलमान पड़ोसी से बातें करें, तो उसी प्रसंग में यह छप्पय सुनावें और ऐतिहासिक चर्चा भी कर दें कि इसका क्या प्रभाव पड़ा था। छप्पय का अर्थ सरल है, उसे भी समझा देना चाहिये—

अरिहुँ दन्त तृन धरैं, ताहि मारत न सवल कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, वच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं, कटुक तुरुकहिं न पियावहिं॥
कह कवि 'नरहरि' अकवर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

नवाँ अध्याय

ग्राम-सुधार

गाँव की थोड़ी हैं चाहें।
सब सीधी सब खुली हुई हैं जानी हैं सब राहें॥
तन भर कपड़ा अन्न पेट भर रहने भर को घर हो।
खेत जोतने भर को होवे कम से कम दो हर हो॥
कोख की भरी-पूरी घरनी होवे दुख-सुख-संगी।
हों कुछ फल के पेड़, न होवे दूध-दही की तंगी॥
कौन गाँववालों-सा तो है सुखी और बड़भागी।
उसे राज की क्या परवा मिल सके जिसे मुँहमाँगी॥

हमारे देश के गाँवों की दशा अत्यन्त शोचनीय है। सात लाख गाँवों में अगर सात सौ गाँव सुधरे हुए मिल ही गये, तो इससे क्या? गाँवों का बहुत बड़ा समूह आज तक अज्ञानता और दरिद्रता के अंधकार में पड़ा हुआ है। कहीं कहीं ग्राम-सुधार के लिये प्रशंसनीय प्रयत्न किये गये हैं। पर उसी तरह सब गाँवों में सुधार का काम होना चाहिये। कवि लोग तो गाँवों की तस्वीर खींचने में कमाल कर देते हैं; पर वास्तव में तस्वीर का दूसरा रुख भी है। कवियों की कल्पना द्वारा बनाये हुए गाँवों से यदि आप वास्तविक गाँवों का मिलान करेंगे, तो मेरी समझ से आपको बहुत अन्तर मालूम होगा। नमूने के तौर पर एक कवि की उक्ति सुनिये—

अहा ! ग्राम्यजीवन भी क्या है, क्यों न इसे सबका मन चाहे ?
थोड़े में निर्वाह यहाँ है, ऐसी सुविधा कहाँ है ? ॥ १ ॥
यहाँ शहर की बात नहीं है, अपनी-अपनी घात नहीं है।
आडम्बर का नाम नहीं है, अनाचार का काम नहीं है ॥ २ ॥
वह अदालती रोग नहीं है, अभियोगों का योग नहीं है।
मरे फौजदारी की नानी, दीवाना करती दीवानी ॥ ३ ॥
यहाँ गँठकटे चोर नहीं हैं, तरह-तरह के शोर नहीं हैं।
गुण्डों को न यहाँ बन आती, इज्जत नहीं किसीकी जाती ॥ ४ ॥
सीधे-सादे भोले-भाले, हैं ग्रामीण मनुष्य निराले।
यद्यपि वे काले हैं तन से, पर अति ही उज्ज्वल हैं मन से ॥ ५ ॥
सब कामों में हिस्से लेकर, पति को अति सहायता देकर।
प्राणों से भी अधिक प्यारियाँ, हैं अर्द्धांगी ठीक नारियाँ ॥ ६ ॥
गुदने गुदे हुए हैं तन में, भरी सरलता है चितवन में।
थोड़े-से गहने पहने हैं, क्या सब आपस में बहनें हैं ? ॥ ७ ॥
बात-बात में अड़नेवाली, गहनों के हित लड़नेवाली।
दिखलानेवाली दुर्गतियाँ, हैं न यहाँ ऐसी श्रीमतियाँ ॥ ८ ॥
छोटे-से मिट्टी के घर हैं, लिपे-पुते हैं स्वच्छ सुघर हैं।
गो-पद-चिह्नित आँगन-तट हैं, रक्खे एक ओर जल-घट हैं ॥ ९ ॥
खपरैलों पर बेलें छाईं, फूली, फली, हरी, मन भाईं।
काशीफल कूष्माण्ड कहीं हैं, कहीं लौकियाँ लटक रही हैं ॥१०॥
है जैसा गुण यहाँ हवा में, प्राप्त नहीं डाक्टरी दवा में।
सन्ध्या समय गाँव के बाहर, होता नन्दन-विपिन निछावर ॥११॥

श्रम-सहिष्णु सब जन होते हैं, आलस में न पड़े सोते हैं।
दिन दिन भर खेतों में रहकर, करते रहते काम निरन्तर ॥१२॥
अतिथि कहीं जब आ जाता है, वह आतिथ्य यहाँ पाता है।
ठहराया जाता है ऐसे, कोई सम्बन्धी हो जैसे ॥१३॥
जगती कहीं ज्ञान की जोती, शिक्षा की यदि कमी न होती।
तो ये ग्राम स्वर्ग बन जाते, पूर्ण शान्ति-रस में सन जाते ॥१४॥

इतना ही नहीं, अगर आप गाँवों की बड़ाई का बखान सुनना चाहें तो और भी सुन सकते हैं, मगर गाँवों की तारीफ का जो पुल बाँधा है, उसपर से आप चुपचाप उस पार न निकल जाइये, बल्कि उसपर चढ़कर उसकी दृढ़ता की परीक्षा कीजिये, जिस प्रकार हनुमानजी ने अर्जुन के बाणों के पुल की परीक्षा की थी। विश्वास है, हनुमानजी की तरह आप भी आजमाइश करते समय इस तारीफ के पुल को लचीला पावेंगे। फिर आप कवि के इन शब्दों पर ध्यान दीजिये, और गाँवों की वर्त्तमान दशा का स्मरण कीजिये। निश्चय ही आपको भेद मालूम हो जायगा। देखिए—

गाँव में नहीं बनावट होती।
वहाँ सीप है सीप और कोई मोती है मोती॥
सूझ वहाँ की जान-बूझकर नहीं सादगी खोती।
किसीके लिए बात-बात में आग नहीं है बोती॥
सदा मनों के मैलेपन को भलमंसी है धोती।
वहाँ सगा है एक एक का सब सबका है गोती॥ १ ॥

गाँव वाले हैं सीधे-सादे ।
सीधी हैं सब उनकी बातें सीधे हैं सब वादे ॥
नहीं बखेड़े दुनिया के वे सिर पर फिरते लादे ।
थोड़े में सब कुछ करते हैं सहते नहीं तगादे ॥
तुरत सुलझ जाते हैं उलझे अगर उन्हें सुलझा दे ।
दाग लगावे क्यों अपने को कोई उन्हें दगा दे ॥१॥

❀ ❀ ❀ ❀

वह हवा गाँवों में है बहती ।
जिसमें अंधाधुंध धाँधली धूल नहीं रहती ॥
मुँह के मीठे मन के मैले वहाँ नहीं होते ।
लोग लाग में आकर घर-घर आग नहीं बोते ॥
हँसकर नहीं लूटते छिपकर छुरी नहीं हनते ।
कायर होते भी बातों से वीर नहीं बनते ॥
जग में गुन-औगुन है, औगुन कहाँ नहीं होता ।
जल रहते भी ताल ताल है सोता है सोता ॥२॥

क्या सचमुच हमारे गाँव ऐसे ही होते हैं ? शायद सौ या हजार में एक कोई ऐसा हो तो हो, मगर अधिकांश की दशा तो इसके विपरीत ही है। इस समय गाँवों में इतने दोष आ गये हैं कि उनका निवारण करना—उन्हें दूर करने का निरन्तर प्रयत्न करना—हमारा सबसे पहला कर्त्तव्य है। गाँवों की समस्या पर बड़े-बड़े विद्वानों ने जो विचार प्रकट किये हैं और उनके सुधार तथा संघटन के जो अनेक उपाय बताये हैं, उन्हीं के आधार पर

हम यहाँ चुनी-चुनाई आवश्यक बातें बताना चाहते हैं। आशा है, इन बातों पर ध्यान देने और इनके अनुसार कार्य करते जाने से अवश्य ही गाँवों की दशा उन्नत होगी। और, यह सर्वथा निश्चित सिद्धान्त है कि जब तक हमारे गाँवों का सुधार नहीं होता तब तक हमारे देश की दशा कदापि नहीं सुधर सकती। अतएव जो देशहितैषी हैं, उनका प्रधान कर्त्तव्य यह है कि वे गाँवों की ओर विशेष ध्यान दें।

असली हालत का खुलासा—

ग्राम-वासियों के जीवन में अनेक प्रकार की त्रुटियाँ हैं। उनमें सामाजिक दोष हैं, उनमें स्वास्थ्य-सम्बन्धी अल्प ज्ञान है, वे आर्थिक दृष्टि से संसार के दरिद्र-नारायणों में सर्वोच्च स्थान प्राप्त कर रहे हैं, वे अशिक्षित हैं। सिवा इसके उनमें एक अनभिज्ञता या कमी और भी है जिससे उनका दुःखमय जीवन और भी घृणित है—वह है उनका अपने अधिकारों का समुचित ज्ञान। उनके अधिकारों से हमारा तात्पर्य यहाँ उनके साधारण अधिकार और राजनीतिक अधिकार दोनों से है।

उनके अशिक्षित होने के कारण से साधारण कानून की बातें उन्हें नहीं मालूम हैं। इसका परिणाम यह होता है कि साधारण से साधारण अधिकारी—चौकीदार, लगान के चपरासी, पटवारी, मुखिया, पुलिस के सिपाही, कचहरी के छोटे-मोटे अहलकार, जमींदार—उनके ऊपर मनमाना अत्याचार करते हैं।

मालगुजारी वसूल करने का समय आया नहीं कि जमींदारों

के पेट-भोजी नौकर, जो ३) मासिक पर इन्हीं दिनों के लिए नौकरी पर रखे जाते हैं, लगान वसूल करने चलते हैं। ये सचमुच यम-दूत के रूप होते हैं। यमदूत तो सर्वदा के लिये इस दुःखमय संसार से छुटकारा दे देते हैं; पर ये यमदूत बड़े भयङ्कर होते हैं। दया इनमें छू तक नहीं जाती।

घी-दूध समय पड़ने पर इन किसानों से बाजार-भाव से कम मूल्य पर लिया जाता है! यदि बाजार में घी का भाव दस छटाँक है, तो जमींदार साहब सेर-भर से कम न लेंगे। यह किस अधिकार से?

इसके सिवा जमींदार लोग, पटवारी, सिपाही उनसे कुछ वार्षिक वसूल करते हैं। यह रकम भेंट के रूप में ली जाती है। चौकीदार की भेंट अलग, भइयाजी (पटवारी) को भेंट अलग ..... !

इस प्रकार ग्रामवासी लोग जब घर के अधिकार से वंचित किये जा रहे हैं तब बाहर के अधिकार उन्हें कहाँ तक प्राप्त हो सकेंगे। पर उसका उल्लेख कर देना आवश्यक है।

ग्रामवासी तो अधिक रेल से यात्रा नहीं करते; पर साधारणतया तीर्थयात्रा के समय और अन्य आवश्यक कार्य के समय वे रेल-यात्रा करते ही हैं। पर्व-समय पर गाड़ियों में वे पशु की तरह ठूँस दिये जाते हैं। वे पैसे देकर टिकट खरीदते हैं, पर उन्हे खड़े होने तक का स्थान नहीं मिलता। क्या वे यह अधिकार नहीं रखते कि उन्हें वहाँ बैठने तक का स्थान मिले? खैर, यह तो रेलवे अधि-

कारियों की बातें हैं, उनके कानों तक यह बात पहुँचनी कठिन है ! पर उनके साथ इस स्थान पर वे ही लोग अत्याचार करते हैं जिनके द्वारा उनके सुधार की बड़ी-बड़ी आशाएँ की जाती हैं। उनके साथ यह अत्याचार कौन करता है ? शिक्षित-समुदाय ! विशेषतया कालेज और स्कूल के छात्र !! जिस डब्बे में कालेज और स्कूल के छात्र बैठ जाते हैं, वह डब्बा उनके नाम 'रिजर्व' हो जाता है ! उसमें चाहे उनकी संख्या सात-आठ ही क्यों न हो, परचा भी लगा देते हैं ! किसी स्टेशन पर गाड़ी पहुँची—देहातियों का एक दल आया, चढ़ने को प्रस्तुत है—जिस डब्बे से जाते हैं, 'यहाँ जगह नहीं है, आगे जाओ, बड़ी गाड़ी खाली है' इत्यादि शब्द उन्हें सुनाए जाते हैं, वे बेचारे इधर से उधर दौड़ते हैं, गाड़ी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक जाने में गाड़ी की सीटी बज जाती है, बेचारे अपढ़ देहाती प्लेटफार्म पर हाथ मलकर रह जाते हैं; भीतर हमारे नवयुवक ही-ही ठी-ठी मचाते हैं, चारों पटरियों पर चार-चार जने बैठे-बैठे 'कोटपिस' करते हैं !

कभी-कभी यह भी देखा जाता है कि गाड़ियों को छूटते देख बेचारे अपढ़ हताश हो गाड़ी पर चढ़ने को दौड़ते हैं; दौड़कर चढ़ने का अभ्यास न होने से वे ट्रेन के नीचे गिर जाते हैं, कट जाते हैं, घायल हो जाते हैं !

साधारणतया २५) सरकारी लगान देनेवाला, और ५०) जमींदार को लगान देनेवाला व्यक्ति वोट देने का अधिकारी माना जाता है। वोट देने की प्रथा में यद्यपि 'कनवेसिंग' की

प्रथा सारे संसार में प्रचलित है तथापि जितने गन्दे रूप में यह हमारे देश में है उतने भद्दे रूप में शायद संसार के किसी भी देश में न होगी। उनकी अशिक्षा के कारण उम्मीदवार लोग उनसे अनुचित लाभ उठाते हैं। नाजायज़ तरीकों को काम में लाकर उनसे मतलब सिद्ध करते हैं।

हर एक लगान देनेवाला, चाहे वह असामी हो या जमींदार, अपने लगान के साथ कुछ अधिक रुपया देता है। यह अधिक रुपया डिस्ट्रिक्टबोर्ड को शिक्षा-प्रचार के लिये सरकार की मारफत दिया जाता है। पर अशिक्षा की जो भीषण बीमारी देश में फैली हुई है उसे हम देखते हैं। यद्यपि ग्रामीण शिक्षालयों की संख्या शायद इधर कुछ बढ़ी है, परन्तु देश की विशालता को देखते हुए यह अब भी बहुत कम है। ऐसी दशा में हर गाँव में प्रारंभिक पाठशाला होनी चाहिए। ग्रामवासियों को पूर्ण अधिकार है कि प्रत्येक ग्राम में पाठशाला खुलवायें। पर डिस्ट्रिक्ट बोर्डों की उदासीनता से उनका यह कार्य कठिन होता जा रहा है। ग्रामवासियों के छोटे-मोटे अधिकार भी उन्हें नहीं प्राप्त हैं! वे इनसे अनभिज्ञ रखे जाते हैं, और उनकी इस अनभिज्ञता से अनुचित प्रकार का लाभ उठाया जाता है।

व्यापार तथा खेती की उन्नति की आवश्यकता—

ग्राम सुधार के लिए आर्थिक उन्नति का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। गाँवों के आर्थिक सुधार में व्यापार का बड़ा ऊँचा स्थान है। भारतवर्ष में प्राचीन समय से ही व्यापार का धंधा बड़ी उन्नति

पर रहा है। चीन, स्याम, मिस्र, यूनान आदि देशों से भारतवर्ष के साथ उस समय से व्यापार का सम्बन्ध था, जब कि उन्नतिशील पाश्चात्य देश असभ्यता के अन्दर पल रहे थे। इस व्यापार की उन्नति में सबसे अधिक सहायक उपयोगी मार्गों का होना है। ग्रामवाले यदि व्यापार करने को आगे बढ़ें भी, तो व्यापार-मार्ग की कमी उनके लिये एक बड़ी बाधक होती है। जब तक उनके आवश्यकतानुसार आने-जाने के लिये ठीक-ठीक मार्गों का प्रबन्ध न हो जायगा, तब तक वे अपने माल को एक स्थान से दूसरे स्थान में सुगमता से न ले जा सकेंगे। सरकारी कमीशन की सलाह यह है कि नई सड़कों में सभी गाँवों से मिलाने के लिये छोटी-छोटी सड़कें निकाली जायँ। परन्तु सरकार अभी बीस वर्ष तक इस काम को हाथ में नहीं लेती ! अतः उसके आसरे बैठे रहना मूर्खता है। सरकार उसको बनवा भी दे, तो नहरों की तरह उनपर भी महसूल-टैक्स लग जायगा, तो बेचारे किसान टैक्स ही भर को होंगे। फिर बाल-बच्चों का पालन-पोषण कहाँ से करेंगे ? ऐसी दशा में प्रत्येक ग्राम के कुछ लोग एक कमेटी बनाकर स्वावलम्बन के सहारे इस कार्य को आरंभ करें। जब कभी अवकाश मिल जाय, तो एक गाँव से दूसरे गाँव तक एक बैलगाड़ी के आने-जाने भर का रास्ता बना लें। इसी तरह एक गाँव से दूसरे गाँव को यदि रास्ते बनते रहेंगे, तो धीरे-धीरे पास की बड़ी पक्की सड़क तक रास्ता बन जायगा। इस रास्ते की कमी को प्रत्येक किसान अनुभव कर सकता है। और दिनों में तो कम,

परन्तु बरसात के दिनों में ऊँचे तथा बराबर सुडौल रास्तों के न होने से कितनी कठिनाई उपस्थित होती है, इसे प्रत्येक किसान या ग्रामवासी अनुभव कर सकता है।

मार्ग-प्रबन्ध के पश्चात् दूसरी बात इस सम्बन्ध में जो ध्यान देने योग्य है, वह माल की खरीद-बिक्री का प्रबन्ध है। किसानों को मदद देने का एक तरीका यह काम में लाया जा सकता है कि उनके फायदे के लिए देश के बड़े-बड़े गाँवों में बड़े-बड़े बाजार खोले जाँ, जहाँ सब काम नियमानुसार हों। बम्बई-प्रान्त में केवल कपास के लिये ऐसा प्रबन्ध है। इसी तरह और भी वस्तुओं का ऐसा ही प्रबन्ध होना चाहिए। इन बाज़ारों का प्रबन्ध एक बाजार-कमेटी के अधीन होना चाहिए। यह कमेटी बाजार का भाव तय करेगी, तौल का प्रबन्ध करेगी, दलालों के लिये नियम बनावेगी और बाज़ार में माल इकट्ठा करेगी। इस सम्बन्ध में जो झगड़ा होगा उसे तय करने के लिये स्थानीय पंचायती बोर्ड से सहायता ली जायगी।

सम्पूर्ण ग्राम-सुधार का मूल कृषि-सुधार है। यदि ग्राम-सुधार को कृषि सुधार ही कहा जाय, तो इसे अत्युक्ति न समझना चाहिए। यही सबकी कुंजी है। इसी खेती पर हमारा भविष्य निर्भर है। इसी के बिगड़ने से प्रतिवर्ष लाखों निर्धन हो जाते हैं, सैकड़ों विधर्मी बन जाते है, हजारों बहिनें बिन-ब्याही रह जाती हैं, लाखों नौ-निहाल बच्चे पाठशाला में जाने से विमुख रह जाते हैं, सैकड़ों आबाल-वृद्ध अपने प्यारे जन्मस्थान को छोड़ कलकत्ता-बम्बई-

रंगून ही नहीं वरन् भारत के बाहर भी जाकर शरण लेते हैं। सबसे पहिला सुधार इसीका होना चाहिए।

हिन्दुस्तान में खेती होनेवाली जमीन कई प्रकार की है, जहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के अन्न बोए जाते हैं। आठ करोड़ एकड़ जमीन मे चावल, २ करोड़ ४० लाख एकड़ जमीन में गेहूँ, तीन करोड़ ३० लाख एकड़ में ज्वार-बाजरा, एक करोड़ अस्सी लाख में कपास, एक करोड़ ४० लाख में तिलहन और एक करोड़ ४० लाख में चना होता है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित उपाय नये तरीकों से ग्रहण किये जायँ तो विशेष लाभ हो—(१) खाद का प्रयोग, (२) खेती के नवीन औजारों का प्रयोग, (३) सिंचाई के नवीन प्रकार, (४) बीजो का चुनाव, रक्षा, बिक्री, (५) प्रचार और प्रदर्शन, (६) खेतों की चकबन्दी की व्यवस्था।

खाद देने के अनेक नये-नये तरीके निकाले गए, परन्तु देहाती किसान अभी तक केवल गोबर की ही खाद—वह भी अनुचित प्रकार से—देना जानते हैं। यद्यपि हड्डीवाली खाद या विलायती खाद हमारे गरीब किसान भाई निर्धनता के कारण नहीं खरीद सकते, तथापि वे बिनौले की खाद या खली की खाद तथा दो वर्ष के पुराने गोबर की खाद तो बड़ी ही आसानी से प्रयोग में ला सकते हैं।

यदि हम अपने खेतों में मशीन के हल नहीं चला सकते, तो ... अब वह दो हजार वर्ष पूर्व का भी हल नहीं चलाना चाहिए। ... स्थान में छोटे-छोटे उन्नतिशील हलों का प्रयोग करने से

खेतों की मिट्टी अधिक निकल सकती है। उसीसे उपजाऊ शक्ति की अभिवृद्धि भी हो सकती है। कोड़ने, पटाव देने के छोटे-छोटे और हल्के-हल्के औजार भी तैयार हुए हैं। उन्हें साधारण स्थिति वाले दो-चार किसान मिलकर यदि खरीद लें, तो उनका काफी भला हो सकता है। कहीं-कहीं कृषि-फार्म भी खुले हैं, वहाँ जाकर उन औजारों की प्रत्यक्ष उपयोगिता भी देखी जा सकती है।

प्रकृति के कोप के कारण अब पानी समय पर नहीं मिलता, इसीसे सिंचाई का काम पहिले से अधिक बढ़ रहा है। यदि पढ़े-लिखे समर्थ व्यक्ति और दानशील धनी-मानी सज्जन ऐसी जगह कुँएँ बनवावें, जहाँ कि न नदी है न नहर, न ताल-पोखरा, तो ग़रीब किसानों का बड़ा फायदा हो सकता है।

बड़े-बड़े शहरों और मेलों में कृषि-प्रदर्शनियाँ न होकर कहीं देहातों में हों, तो उनसे महान लाभ हो सकता है। शहरों में प्रदर्शनियाँ होती हैं, तो केवल तमाशबीन या शहराती लोग ही वहाँ पहुँचते हैं। उन्हें देहातों में होना चाहिए।

खेती की उन्नति में सबसे बड़ा बाधक खेतों की अव्यवस्था है। खेतों के इतने छोटे-छोटे टुकड़े हैं कि उनमें कठिनाई से जमीन बराबर करनेवाला पटरा घूम सकता है। परन्तु इस अव्यवस्था को मिटाना केवल कानून के ही सहारे से हो सकता है। हाँ, यदि किसानों को भगवान् इतनी सुबुद्धि दें कि वे आपस मे खेतों का बदलौअल कर सकें, तो एक जगह खेतों का एक चक हो जाने से बड़ी सहूलियत हो जायगी।

खेती की उन्नति के विषय में एक और महत्वपूर्ण बात है—खास-खास वस्तुओं की खेती करना। कपास और अरंडी की खेती से बड़ा फायदा हो सकता है। इनके बीजों से खाद भी हो सकती है। इसके अलावा फल और तरकारियों की खेती है। इनकी खेती करने में दो उद्देश्य रखे जा सकते हैं। प्रथम तो निजी उपयोग के लिए, दूसरा व्यापार के खयाल से। व्यापार की दृष्टि से इनकी खेती करने में पर्य्याप्त लाभ होने की संभावना है। प्राय: उन गाँववालों को अवश्य ही करना चाहिए, जो बड़े-बड़े कस्बों या शहरों के निकट बसे हुए हैं। किसान लोग अपनी इन चीजों को चार-छः मील से आगे नहीं भेजते और आसपास में ही सस्ता-महँगा बेचकर छुट्टी पाते हैं। उनकी अज्ञानता से शहरों के खटिक और कुंजड़े मालामाल बन गए हैं। कम-से-कम आलू, प्याज, मिरचा आदि तो वे दूर भी भेज सकते हैं। यदि वे ऐसा करें, तो उन्हें विशेष लाभ हो। इसके अलावा तम्बाकू, जीरा, सौंफ, धनिया, मेथी आदि की भी खेती साधारण परिश्रम से हो सकती है। परन्तु प्रत्येक वस्तु की खेती के तरीके पर छोटी-छोटी पुस्तकें प्रकाशित होनी चाहिए। साथ ही उनका मूल्य भी एक पैसे से अधिक न हो। ऐसी-ऐसी पुस्तकें यदि निकालकर देहातों में प्रचारित की जायँ, तो विशेष उपकार हो। जैसे—(१) उपले की खाद, (२) जीरे की खेती, (३) आलू की खेती इत्यादि। इस कार्य को सुलभ बनाने के लिये नेता लोग यदि किसी पूँजी-पति को अग्रसर करें तो अच्छा हो। यह एक वास्तविक रचनात्मक कार्य हो

सकता है। ये छोटी-छोटी पुस्तिकाएँ निकलकर जब गाँववालों के हाथों में पहुँचेंगी, तो उनसे उनमें शिक्षा-प्रचार भी बढ़ेगा और वे खेती में काफी सहयोग देने लगेंगे।

तीन समस्याएँ—

हमारे सामने तीन सबसे बड़ी समस्याएँ हैं—(१) दरिद्रता, (२) अज्ञान, और (३) असंघटन। ग्रामों की यही तीन प्रधान समस्याएँ हैं। इन्हीं में अन्य सबका समावेश किया जा सकता है। अन्य जो भी समस्याएँ हैं, उनके लिये या तो इनमें से एक अथवा दो या तीनों मिलकर जिम्मेदार हैं। इन तीनो का आपस में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि वे एक दूसरे से अलग नहीं की जा सकतीं। तीनो ही आपस में एक दूसरे के कारण और फल-स्वरूप हैं। इनमें कार्य-कारण का सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ—दरिद्रता—अज्ञान और असंघटन का कारण तथा फल भी है। अज्ञान भी दरिद्रता और असंघटन दोनो का कारण है तथा फल भी है। असंघटन भी दरिद्रता और अज्ञान का कारण है तथा फल भी है।

जब इन तीनों का इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, तब तो ग्राम-समस्या को हल करने के लिये हमें इन तीनों को एक साथ ही हल करने का प्रयत्न करना होगा। ग्रामों की सबसे प्रधान समस्या है दरिद्रता। इसीके चारों ओर सारी समस्याएँ चक्कर लगाती हैं। सभी ने माना है कि भारत से बढ़कर दरिद्र देश दूसरा नहीं है। भारत के ९० फी सदी आदमी ग्रामों में रहते हैं।

अतः भारत की दरिद्रता से मतलब ग्रामों की दरिद्रता से ही लेना पड़ेगा। यहाँ की जनता का प्रधान भाग देश-भर में फैले हुए ७ लाख ग्रामों में रहता है, न कि इने-गिने दो हज़ार नगरों में। नगरों में दीखनेवाली सम्पत्ति ग्रामों की दरिद्रता को और भी घोरतम बनाती है। हिसाब लगाने से पता चलता है कि देश में कुल १६५ करोड़ मन अनाज होता है; किन्तु कुल ३२ करोड़ खानेवालों के लिए १८२ करोड़ मन की आवश्यकता है, अर्थात् १६ करोड़ मन अनाज की हर साल कमी रह जाती है; अर्थात् कुल ३२२ लाख आदमियों को बिलकुल भोजन ही नहीं मिल पाता, और १६४ लाख आदमियों को आधा पेट भोजन मिलता है! फी सदी या एक-तिहाई आदमी भूखे रहते हैं! फी आदमी की औसत आमदनी का हिसाब लगाने का भी कई लोगों ने प्रयत्न किया है। इनमें ३६) से लगाकर १००) साल के हिसाब आये हैं। किन्तु, जहाँ दूसरे देशों को १०००) से लगाकर ६००) सालाना तक की आमदनियाँ हैं, वहाँ यह कुछ भी नहीं है।

इस भयंकर दरिद्रता का कारण क्या है? मुझे तो इसके नीचे लिखे प्रधान कारण जान पड़ते हैं—(१) जमीन के सिवा दूसरा आधार न होने के कारण खेती पर निर्भर रहनेवालों की संख्या बढ़ती ही जाती है। (२) जमीन पर ही अधिक बोझ रखने का यह फल हुआ कि फी किसान पीछे इतनी कम जमीन पड़ती है कि जिससे सबका निर्वाह नहीं हो सकता। कुल किसान २१ करोड़ हैं; किन्तु जमीन केवल १९ करोड़ एकड़ है, जिससे फी

किसान पीछे १ एकड़ से कम जमीन पड़ती है। (३) अनाज की कमी। लगातार हजारों वर्षों से पैदावार लेते जाने से और उसके बदले में खेत को कुछ न देने से—तथा खाद, जुताई आदि के अभाव से—उपज बराबर कम होती जाती है। (४) जन-संख्या की वढ़ती के मुकावले जमीन या दूसरे रोजगार की वढ़ती नहीं होती। (५) जमीन का बँटवारा अधिक होता है और खेत छोटे-छोटे बेकाम टुकड़ों में विभक्त होते चले जाते हैं। (६) पुराने तरीके की खेती। गरीबी के कारण खेती के नए तरीकों का प्रयोग भी नहीं किया जा सकता। (७) अच्छी फसल होने पर भी खेती के पीछे रोग, सूखा तथा बाढ़ आदि भी लगी रहती है। (८) इन सबके ऊपर लगान का अधिक बोझ किसानों को असह्य हो जाता है। वह भी फसल आदि की उपज की परवाह न कर पूरी कड़ाई के साथ वसूल किया जाता है। (९) किसान के पास कोई सहायक धन्धा न होने से वह बिलकुल निराधार रह जाता है। (१०) इन सब कारणों से किसानों के ऊपर कर्ज का बोझ दिन-दिन बढ़ता ही जाता है।

इस प्रकार ग्रामों की आर्थिक समस्या जटिल हो जाती है। यदि हम उसे हल करना चाहते हैं, तो ऊपर के कारणों पर विचार करना होगा। खेती पर बोझ कम करना, जमीन का उचित बँटवारा कराना, उपज बढ़ाने के उपाय करना, खेतों की चकबन्दी करना, आबपाशी तथा खाद का प्रबन्ध, फसल और पशु के रोगों को दूर करने का ज्ञान फैलाना, लगान

का बोझ कम करवाना, पुराना कर्ज पटा कर सस्ते ब्याज पर रुपया दिलाना, सहायक धन्धों का प्रचार करना आदि बातें जब तक हम न करेंगे, किसानों की दरिद्रता का सवाल हल नहीं हो सकता। कृषि की उन्नति करना सर्वप्रथम आवश्यक है। इसके लिए उत्तम खाद, बीज, बैल, औजार, आबपाशी तथा शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता है। खेती के लिए उत्तम खाद, मजबूत बैल तथा उसके सहायक धन्धे के रूप में गाय का उचित पालन और वर्द्धन भी परमावश्यक तथा अनिवार्य है। इसके लिये नस्ल का सुधार प्रथम आवश्यक है। ऐसी नस्लें उत्पन्न हो जो दुधार गाय तथा मजबूत साँड़, दोनों दे सकें। गो-पालन के लिए काफ़ी चरागाह, फिर उत्तम गोशाले बनाने होंगे। गोपालन के नए तरीकों की उचित शिक्षा का प्रचार भी आवश्यक है।

दो रचनात्मक योजनाएँ—

ग्राम-सुधारक-संघ के विषय में दो योजनाएँ हो सकती हैं

ता।
प रह जो कि केवल एक ग्राम के ही लोगों का एक संघ
इस भर र, उसमें एक ग्राम के ही लोग सदस्य रहें। दूसरे,
नीचे लिखे प्रधा का एक संघ स्थापित हो। इस संघ के सदस्य
दूसरा आधार न वेही उसका संचालन करें। इस बाहरी संघ की
संख्या बढ़ती ही उ कार करे तो अच्छा हो, अथवा अन्य कोई सार्व-
रखने का यह फल है। बाहरी लोगों का जो संघ होगा, उसका रूप
पड़ती है कि जिससे ता है—
२१ करोड़ हैं; किन्तु
वा अन्य प्रसिद्ध सार्वजनिक संस्था एक अखिल-

भारतवर्षीय ग्राम-सुधारक-संघ खोलें। उसकी प्रान्तीय शाखा, कमिश्नरी शाखा, जिला-शाखा, तहसील-शाखा, परगना-शाखा तथा ग्राम-शाखाएँ खोली जायँ। जिस तरह शिक्षा विभाग का अलग प्रबन्ध होता है—डाइरेक्टर, इन्सपेक्टर, डिप्टी इन्सपेक्टर, सबडिप्टी तथा अध्यापक रखे जाते हैं, उसी तरह इसका भी एक विभाग खोला जा सकता है। यदि इसका एक नया विभाग किसी कारणवश न खोला जा सके, तो इसे शिक्षा-विभाग के साथ जोड़ दिया जा सकता है। पहली दशा में—अलग विभाग खोलने में—अधिक धन की आवश्यकता होगी। परन्तु, यदि इस विभाग को 'शिक्षा-विभाग' की एक उपशाखा बनाकर खोल दिया जाय, तो कम व्यय पर रचनात्मक कार्य हो सकता है।

भारतवर्ष के कोने-कोने में सरकारी पाठशालाएँ खुली हुई हैं। यद्यपि उनकी संख्या सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती, तथापि जो कुछ हैं, उन्हींसे काम चल सकता है। डाइरेक्टर के नीचे ग्राम-विभाग-डाइरेक्टर, इन्सपेक्टर आदि—इसी तरह सब अधिकारी नियुक्त किए जा सकते हैं। जितनी पाठशालाएँ हैं, पहिले उन्हीं पाठशालावाले ग्रामों में सुधार का काम जारी किया जाय। इसके लिए पाठशाला के कार्यकर्त्ताओं की संख्या अवश्य ही बढ़ानी पड़ेगी।

पहिला सुधार तो शिक्षा देने का ही होगा। एक ग्राम या दो-चार ग्रामों के प्रौढ़ों को प्रति-दिन दो घंटा शिक्षा देने के लिए एक या दो अध्यापक काफी हो सकते हैं। दो वर्ष तक कम-से-

कम ग्रामवासियों को केवल साक्षर करने में लगाना चाहिए। इस दो वर्ष के अन्तरगत अन्य छोटे-छोटे कार्यकर्त्ता—जैसे, स्वच्छता-निरीक्षक, स्वास्थ्य-निरीक्षक आदि—तैयार किए जा सकते हैं। जबतक देहाती लोग साक्षर न होंगे, तबतक कोई काम पूरा नहीं हो सकता। शिक्षित होते ही वे अपनी आर्थिक कमजोरियों, सामाजिक कुरीतियों, राजनीतिक अनभिज्ञता, मानसिक पतन, नैतिक,दुर्व्यवस्था आदि को स्वयं समझने लगेंगे; तब फिर उन्हें उचित पथ पर लाने में आसानी हो सकती है। पहिला काम उन्हें शिक्षित करना होना चाहिए, दूसरा उनको खेती-विषयक नवीन बातो का ज्ञान कराना चाहिए। यह उनको शिक्षित करने ही पर हो सकता है।

इस कार्य को एक सार्वजनिक संस्था दूसरे रूप में कर सकती है। वह यह है कि प्रत्येक ग्राम में (यदि हो सके तो) उत्साही नवयुवकों को भेजकर शिक्षा-प्रचार कराना। ऐसी दशा में उक्त संस्था को आर्थिक सहायता की अधिक आवश्यकता होगी। सार्वजनिक सस्थाएँ यदि इसे यकायक न कर सकें, तो उन्हें पहिले दो-चार ग्रामों में आरम्भ कर देना चाहिए। थोड़े-से उपदेशक रखकर, प्रत्येक ग्राम में, ग्राम-संघ की स्थापना कराई जाय। इन ग्राम-संघों का रूप इस तरह हो सकता है—

ग्राम के प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों की एक सभा कायम की जाय। यदि ग्राम बड़ा हो, तो बारह सदस्य—नहीं तो छः सदस्य ही पर्याप्त होंगे। अधिक सदस्य हो जाने से "नाई के बारात मे

सभी ठाकुर' की कहावत चरितार्थ होने लगती है। इन सदस्यो का चुनाव तो 'राय' (वोट) पर रहे; परन्तु उसमें इस बात का ध्यान रहे कि उसमें हर दल या सम्प्रदाय के लोग हैं या नहीं। जैसे उक्त दल में केवल धनी-मानी लोग ही न रहें। असामी, जमींदार, कारीगर, कामकाजी आदि सभी रहें। ऊँच-नीच का तनिक भी भेद न रहे। इन सदस्यों की सभा को 'संघ' के नाम से पुकारा जायगा।

छः या बारह सदस्य अपना संघपति स्वयं चुनें, परन्तु ऐसा करते समय प्रत्येक ग्राम-सदस्य की राय अवश्य ले ली जाय। यदि बहुमत उसके विपक्ष में हो, तो वह आदमी संघ-पति कदापि न चुना जाय। संघपति के चुने जाने के बाद उपसंघ-पति भी यदि चुना जाय, तो अच्छा है। ग्राम-संघ के छः निम्नलिखित विभाग बनाये जायँ और हर-एक विभाग एक-एक संघ-सदस्य के अधीन रहे—

(१) 'संघपति'—यह व्यक्ति साधारण तथा प्रत्येक विभाग का निरीक्षक रहेगा। यह प्रत्येक विभाग के अध्यक्ष के कार्य में उचित हस्तक्षेप करने का उस समय तक अधिकारी होगा, जब तक कि अन्य संघ-सदस्यों की राय उसके पक्ष में होगी, अन्यथा नहीं। परन्तु विशेषतया यह 'ग्राम-कोतवाल' का कार्य करेगा। छोटे-मोटे झगड़े; ग्रामवालों की बदमाशी, चोरी आदि का यह निरीक्षण किया करेगा। इसके विभाग का नाम 'शासन-विभाग' होगा।

(२) 'उपसंघपति'—यह व्यक्ति साधारणतया 'संघपति' के कार्य में सहायता पहुँचायेगा, परन्तु इसका प्रधान कार्य आय-व्यय-विभाग का निरीक्षण करना तथा व्यापार का प्रबन्ध करना होगा। यह अपने इस कार्य में लेन-देन-विभाग के अध्यक्ष से सहायता पाने का अधिकारी होगा। यह अर्थ-सचिव का कार्य करेगा इसके विभाग का नाम अर्थ-विभाग होगा।

(३) 'स्वास्थ्य-निरीक्षक'—यह व्यक्ति वही हो जो स्वयं स्वस्थ हो। यदि स्वास्थ्य-सम्बन्धी कुछ बातों की जानकारी रखता हो तो और अच्छा है। स्वास्थ्य-निरीक्षक—सफाई के दारोगा का काम करेगा। गलियों–रास्तों की सफाई, मोरियों पनालों की सफाई, गड्ढों की सफाई, बीमारी में सुश्रूषा का उचित प्रबन्ध करना और स्वास्थ्यप्रद मकान बनाने के ढंग बनाना। गाँव के पटवारी से समय-समय पर कुएँ में डालनेवाली दवा (परमैंगनेट पोटेशियम) मँगाकर कुएँ के पानी को साफ रखने का प्रबन्ध करना। यही इसका काम होगा।

(४) 'खेती-विभाग' का अध्यक्ष ग्राम के सबसे बूढ़े सदस्य हों, तो बहुत अच्छा है, क्योंकि उनका इस विषय में जो अनुभव होगा, वह सचमुच विशेष महत्त्व का होगा। परन्तु इस बात का ध्यान रहे कि खेती-विभाग के अध्यक्ष यदि कोई वृद्ध सज्जन हों, तो कोई प्रौढ़ व्यक्ति उनका सहायक अवश्य रहे। खेती के विषय में आवश्यक बातों का ज्ञान कराने के लिए वृद्ध सज्जन की सम्मतियाँ अमूल्य होंगी।

(५) 'शिक्षा-विभाग' के अध्यक्ष के जिम्मे ग्राम में शिक्षा का प्रबन्ध करना रहेगा। इनके जिम्मे केवल शिक्षा-प्रचार का काम ही रहेगा। इस मामले में इन्हें यह अधिकार होगा कि प्रत्येक ग्राम-सदस्य से आर्थिक सहायता प्राप्त करें। यदि ग्राम में दो-एक शिक्षित व्यक्ति हैं और अपना समय शिक्षा-प्रचार में दे सकते हैं, तो और भी अच्छा है। यदि नहीं, तो शिक्षा-विभाग के अध्यक्ष एक अध्यापक का प्रबन्ध करेंगे। यही नहीं, वरन् हर-एक प्रकार से ऐसी कोशिश करेंगे, जिससे शिक्षा-प्रचार को विशेष प्रोत्साहन मिले।

(६) 'लेन-देन-विभाग' के अध्यक्ष को 'महाजन' कहेंगे। इस विभाग के अध्यक्ष वही बन सकेंगे, जिन्हें समस्त गाँववाले ईमानदार तथा विश्वासपात्र समझेंगे। सहयोग-समितियों की तरह 'महाजन' महाशय लोगों से रुपये इकट्ठा कर उन्हें कम सूद पर अपने गाँववालों को देंगे। यही उनका काम रहेगा। दूसरा कार्य उनके लिए यह देखना होगा कि, कौन-सा किसान कर्ज के बोझ से कितना दबा हुआ है। उसका पता लग जाने पर वे शीघ्र-से-शीघ्र ऐसा प्रबन्ध करेंगे, जिससे उस किसान को जल्द छुट-कारा मिले। यह प्रबन्ध 'कोर्ट अफ वार्ड' के रूप में हो सकता है। उक्त किसान का आय-व्यय अर्थ-सचिव महाशय जाँच कर बतावें। जब यह मालूम हो जाय, तब उसे कुछ सहयोग-समिति से सहायता दिलाने का प्रबन्ध किया जाय। कुछ 'महाजन' दे और बाकी के लिए वह खेत बन्धक रखे। खेत के बन्धक रखने

से इतना तो होगा कि रुपये पर सूद नहीं बढ़ेगी। प्रो-नोट, हैंड-नोट, चिट्ठी आदि पर ऋण लेने की प्रथा को 'महाजन' शीघ्रता से हटाने का प्रबन्ध करेंगे।

इसी तरह मण्डल भर के ग्रामों के संघपति मिलकर एक 'मण्डल-संघ' की स्थापना करें। मण्डल-संघ की स्थापना करने के बाद 'मण्डलेश्वर' बनाए जाएँ। मण्डलेश्वर भी चुनाव पर ही बनें। उनका चुनाव मण्डल-भर के संघ-पति ही करें; परन्तु वैसा करते समय वे ग्रामसंघ-सदस्यों की राय अवश्य लें। एक तहसील में जितने मण्डल हों उनके अधिपति तहसील-संघ से जिला-संघ, जिला-संघ से, कमिश्नरी-संघ और फिर प्रान्त-संघ, प्रान्त-संघ से अखिल-भारतीय संघ की स्थापना करें। इस तरह की संघ-प्रणाली के क्रमशः विकास का फल यह होगा कि वे ही लोग गाँवो की बागडोर अपने हाथों में ले सकेंगे, जो ग्रामों की दशा से भलीभाँति परिचित रहेंगे। वे ही लोग ग्राम-वासियों के सच्चे प्रतिनिधि होंगे। वेही ग्राम-वासियों के हितार्थ नियम-उपनियम बनवायेंगे, सिफारिशें करेंगे, देहातवालो को कल्याणकारी मार्ग दिखायेंगे। यदि उक्त प्रकार के संघो की स्थापना करने में सरकार और सार्वजनिक संस्थाएँ दोनो साथ मिलकर काम करें तो और भी अच्छा है। सरकार तो केन्द्र से ग्राम की ओर क्रमशः चले, और सार्वजनिक संस्थाएँ ग्राम से केन्द्र की ओर क्रमशः चले, तो फिर शीघ्र ही ग्रामों की दशा में सुधार हो सकता है।

एक ग्राम-सेवक की सरल योजना—

गत वर्ष दैनिक "आज" में ग्राम-संघटन के एक अनुभवी कार्यकर्त्ता ने अपनी ग्राम-सेवा-विधि का उल्लेख करते हुए एक सरल योजना उपस्थित की थी, जिसका आवश्यक अंश विचारार्थ यहाँ दिया जाता है—

"प्रताप" के सुयोग्य संपादक पं० बालकृष्ण शर्मा ने ग्राम-संघटन की आवश्यकता बताते हुए काशी-विद्यापीठ के ट्रस्टियों से प्रार्थना की थी कि वहाँ ऐसे विद्यार्थी तैयार किये जायँ, जो ग्राम-संघटन का काम कर सकें। गुजरात-प्रान्त में एक सेठ ने एक लाख रुपया दान देकर एक ऐसा ही विद्यालय खोलकर कार्य्यारम्भ भी कर दिया है। यह सब कार्य्य उत्तम है; लेकिन जब तक हर एक प्रान्त में ग्राम-सेवक-शिक्षालय नहीं खुल जाते तबतक इस एक सरल योजना द्वारा भारत के सात लाख गाँवो के संघटन और सुधार का काम प्रारम्भ कर देना चाहिये। मेरी तुच्छ सम्मति में ग्राम-संघटन और ग्राम-सुधार की सरल योजना यह है कि हरएक गाँव में पहले पुस्तकालय और वाचनालय स्थापित कर दिया जाय। आप पूछ सकते हैं कि पुस्तकालय द्वारा आखिर कैसे यह काम होगा ? इसलिये अपना चार वर्षो का अनुभव मैं यहाँ बता देना चाहता हूँ—

आज से चार वर्ष पहले मेरे ग्राम (जिला गाजीपुर) में 'सत्य-सदन-पुस्तकालय' की स्थापना इस उद्देश्य से की गयी कि उसके द्वारा "देश-कथा" कहकर लोगो के दिल में देश के प्रति दर्द पैदा

किया जाय। सबसे पहले महात्माजी का पत्र "हिन्दी-नवजीवन" मँगाया गया। उन दिनों महात्माजी अपनी आत्मकथा निकाल रहे थे, जिसे अशिक्षित जनता बड़े प्रेम से सुनती थी। "पथिक" की कहानी सुनने में भी लोग तल्लीन हो जाते थे। 'पथिक' को, जो हिन्दी-मन्दिर (प्रयाग) से प्रकाशित हुआ है, मैं अपने देश के लिये सत्यनारायण की कथा के समान समझता हूँ, इसलिये उसका मैंने देश-कथा में खूब उपयोग किया और जनता पर उसका काफ़ी असर भी पड़ा।

अखबार पढ़ सुनाने का प्रभाव लड़ाई के मौक़े पर और ज्यादा पड़ा। कितने गँजेड़ियों ने, केवल यह जानकर ही कि गाँजे की दूकान पर बैठने की वजह से ही कितने ही स्वयंसेवक तथा स्वयंसेविकाओं को कठोर दंड मिला है तथा उनकी नाना प्रकार की दुर्दशा की जाती है, जिन्दगी-भर नशा न सेवन करने की प्रतिज्ञा कर ली और अब तक उसे निबाह रहे हैं। मुझे अच्छी तरह याद है कि पंडित जवाहरलाल की दूसरी बार की जेलयात्रा का हाल सुनकर—जो उन दिनों 'दिल दहलानेवाला दृश्य' शीर्षक से अखबारों में प्रकाशित हुआ था—एक साठ वर्ष के बूढ़े ने, जो जिन्दगी-भर गाँजा पीने का आदी था, गाँजा कभी न पीने की कसम खा ली।

आजकल आप जिस ग्राम में खद्दर की धोती और कुर्ता-टोपी पहनकर चले जायँ, वहाँ लोग तुरन्त आपसे—आजकल गान्धीजी क्या कर रहे हैं? स्वराज के बारे में आजकल क्या हो रहा है?

आदि—अनेक प्रश्न पूछना आरम्भ कर देंगे। इन प्रश्नों से उनके हृदय की भूख आप मालूम कर सकते हैं। वे आजकल अखबार चाहते हैं। अतः जरूरत इस बात की है कि गाँवों में पुस्तकालय और वाचनालय की स्थापना का कार्य तुरत प्रारम्भ कर दिया जाय। किन्तु, यह कार्य कौन लोग अपने हाथ में ले? काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा या हिंदी-साहित्य-सम्मेलन अगर अपने हाथ में यह कार्य ले, तो अति उत्तम हो। या, कोई महानुभाव भारतीय पुस्तकालयों का संघटन इस उद्देश्य से करें कि उसके द्वारा प्रत्येक गाँव में पुस्तकालय स्थापित हो जाय। गत लाहौर काँग्रेस के अवसर पर 'अखिल-भारतीय पुस्तकालय-सम्मेलन' हुआ था। लेकिन फिर पता न चला कि उस सम्मेलन ने क्या तय किया और क्या किया।

मेरी सम्मति में तो हर जिले और तहसील में दस-पाँच पुस्तकालय अवश्य ही होंगे। हमें केवल उनसे सम्बन्ध स्थापित करके, उन्हींके द्वारा, पास के उन गाँवों में—जहाँ पुस्तकालय नहीं हैं—पुस्तकालय खुलवाने का प्रबन्ध करना चाहिये। जैसे हम काँग्रेस या अन्य संस्थाओं के सदस्य बनाते हैं, उसी तरह गाँवों में पुस्तकालय के लिये सदस्य बनाना भी कोई असंभव काम नहीं है। मुझे विश्वास है कि जिस गाँव में एक भी शिक्षित आदमी मिल जायगा और जहाँ ३।।) भी इकट्ठा हो जायगा, वहाँ हमारा काम आरम्भ हो जायगा।

महात्मा गान्धी की एक महत्त्वपूर्ण बात—

ग्राम-सुधार में सबसे पहला काम यह है कि गाँवों की गन्दगी

दूर करने का उपाय किया जाय। कारण, गन्दगी के मारे गाँव-वालों में रोग और दरिद्रता की इतनी पैठ हो गई है कि वे अपनी गिरी दशा से जल्दी उठ नहीं पाते। गन्दगी से तन्दुरुस्ती तो बिगड़ती ही है, बुद्धि भी भ्रष्ट होती है और लक्ष्मी का भी नाश होता है। इसलिये इस विषय पर महात्मा गान्धी की सम्मति को विशेष उपयोगी और प्रभावशाली समझकर हम यहाँ उद्धृत करते हैं। महात्माजी लिखते हैं—

श्री कर्टिस ने, जो सन् १९१८ में भारतवर्ष की यात्रा कर रहे थे और जिनका थोड़ा बहुत हाथ मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड-सुधार में भी था, हमारे गाँवों के बारे में लिखते हुए कहा है—"दूसरे देशों के गाँवो की तुलना करते समय मैंने देखा कि भारत के गाँव मानों घूरों पर बसे हुए हैं।" यह टीका ज़रा सख्त है, स्वभावतः हमें यह बुरी लग सकती है, मगर यह कोई नहीं कह सकता कि इसमें सचाई नहीं। हम चाहे जिस गाँव में चले जायँ, सबसे पहले हमें उसके घूरे के दर्शन होंगे! गाँव के घूरे अक्सर ऊँचे टीले पर होते हैं। गाँव के भीतर घुसने पर हमें बाहर और भीतर की हालत में कोई खास फर्क नज़र नहीं आवेगा। वहाँ भी रास्ते में गन्दगी होगी। बालक तो जब चाहे तब, रास्तों और गलियों में, पाखाना-पेशाब करते मिलेंगे ही। पेशाब तो बड़े बूढ़े भी जहाँ-तहाँ करते मिलेंगे। अनजान यात्री इस दृश्य को देखकर घूरों और गाँव की बस्ती के बीच कोई भेद नहीं कर पायेगा। वस्तुतः कोई खास भेद है भी नहीं।

लोगों की यह आदत, चाहे जितनी पुरानी हो, बुरी है और भुलाने योग्य है। मनुस्मृति आदि हिन्दू-धर्मशास्त्रों में, कुरानशरीफ में, बाइबिल में—रास्तों, आँगनों, घरों और नदी-नालों तथा कुँओं-तालावों को खराब न करने के सम्बन्ध में—बड़ी सूक्ष्म सूचनाएँ दी गयी हैं। मगर आजकल तो हम उनका अनादर ही कर रहे हैं। यहाँ तक कि हमारे तीर्थस्थानों में भी काफी गन्दगी होती है। अगर यह कहा जाय कि तीर्थस्थान तो और भी अधिक गँदले होते हैं तो शायद अतिशयोक्ति न होगी। हरिद्वार में गगा-किनारे पर मलमूत्र त्याग करते हुए स्त्री-पुरुषों को मैंने अपनी आँखों देखा है। जो स्थान आदमियों के बैठने का होता है, यात्री वहीं मल-त्याग करते हैं; गंगा की धारा में हाथ-मुँह धोते और वहीं-से पीने का पानी भरते हैं। तीर्थस्थानों के तालाओं की भी, यात्रियों के हाथों, इसी तरह दुर्गति होते मैंने देखा है। इन कामों से दयाधर्म का लोप होता है, और समाज-धर्म के निरादर का पातक लगता है। इस तरह की लापरवाही के कारण तीर्थस्थानों की हवा दूषित होती और पानी बिगड़ता है। ऐसी हालत में अगर तत्काल ही हैजा, विषमज्वर वगैरह छूत से फैलनेवाले रोग उत्पन्न हो जायँ तो आश्चर्य ही क्या? हैजे की बुनियाद ही गन्दे पानी में है। विषमज्वर के बारे में भी बहुत कुछ यही कहा जा सकता है। यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि करीब ७५ फी सदी रोग हमारी गन्दगी के कारण फैलते हैं।

इसलिये ग्राम-सेवकों का पहला धर्म 'देहातवालों को सफाई

से रहना सिखाना' है। इस तरह की शिक्षा के लिये व्याख्यानों या पत्रिकाओं से बहुत कम काम निकलता है। गाँववाले स्वयंसेवक की बातें सुनना पसन्द नहीं करते। अगर सुनते हैं, तो तदनुसार काम करने का उत्साह नही रखते। पत्रिकाएँ बाँटने पर वे उन्हे कभी पढ़ते नहीं, अनेकों को पढ़ने आता ही नहीं और सच्ची जिज्ञासा के अभाव में जो पढ़ना जानता है, वह दूसरों को पढ़ाता या पढ़कर सुनाता नहीं। अतएव स्वयंसेवक का तो यह कर्तव्य हुआ कि वह गाँववालो के सामने प्रत्यक्ष उदाहरण रखे, उन्हें पदार्थ-पाठ दे। जो काम गाँववालों से कराना है, उसे वह स्वयं कर बतावे, तभी गाँववाले उस ओर रुजू होंगे। कोई यह शंका न करे कि उस हालत में भी वे काम नहीं करेंगे। फिर भी स्वयंसेवक के लिये धैर्य की जरूरत तो रहेगी ही। यह मानना निराधार होगा कि हमारी दो दिन की सेवा से लोग अपने-आप सब काम करने लगेंगे।

पहले स्वयंसेवक गाँववालों को इकट्ठा करके उन्हें उनका धर्म समझावे। बाद में उन लोगों में से कोई स्वयंसेवक खड़ा हो या न हो, वह खुद सफाई का काम शुरू कर दे। उसे गाँव में से ही फावड़ा, टोकनी, बाल्टी, झाड़ू और कुदाली वगैरह चीजें जुटा लेनी चाहिये। लोगों को इस बात का विश्वास दिला देने पर कि उनकी चीजें उन्हें वापस मिल जायँगी, सम्भव नहीं कि वे देने से इनकार कर दें।

इसके बाद स्वयंसेवक रास्तों और गलियों की जाँच करेगा

और जहाँ मलमूत्र दीख पड़ेगा, उस जगह को साफ कर देगा। मैले को फावड़े की मदद से टोकनी मे भर लेगा और उस स्थान को सूखी मिट्टी से ढँक देगा। जहाँ पेशाब होगा, वहाँ की गीली मिट्टी को फावड़े से उसी टोकनी में भर लेगा और आसपास तथा उस जगह पर दूसरी साफ सूखी मिट्टी फैला देगा। अगर पास ही कूड़ा-करकट होगा, तो उसे झाड़ू से इकट्ठा करके एक ओर ढेर बना देगा और मैले को ठिकाने से पहुँचाने के बाद उसी टोकनी मे कूड़ा-करकट भी भरकर ले जायगा।

यह एक महत्त्व का सवाल है कि मैला कूड़ा-करकट कहाँ डाला जाय। सवाल सफाई से सम्बन्ध रखता है और अर्थपूर्ण है। बाहर—खुले मे—पड़ा हुआ मैला बदबू फैलाता है, उसपर मक्खियाँ बैठती हैं और फिर वेही हमारे शरीरों पर या खाने-पीने की चीजों पर बैठकर रोग के जन्तुओं को चारों ओर फैला देती हैं। अगर हम मक्खियों की इस क्रिया को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखें, तो अवश्य ही जिन मिठाइयों को आज बड़ी तादाद में खाते-पीते हैं, उनको हमेशा के लिये छोड़ दें।

मैला किसानों के लिये सोना है। उसे खेत में डालने से वह सुन्दर खाद का काम देता और खेत की उपजशक्ति को खूब बढ़ाता है। चीनी लोग इस काम में सबसे अधिक चतुर हैं। कहा जाता है कि वे मलमूत्र का सोने के समान संग्रह करते और उससे करोड़ों रुपयों की बचत कर लेते हैं, साथ ही अनेक तरह के रोगों से भी बच जाते हैं। अतएव स्वयंसेवक, किसानों को

यह बात समझावे और जो किसान इजाजत दें उनके खेतों में मलमूत्र वगैर: गाड़ें। अगर कोई किसान अज्ञानवश स्वयंसेवक की स्वच्छता की उपेक्षा करे, तो स्वयंसेवक मैले को घूरे के पास ही कहीं गाड़ दे। इतना कर चुकने पर वह उस कूड़े-करकट के ढेर के पास जाय।

कूड़ा-करकट दो तरह का होता है। एक—खाद के योग्य, जैसे, सागपात के छिलके, डंठल, अनाज, घास वगैरह। दूसरा—कचरा, लकड़ी, पत्थर, पतरी वगैरह। इनमें से जो कूड़ा-करकट खाद के योग्य है, उसे खेत में या जहाँ उसकी खाद इकट्ठी की जा सके, रखना चाहिये, और दूसरे को गड्ढों वगैरह के भरने में लगा देना चाहिये। इस तरह गाँव साफ रहेगा और नंगे पैर चलनेवाले भी बिना किसी खतरे के चल-फिर सकेंगे। कुछ दिनों की मिहनत के बाद अवश्य ही लोग इस काम की कीमत समझने लगेंगे। जब समझेंगे, मदद करने लगेंगे और फिर तो खुद ही यह भार उठा लेंगे।

अगर हर-एक किसान अपने और अपने कुटुम्बियों के मल-मूत्र का खेत के लिये उपयोग करेगा, तो किसीको किसीका बोझ नहीं मालूम पड़ेगा और सब अपनी-अपनी फसल में उत्तरोत्तर उन्नति होते देखेंगे।

रास्ते में पाखाना फिरने की आदत तो होनी ही न चाहिये। खुली जगह में सब किसीके देखते पाखाना फिरना या बच्चों तक को फिराना असभ्यता का चिन्ह है, और इस असभ्यता का भान

तो हमें बना ही रहता है; क्योंकि ऐसे समय जब कोई आ जाता है, तो हम सिर नीचे झुका लेते हैं। अतएव हर-एक गाँव में किसी एक जगह पर सस्ते से सस्ते में पाखाने बनवाने चाहिये। घूरे इस काम में आ सकते हैं। इस तरह एकत्र खाद को किसान आपस में बाँट सकते हैं।

जबतक किसान स्वयं इस ढंग का इन्तजाम न करने लगें तबतक स्वयंसेवक को घूरों की सफाई भी करनी पड़ेगी। रोज़ सबेरे जब गाँववाले घूरे का उपयोग कर चुकें, तब स्वयसेवक किसी नियत समय पर घूरे पर जायँ और तमाम मैले को इकट्ठा करके ऊपर कहे अनुसार उसको ठिकाने पहुँचा दें। अगर खेत न मिले, तो जहाँ-जहाँ मला गाड़ा हो, वहाँ कुछ निशान बना देना चाहिये। इससे रोज-रोज गाड़ते समय सुभीता होगा और किसानों के समझने लगने पर इस एकत्र खाद का ये इस्तेमाल कर सकेंगे।

मैला बहुत गहरे में न गाड़ना चाहिये। पृथ्वी के नौ इंच गहरे भाग में अनेक परोपकारी जन्तु रहते हैं। इस गहराई में उनका काम तमाम मैले को शुद्ध करना और उसे खाद में बदल देना होता है। सूर्य की किरणें भी रामदूत की भाँति अद्भुत सेवा करती हैं। जिसे इस बात की जाँच करनी हो वह स्वयं अनुभव द्वारा कर सकता है। कुछ मैला नौ इंच की गहराई में गाड़ना चाहिये और एक सप्ताह बाद उस जमीन को खोदकर नोट करना चाहिये कि उसमें क्या परिवर्तन हुए हैं। इसी तरह,

उसी मैले का थोड़ा हिस्सा तीन या चार फुट की गहराई में गाड़कर एक सप्ताह बाद उसकी जाँच करनी चाहिये। इससे आँखों देखा अनुभव मिलेगा।

मैले को छिछला गाड़ना चाहिये। मगर साथ ही उसपर इतनी मिट्टी फैला देनी चाहिये कि कुत्ते वगैरह उसे खोद न सकें और उसमें से बदबू फैल न सके। कुत्तों से बचाने के लिये कहीं-कहीं काँटों के झखाड़ रख देना अच्छा है।

मैले को छिछला गाड़ने की बात के साथ यह भी समझ लेना जरूरी है कि मैले के लिये चौरस या आयताकार बड़ा गड्हा होना चाहिये; क्योंकि गड़े हुए मैले पर दुबारा मैला तो डालना है नहीं, और न उसे तुरत ही खोलना है। इसलिये पहले दिन जहाँ मैला गाड़ा हो, उसके पास ही एक दूसरा चौरस गड्हा तैयार कर लेना चाहिये। गड्हे में से निकाली हुई मिट्टी उसीके एक किनारे पड़ी रहनी चाहिये। दूसरे दिन इस गड्हे में मैला डालकर ऊपर से किनारेवाली मिट्टी उसपर ढँक देनी चाहिये और उस जगह को समतल बना देना चाहिये।

इसी तरह हरी भाजी के कचरे को भी खाद तैयार कर लेनी चाहिये, मगर मैले के साथ नहीं, उससे अलग कुछ दूरी पर; क्योंकि मैला और हरी पत्तियों की खाद एक साथ ही नहीं गाड़ी जा सकती। दोनों पर जन्तुओं की क्रिया एक समान नहीं होती। इससे स्वयंसेवक यह तो समझ गये होंगे कि जिस जगह पर वे मैला गाड़ते हैं, वह सदा साफ रहेगी, समतल होगी और अभी

हाल ही मे जुते खेत के समान दीख पड़ेगी।

अब वह कूड़ा बच रहा, जो खाद के काम नही आ सकता। यह कूडा किसी एक गहरे गड़हे में डालना चाहिये, अथवा गाँव के आसपास जो गड़हे पाटते हों, उनमे भर देना चाहिये। यह कूड़ा भी रोज गड़ता रहे और ऊपर की सतह साफ बनी रहे।

इस तरह एक महीने तक काम करने पर बिना ज्यादा मिह-नत के ही गाँव के घूरे मिटकर सुन्दर और साफ बन जायँगे। पाठक समझ गये होंगे कि इसमें पैसे का कोई खर्च नही होता। इस काम के लिये न तो सरकार की मदद चाहिये, न बहुत ज्यादा विज्ञान की ताकत चाहिये। हाँ, स्नेहस्निग्ध स्वयंसेवक जरूर चाहिये। यहाँ यह कहना आवश्यक नहीं कि जो बात मनुष्य के मलमूत्र के लिये है, ठीक वही ढोरों के गोबर और पेशाब के लिये भी है। मूत्र से बढ़कर उत्तम खाद किसानों को और कहाँ मिलेगी?

शिक्षा-प्रचार की आवश्यकता—

शिक्षा है सब काल कल्पलतिका सम न्यारी।
कामद सरस महान सुधा-सिंचित अति प्यारी॥
शिक्षा है वह धरा, बहा जिसपर रस-सोता।
शिक्षा है वह कला, कलित जिससे जग होता॥
है शिक्षा सुरसरिधार वह, जो करती है पूततम।
है शिक्षा वह रवि की किरण, जो हरती है हृदय-तम॥

वास्तव में शिक्षा की बड़ी महिमा है। शिक्षा ही मनुष्य को

वास्तविक मनुष्य बनाती है। शिक्षा ही के द्वारा दुर्लभ मानव-जीवन के कर्त्तव्यों का ज्ञान होता है। किन्तु सच्ची मनुष्यता प्रदान करनेवाली शिक्षा आज-कल हमारे लिये स्वप्न-तुल्य हो गई है। हमारे देश की शिक्षा-प्रणाली बहुत खर्चीली, अस्वाभाविक और पौरुषहीन हो गई है।

गाँवों में शिक्षा का बड़ा अभाव है। शिक्षा के अभाव से ही गाँवों में अनेक प्रकार के अवगुणों ने घर कर लिया है। अतएव देश की भलाई चाहनेवालों का आवश्यक कर्त्तव्य है कि शिक्षा का उपयोग करके गाँवों की दशा सुधारें। कुछ उत्साही और सच्ची लगनवाले लोग यदि गाँवों में शिक्षा-प्रचार करने को ही अपने जीवन का व्रत बना लें, तो बड़ा भारी काम सहज ही निपट सकता है।

है शिक्षा उपयोग यही जीवन-व्रत पालें
जहाँ तिमिर है वहाँ ज्ञान का दीपक बालें
तपी भूमि पर जलद-तुल्य शीतल जल बरसें
पारस बनकर लौह-भूत मानस को परसें॥
अब कर्मक्षेत्र है सामने, कर्म करें आगे बढ़ें।
कमनीय कीर्त्ति से फलित बन, गौरव-गिरिवर पर चढ़ें॥

आज-कल गाँव-गाँव में स्वराज्य की चर्चा है। चारों ओर स्वराज्य की धूम तो है, मगर उसकी नींव को मज़बूत करने की चिन्ता बहुत कम लोगों को है। हमलोग तो कवि की कल्पना से बने हुए गाँव के चित्र को देखकर इतने मस्त हैं कि हमें असली

हालत का पता ही नहीं है। मैं फिर यहाँ जोर देकर कहता हूँ कि आप गाँवों की सच्ची दशा देखने पर कवि की इन पंक्तियों को बड़े खेद और आश्चर्य से देखेंगे—

यहाँ घूस का नाम नहीं है, नहीं कपट-पूरित व्यवहार।
ईश्वर की साक्षी दे करते, जीत-हार सब विधि-अनुसार॥
यहाँ न उड़ती बुरी मोरियों से दुर्गन्ध शहर की भाँति।
और न पैदा होती प्यारे! भाँति-भाँति रोगों की पाँति॥
अहा! यहाँ तो उत्तम कवि हैं, शिक्षित जन भी हैं दो-चार।
बना हुआ है एक मदरसा, करने को शिक्षा-विस्तार॥

किन्तु दो-चार शिक्षित जनों और एक मदरसे के होने से ही गाँव की दशा नहीं सुधर सकती। शिक्षित जन यदि कुछ काम करनेवाले हों और मदरसा भी अगर उपयोगी शिक्षा देनेवाला हो, तो जरूर कुछ लाभ हो सकता है। शिक्षित जन तो देहातों में कितने पड़े हैं, पर वे गाँववालों को यह नहीं बताते कि वे लोग अपनी शिक्षा और अधिकार-रक्षा का प्रयत्न या प्रबन्ध कैसे करें—व्यवसाय करके किस रीति से अधिक लाभ उठावें—परस्पर सेवा-भाव से किस तरह गाँव की कठिनाइयों को हल करें, मेहनत-मजूरी के बाद किस तरह के विनोद से अपना मन बह-लावें। यदि पढ़े-लिखे लोग इन बातों को देहातों में फैलाने का उद्योग करते, तो अबतक बहुत कुछ ग्राम-सुधार हो गया होता। पर अब यदि हम चाहते हैं कि स्वराज्य की नींव मजबूत हो, उसकी इमारत टिकाऊ बने, तो हमें चाहिये कि हम तुरन्त ग्राम-सुधार में

लग जायँ। हमको चाहिये कि हम हरएक गाँव को शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, सेवा और विनोद—इन पाँचो कामों के लिये ऐसा तैयार करें कि विना किसी बाहरी मदद के हरएक गाँव अपने इन पाँचों कामो को सम्पन्न कर ले और पूरा स्वावलम्बी बन जाय, साथ ही वह जरूरत पड़ने पर दूसरे गाँवों की सहायता भी कर सके, हरएक गाँव आदर्श बन जाय और किसी दूसरे गाँव का मोहताज न रहे। यही उनकी प्राचीन स्थिति थी। अब हम उन्हे कम-से-कम पहले तो उस प्राचीन सुखी परिस्थिति में पहुँचा दें जिससे उनका पतन हो गया है। उस परिस्थिति तक पहुँचने के बाद वे आगे उन्नति के लिये पग बढ़ावेंगे।

गाँवों का स्थायी संघटन और सुधार तो गाँव के रहनेवाले ही कर सकते हैं। परन्तु वर्त्तमान दशा ऐसी शोचनीय हो गयी है कि अभी बाहरी स्वयंसेवकों को गाँवों में जाकर उन्हें शिक्षा देना और उनके बीच से ही उनके लिये नेता पैदा करना होगा। और इन स्वयंसेवकों' के लिये भी 'आतुर शिक्षालय' की जरूरत है। गाँवो को ऐसे रूप में संघटित करने के लिये कि वे अपनी पहिली स्थिति को पहुँच जायँ, स्वयंसेवकों को जल्द-से-जल्द सिखाकर तैयार करने की जरूरत है।

जो स्वयंसेवक गाँवों में इस महत्व के काम के लिये भेजे जायँ उनकी पात्रता पर पूरा विचार कर लेना होगा। यह बात जाँच लेनी होगी कि—क्या स्वयंसेवक गाँव के लोगों के साथ मन, वचन और कर्म से पूरी सहानुभूति रखता है? क्या वह

गाँववालों की तरह आधे पेट मोटा अन्न खाकर गुजर करने को तैयार है? क्या वह बिल्कुल सादा जीवन और निर्दोष ब्रह्मचर्य कम-से-कम उतने काल के लिये पालन करने को तैयार है जितने दिन उसे ग्राम-संगठनवाली तपस्या में लग जायँगे? जिन गाँवों में वह भेजा जाता है वहाँ की देहाती बोली क्या वह अच्छी तरह जानता है? क्या उसने खद्दर के कामों में अपने को काफी होशियार बना रखा है? क्या वह कष्ट का जीवन बिताने का आदी है? क्या वह इस बात के लिये तैयार है कि गाँव की गन्दगी अपने हाथ से बिना झिझक के साफ करे? क्या वह राष्ट्रीय शिक्षा के तत्वों को जानता है? क्या वह किसानों की जरूरतों को खूब समझता है? क्या वह अपने रूप, शील रहन-सहन से गाँववालों को अपनी ओर खींच सकेगा? क्या वह तुलसी-कृत रामचरित-मानस पढ़ने, समझने और समझाने का अभ्यास रखता है? क्या वह तात्कालिक उपचारों का व्यावहारिक ज्ञान रखता है? क्या वह रोगी-सेवा में चतुर और शिक्षित है? क्या वह चरविद्या में निपुण है? क्या वह पंचायतों के संघटन का तत्व समझता है? क्या वह देहाती-खेलों और व्यायामों का शौकीन है? क्या उसने कृषि-विद्या के साहित्य का परिशीलन किया है? क्या वह वर्तमान अर्थ-नीति, राजनीति और समाजनीति समझे हुए है? क्या वह इतना धैर्यवान् है कि कई दिन भूख का कष्ट सहकर और बारम्बार तरह-तरह की यातनाएँ सहकर भी सेवा-कर्म में अविचलित रूप से डटा रहेगा?

इस तरह के बड़े महत्व के प्रश्न हैं, जिनको कसौटी पर कस-कर स्वयंसेवक की जाँच करनी होगी और जब वह सब तरह से योग्य पाया जाय, तभी उसे इस भारी काम के ऊपर भेजना उचित होगा।

यह योग्यता कैसे आवेगी? बिना शिक्षा पाये हुए कोई स्वयंसेवक उपयोगी नहीं होते। हमारे पास इतना समय भी नहीं है कि हम ग्राम-सुधार करनेवाले स्वयंसेवको को बरस-छः महीना बैठाकर शिक्षा दें। इस ग्राम-सुधार-कार्य के लिये आजकल सबसे उपयुक्त पात्र कालेजों के लड़के हैं। कालेजों के लड़कों के सिवा दूसरे योग्य स्वयंसेवक हमको यथेष्ट संख्या में नहीं मिल सकते। अगर दस-दस गाँव के सुधार के लिये हमें एक-एक स्वयंसेवक रखना हो तो सत्तर हजार स्वयंसेवक चाहिये। सारे भारत में भी कालेजों के लड़के इतनी बड़ी संख्या में हमें नहीं मिल सकते। इसलिये बहुत किफायत से हम एक-एक विद्यार्थी को बीस-बीस तीस-तीस गाँव के सुधार के लिये रख सकेंगे। हरएक प्रान्त के विद्यार्थियों को उन-उन प्रान्तों में बँट जाना चाहिये, जिनपर उनका अधिकार है। हर प्रान्त को चाहिये कि अपने प्रान्त के लड़कों को ग्राम-सुधार की शिक्षा देने के लिए 'आतुर-शिक्षालय' खोल दें, जिसमें कुल पन्द्रह दिनों की शिक्षा देकर स्वयंसेवक तैयार किये जायँ और गावों में बँट जायँ। इन पन्द्रह दिनों की शिक्षा में ग्राम-सुधार के पंडित नहीं तैयार होंगे। इस विधि से केवल "आतुर सेवक"

बन सकेंगे, जो ग्राम-संघटन के काम को एक अच्छी विधि से आरम्भ कर दें। फिर जो रास्ता वह दिखा देंगे, उसी रास्ते से गाँववाले आप अपना संघटन कर लेंगे।

इस 'आतुर-शिक्षालय' मे नीचे लिखे विषयो की शिक्षा देने का प्रबन्ध करना पड़ेगा-(१) स्वयंसेवक की पात्रता। (२) ओटाई, धुनाई, कताई आदि में दक्षता। (३) पशुपालन। (४) कृषिविद्या। (५) चरविद्या। (६) तात्कालिक उपचार। (७) रोगी-सेवा। (८) स्वास्थ्यरक्षा। (९) वर्त्तमान राजनीति, समाजनीति और अर्थ-नीति। (१०) ग्राम-वास्तु-विज्ञान। (११) पंचायतों का संघटन। (१२) गाँवों की और किसानों की वर्त्तमान दुर्दशा। (१३) आपत्-काल में प्रजा की रक्षा।

इन तेरह विषयों में से पात्रता और खद्दर का काम, तात्कालिक उपचार, चर-विद्या और रोगी-सेवा—ये पाँच विषय ऐसे हैं जिनकी व्यावहारिक शिक्षा होनी चाहिये। शेष आठ विषय ऐसे हैं जो अध्ययन और अध्यापन से सीखे और समझे जा सकेंगे। इनके लिये इन्हीं पन्द्रह दिनों में आठ-आठ घंटे रोज शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा, जिनमें से चार घण्टे नित्य व्यावहारिक शिक्षा में लगाना आवश्यक होगा।

इन आतुर-सेवकों की जीविका का उन दिनो के लिये, जब तक कि वे ग्राम-संघटन का काम करेंगे, ग्रामवाले ही बड़ी खुशी से बन्दोबस्त करेंगे। परन्तु स्वयंसेवकों को उचित नहीं है कि अपनी जीविका के लिये ग्राम से ही कुछ धन प्राप्त करें। वे गाँव के

बच्चों के पढ़ाने के लिये अपने आश्रम में पाठशाला खोल लें, और रात मे भी बड़ो को पढ़ाने के लिये रात्रि-पाठशाला खोलें। इस तरह दिन में और रात में पढ़ाकर वे काफी जीविका के अधिकारी हो जायँगे। वे सुभीते के साथ और-और तरह की मजूरी और मोटा काम करके अगर अपनी जीविका कर लें, तो मुदर्रिसी से ज्यादा अच्छा होगा, क्योंकि गाँववाले अधिकतर मोटे काम से ही रूखी-सूखी रोटी कमाते हैं। इन खद्दर के सिपाहियो को देश के ऊपर अपने को भार प्रतीत न कराना चाहिये।

संघटन करनेवाला जब ठीक शिक्षा पाकर अपने को सुपात्र बना ले, तब उसे किसी विशेष चुने हुए गाँव में जाकर अपना केन्द्र बनाना होगा। इसे आश्रम, किसानदास की कुटिया, संघटन-मन्दिर या सुधारशाला आदि चाहे जो नाम दिया जाय, पर यह ऐसी खुली जगह में हो जहाँ गाँववाले बिना किसी हिचक के इकट्ठे हो सकें। संगठन और सुधार करनेवाले को ऐसा स्थान दिलाने में गाँव के मुखिया, जिले या तहसील के नेता अथवा जमींदार को न केवल मदद ही करनी चाहिये, बल्कि पहले ही गाँव-गाँव और घर-घर घूमकर लोगों से अलग-अलग परिचय करा देना चाहिये और फिर गाँवों में ढिंढोरा पिटवाकर उस स्थान पर पहले सब लोगों को इकट्ठा कराकर उस कार्यकर्त्ता से पूरा परिचय करा देना चाहिये।

उसी सभा में सब लोगों को मोटी तौर पर यह बतला देना

चाहिये कि यह आश्रम या कुटिया किस लिये बनायी जाती है। उन्हें समझाना चाहिये कि किसान की बेकारी और बेरोजगारी मिटाना, उसकी दरिद्रता को दूर करना, करजे और मुकदमेबाजी के पाप से छुड़ाना, नशा और उड़ाऊपन दूर करना, गोरक्षा करना, खरचे घटाना, जमीदार और असामी में मेल और सद्भाव पैदा करना, स्वार्थियों की लूट के चंगुल से उन्हें छुड़ाना, सफाई और सुख और स्वच्छन्दता से जीवन बिताने के उपाय कराना तथा गाँव को सब तरह से स्वावलम्बी बनाकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करना और उनकी शिक्षा, रक्षा, व्यवसाय, विनोद और सेवा के सभी साधनों को पूरा करा देना, उस आश्रम का उद्देश्य होगा। इन उद्देश्यों का पालन सदा होता रहे, इसी दृष्टि से गाँव का नेता तैयार करना, और गाँववालों को शिक्षा देना आश्रम का मुख्य कर्त्तव्य होगा।

सब गाँवों की परिस्थिति एक-सी नहीं होती। जरूरतें भी अलग-अलग होती हैं। तो भी भारतीय गाँवों के तीन बड़े काम ऐसे जरूरी हैं कि इन्हीं को लेकर हर संघटन-कर्त्ता काम शुरू कर सकता है। वह है शिक्षा, खद्दर और सफाई।

आश्रम में शिक्षा के लिये पाठशाला तो तुरत ही खुल जानी चाहिये। गाँव के थोड़े-बहुत पढ़े-लिखे ऐसे आदमी मिल ही जायँगे जो सुभीते के समय आश्रम में आकर लड़कों को पढ़ा दिया करें। ऐसा कोई न मिले तो छोटे पैमाने पर संघटन-कर्त्ता ही यह काम कर लेगा। मिलने पर तो अच्छी खासी पाठशाला

बन ही जायगी। इसमें पढ़ना-लिखना और गिनती, पहाड़े, जबानी हिसाब भर सिखाना काफी होगा छोटे लड़के जैसे पढ़ते हैं, वैसे ही बड़ों के लिये रात्रि-पाठशाला भी आश्रम में घंटे-डेढ़-घंटे के लिये होनी चाहिये।

इस शिक्षा के काम से ही मिला-जुला काम खद्दर का है। परन्तु हम उसे अलग ही गिनते हैं, क्योंकि इस घड़ी इसका महत्व बहुत भारी है। रात्रि-पाठशाला और बाल-पाठशाला मे पढ़ाई के समय अथवा किसी सुभीते के समय ओटने, धुनने, कातने की भी शिक्षा होनी चाहिये। इस काम के साथ ही साथ विदेशी कपड़ों के त्याग और खद्दर के अपनाने का महत्व भी समझाना चाहिये। गाँव में इस तरह खद्दर-प्रचार और विदेशी-वस्त्र-बहिष्कार के काम की नींव डालनी चाहिये कि धीरे-धीरे सारा गाँव खद्दरकारी और खद्दरधारी हो जाय और विदेशी कपड़े का एक चिट भी गाँव में कहीं ढूँढ़े न मिले। इस काम में बहुत तरक्की की गुंजाइश है।

सफाई का काम तीसरा है, जिसका आरम्भ तुरत ही आश्रम से होना चाहिये। बदन की सफाई, कपड़े की सफाई, कमरे के भीतरी वस्तुओं की सफाई, खर्च होनेवाले और बिक्री के लिये रक्खे हुए अन्न की सफाई, और ठीक-ठीक रक्षापूर्वक घर-उसार तथा बरतन-भाँड़े की सफाई, कमरों की दसों दिशाओं में सफाई, आँगन-ओसारे-दहलीज की सफाई, द्वार की सफाई, नालियों और घरों की सफाई, गलियों-सड़कों और मैदानों की

सफाई, गोशालाओं और मवेशी-खानों की सफाई, ढारों की सफाई और चौपालों की सफाई, खेतों और खलिहानो की सफाई; निदान सारे गाँव की सफाई केवल सिखलानी नहीं है, बल्कि गाँव के लोगों की सलाह से दिन-घड़ी ठहराकर, घरों में नित्य और सार्वजनिक स्थानों में अठवारे में कम-से-कम एक वार, संघटन-कर्ता स्वयं अपने हाथ लगाकर करे और करावे। खेतों की भलाई के लिये चलती-फिरती टट्टिया बनवावे और गोबर और मूत्रादि रक्षा के भी उपाय करे जिससे सफाई भी रहे और खाद भी नष्ट न हो जाय।

तीनों काम चलाने और आगे बढ़ाने में संघटनकर्ता को ही अगुआ बनना पड़ेगा। उसीको देखकर सारा गाँव लग जायगा। उसे नीच-से-नीच काम अपने हाथ से करके प्रत्यक्ष दिखाना होगा कि जिस काम से शरीर, वचन या मन को सच्चा सुख हो वह काम नीच नहीं हो सकता, चाहे अपने लिये हो, चाहे औरों के लिये हो। पराये के लिये की हुई सेवा अपने लिये की हुई से बहुत बढ़कर है। सुधारक को गाँव मे नीच सेवक बनकर रहना होगा और सुकरात या महात्मा या रईस बनकर नहीं। सुकरात या महात्मा बननेवाला केवल "कह सुनाता है" और दूसरों से अच्छी तरह कराने की कोशिश करता है, परन्तु आप कुछ करके नहीं दिखाता, और रईस बननेवाला औरों से सेवा लेता है। परन्तु सच्चा महात्मा और रईस तो वह है जो औरों को सबसे अधिक सुख देता है और अपने लिये किसीसे सेवा

लेने की नीयत नहीं रखता। काम तो सेवक ही कर सकता है; सुकरात, रईस या महात्मा नहीं। इसीलिये सुधारक किसानों का दास या किसान-दास होकर गाँव में रहेगा और कहने की जगह "कर दिखायेगा"। वह "सुकरात" न होगा बल्कि "सुकरत" होगा। यह बात ही सुधारक को अच्छी तरह मन में बैठा लेनी चाहिये।

इन तीनों कामों के साथ-ही-साथ उसे एक चौथा काम भी आरम्भ से करने लगना चाहिये। इसे हमने तीनों कामों के साथ नहीं गिनाया, क्योंकि यह वस्तुतः काम नहीं है, खेल है—आराम है। शाम को जब सब लोग काम से छुट्टी पाते हैं, आश्रम में इकट्ठे हों। वहाँ भाँति-भाँति के खेल, गाना-बजाना, कथा-कहानी हुआ करें। अखबार सुनाये जायँ, देश-विदेश की बातें बताई जायँ। मनबहलाव की वह सब बातें की जायँ, जिनसे मन, वचन, कर्म और चरित्र को कोई हानि न पहुँचे और भरसक लाभ अवश्य ही हो। मनबहलाव के लिये ही तमाखू, सुरती, सुँघनी, गाँजा, चरस, भाँग, ताड़ी, अफीम, शराब आदि चीजों का सेवन करके लोग तन, मन, धन तीनों को बरबाद करते हैं। इनसे हटाकर खेल, व्यायाम, कहानी, पहेली, बुझौवल, गाना-बजाना, रामायण और महाभारत की कथाएँ, अखबार का पढ़ना और सुनना आदि में लोगों को लगा देना जरूरी है। इसी समय चरखा कातना, रस्सी बटना आदि हल्के मन-बहलाववाले काम भी हो सकते हैं। जब लोगों का जी नशे से हटकर इन मनबहलावों में लगने लगे, तभी सुधारक को सम-

झना चाहिये कि हमें सफलता हो रही है। मन-बहलाव के इन सभी कामों में उसे खुद शरीक होना चाहिये। साथ ही आश्रम में आकर कोई नशा सेवन न करे। हो सके तो वहाँ आकर गाँव के लोग, जो मन-बहलाव के लिये इकट्ठे हों, रस पीयें या गुड़ खायें, जलपान करें, ताज़े हों। बडे-बूढ़े जो चिलम के आदी हैं, वे तो फिर भी अपने घरबार या गाँव में कहीं और जगह चिलम पियेंगे ही, तुरन्त छोड़ देना बहुत कठिन बात है। परन्तु आश्रम तो नमूने की जगह होगी। नौजवानों को तो नशे की बुरी बात छोड़नी ही पड़ेगी। उनके पूरे सुधार का अर्थ है भावी गाँव का सुधार।

यह शुरू के काम हैं। धीरे-धीरे जब आश्रम गाँव भर के हृदय में अपना स्थान कर लेगा, तब काम आगे अपने-आप बढ़ेगा। फिर तो सुधारक भाँति-भाँति की पंचायतों का और किसान-सभाओं का संघटन करेगा गाँव के सच्चे नेता का पता लगाकर उसे अपना काम सिखावेगा; बेगारी और मुकदमेबाजी का नाश करेगा; किसानों को उनके अधिकार समझा देगा; मजूर, किसान, जमींदार और साहूकारों में परस्पर मेल और न्याय-भाव उपजावेगा, खेती में सुधार करावेगा; गो-पालन सिखावेगा, गाँव की सारी कमियो को पूरा करावेगा। बाजार, मेला, उत्सव, त्योहार आदि को अधिक उपयोगी बनावेगा; स्त्रियों को शिक्षा दिलावेगा, गाँव के अनेक रोजगारों की बढ़ती करावेगा; गाँव की विविध जातियों और धर्मों में मेल रखावेगा; आपत्काल और आपद्धर्म समझावेगा।

ग्राम-संघटन का मुख्य उद्देश्य यही होना चाहिये कि गाँव के नेताओं का निर्माण हो और फिर हरएक गाँव स्वावलम्बी बन जाय। इसके लिये सुधारक या संघटनकर्ता को जितना ऊँचा, जितना स्वार्थत्यागी, जितना समझदार, अनुभवी और कार्यक्षम होना चाहिये उतना 'आतुर-शिक्षालय' से होना बहुत कठिन अवश्य है। परन्तु हमें अपने नौजवानों से कभी निराश न होना चाहिये। देश की आवश्यकता उन्हें ऊँचा, स्वार्थत्यागी, समझदार, अनुभवी और कार्यक्षम बना डालेगी और वे थोड़े काल में ही युगों का काम कर सकेंगे।

गाँवों का संघटन और सुधार भारत देश का संघटन और सुधार है। हमने किसानों का संघटन कर लिया, तो एक प्रकार से सारे देश का संघटन हो गया। शहरों के संघटन का सवाल बहुत सीधा है, म्युनिसिपलिटी सब जगह है। उसमें केवल थोड़े-से सुधार से काम चल सकता है। जिले के केन्द्रों में कचहरियाँ, पुलिस का थाना या कोतवाली, जेल आदि बड़े दफ्तर होते हैं। इनमें बहुत थोड़े सुधार की जरूरत है। सारे भारत को इस समय केवल ग्राम-सुधार चाहिये।

शिक्षा-प्रचार करने का अभिप्राय केवल यही नहीं है कि लोगों को अक्षर-ज्ञान सिखा दिया जाय, या रामायण और सुख-सागर तथा प्रेमसागर और विश्रामसागर पढ़ने के योग्य बना दिया जाय, या योगवाशिष्ठ और अर्जुन-गीता को टटोलने की योग्यता करा दी जाय, या चन्द्रकान्ता और तोता-मैना तथा

बैतालपचीसी और सिंहासनबतीसी के पढ़ने की लयाकत हासिल करा दी जाय। केवल हिसाब-किताब, बही-खाता और चिट्ठी-पत्री की शिक्षा से ही काम नहीं बनेगा। इन बातों की शिक्षा तो आसानी से दी जा सकती है। थोड़े ही दिनों में इस तरह की शिक्षा प्राप्त हो जाती है। किन्तु आवश्यकता उस शिक्षा की है जिससे लोगों को यह मालूम हो जाय कि मकान कैसा बनाना चाहिये, गाय भैंस पालकर दूध-घी का व्यवसाय कैसे करना चाहिये, किस रीति से खेती करके अधिक-से-अधिक लाभ उठाया जा सकता है, अपने मानवोचित अधिकारों की रक्षा कैसे की जा सकती है, सुखमय जीवन बिताने के क्या-क्या साधन हैं और वे किस तरह प्राप्त हो सकते हैं, स्वास्थ्य-रक्षा के [illegible] किया जाय, तो समाज [illegible] जानने की जरूरत है, स्वच्छता के नियमों का पालन [illegible] रीति से करना चाहिये, पंचायत-सभा को किस प्रकार चलाना चाहिये[?], वोट देने में किन बातों पर ध्यान रखना जरूरी है, समाज में शिष्टाचार के कितने ऐसे नियम हैं जिनसे मनुष्यता और सभ्यता की रक्षा हो सकती है, छोटे-बड़े में परस्पर कैसा व्यवहार रहना उचित है, पारिवारिक चिकित्सा के लिये कैसी दवाओं के सस्ते नुस्खे जानने चाहिये, पड़ोसी और अतिथि के साथ कैसा बरताव होना चाहिये, स्त्रियों के प्रति किस तरह का आचरण करना चाहिये, लड़के-लड़की का ब्याह कब और कैसे करना चाहिये, रोगी की सेवा-सुश्रूषा कैसे की जानी चाहिये, देश और समाज तथा मातृभाषा के प्रति

मनुष्य के क्या कर्त्तव्य हैं—इत्यादि। इसी तरह की बहुत-सी छोटी-मोटी बातें हैं, जिनकी जानकारी केवल पुस्तकों से ही नहीं हो सकती। डाकखाना, तार, रेल, अख़बार, अदालत आदि के नियमों की जानकारी न होने से भी बहुतेरे लोगों को अनेक प्रकार की हानि सहनी पड़ती है और उनकी अज्ञानता से दूसरों का भी बड़ा अहित हो जाता है। इसलिये जनता में इन सारी बातों की शिक्षा का प्रचार होना चाहिये। पुस्तकी शिक्षा के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है। शिक्षा के विषय में हमने दूसरे खंड में एक स्वतन्त्र अध्याय ही लिखा है, इसलिये अब यहाँ ग्राम-सुधार-सम्बन्धी अन्य बातों पर प्रकाश डालना उचित है।

विष्णु-चुटकी या मुठिया—

हमारे देश की यह प्राचीन प्रथा है कि प्रत्येक गृहस्थ अपनी प्रति-दिन की भोजन-सामग्री से एक-एक मुट्ठी अन्न निकालकर मिट्टी के कोरे बरतन में रखता जाता था और महीने के अन्तिम दिन वह अन्न सुपात्र को दान कर देता था। आज भी कुछ हिन्दू-घरों में यह प्रथा है; किन्तु देहाती परिवारों में यह अन्न अब पुरोहितजी को दे दिया जाता है। कहीं-कहीं यह अन्न देश की सेवा करनेवालों को भी दिया जाता है। परन्तु यह प्रथा निर्जीव हो गई। यदि इसका प्रचार किया जाय और प्रत्येक गृहस्थ, चाहे वह शहर का रहने वाला हो या देहात का—प्रतिदिन की भोजन-सामग्री से एक-एक मुट्ठी अन्न निकालकर जमा करता

जाय, तो घर-घर के मुट्ठी-भर अन्न से एक बहुत बड़ी संस्था चलाई जा सकती है। गाँवों और शहरों में कितनी ही विधवाएँ असहाय होकर कलप रही हैं, कितने ही अनाथ बच्चे दर-दर भीख माँगते हुए विधर्मी हो जाते हैं, कितने ही मन्दिर और देवालय टूट-फूट कर कुत्तों और चमगादड़ों के अड्डे बन जाते हैं, कितने ही अन्धे और लँगड़े-लूले तथा अपाहिज पेट के कष्ट से जीते ही जी यमयातना सहते हैं, कितनी ही संस्थाएँ सहायता के अभाव में नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं; पर हम लोग खुली आँखों से तमाशा देखते रहते हैं! यदि हर महीने में या हर सप्ताह में घर-घर की मुठिया बटोरकर एक जगह जमा की जाय और उससे विधवाओं तथा अनाथ बालक-बालिकाओं के भरण-पोषण और शिक्षा का प्रबन्ध किया जाय, तो समाज के कलंक और कष्ट बहुत अंश तक मिट जा सकते हैं। शहरों में तो धनी और दानी सेठों की कृपा से धर्मशालाएँ भी बन जाती हैं, गोरक्षिणी संस्थाएँ भी खुल जाती हैं, विधवाश्रम और अनाथाश्रम भी बन जाते हैं, मन्दिर-मठ आदि भी सुदृढ़ बने रहते हैं; पर देहातों में कोई ऐसा माई का लाल नहीं निकलता जो परोपकार में धन लगावे। अगर कोई भाग्यवान वहाँ ऐसा निकलता भी है, तो उसको सहायक नहीं मिलते। इसलिये देहातों में संघशक्ति पैदा करने के लिये, परोपकार के कामों में सब लोगों की सम्मिलित शक्ति को केन्द्रीभूत करने के लिये, मुठिया की प्रथा बहुत ही अच्छी है। मुठिया के अन्न से गाँवों में निराधार विधवाओं और दीन हीन परिवारों की

सहायता की जा सकती है, गाँव की पाठशाला और गोशाला को भी आश्रय दिया जा सकता है, टूटे-फूटे मन्दिरों और कुँओं तथा तालाबों की मरम्मत कराई जा सकती है, गरीबों के लिये दवा-खाना खोला जा सकता है और पुस्तकालय तथा वाचनालय भी मजे में चलाये जा सकते हैं। अगर हल पीछे एक-एक पसेरी अन्न खलिहान में ही निकालकर एक जगह जमा कर दिया जाय, जैसा कि आज भी कहीं-कहीं मठ-मन्दिरों के लिये 'रामदाना' निकाला जाता है, तो वह भी मुठिया के अन्न में मिलकर गाँव के सुधार में बड़ी सहायता पहुँचा सकता है। जहाँ-कहीं यह प्रथा आजकल प्रचलित भी है, वहाँ यह देखने में आता है कि संचय किये हुए अन्न का सदुपयोग नहीं होता। बैठे-ठाले साधुओं और महन्तों को अगर रामदाना दिया भी जाय, तो उनसे ग्राम-सुधार का काम भी जरूर लिया जाय। यदि हमारे साधु-सन्त और महन्त हमारी भलाई के लिये हाथ-पैर हिलाने को तैयार नहीं हैं, तो हमें भी उनसे हाथ जोड़कर नम्रता से कह देना चाहिये कि हमारे पास मुफ्त खाने को अन्न भी नहीं है। इस बात की सावधानी रखनी चाहिये कि मुठिया या रामदाना के अन्न से हट्टे-कट्टे भिखमंगों को भीख न दी जाय, मंगन साधुओं और रमता फेरीवालों को तीर्थाटन या यज्ञ या घाट या मन्दिर के लिये चन्दा न दिया जाय; बल्कि सच्चे कंगालों और भूखे गरीबों को ही प्राणरक्षा-भर को अन्न दिया जाय, क्योंकि गाँव-वाले अगर अपने गाँव की आवश्यकताओं की पूर्त्ति न करके

खुले आम खैरात बाँटने लगेंगे, तो उनकी परिमित शक्ति का दुरुपयोग होगा—वे कुछ न कर सकेंगे। पहले घर में दीया जलाकर मसजिद में दीया जलाना चाहिये—यह कहावत हमेशा ध्यान में रहे। मुठिया का एक-एक दाना हीरे की कनी के बराबर समझा जाना चाहिये। वह अन्न-राशि एक प्रकार की सार्वजनिक थाती समझी जाय। उसको किसी सुरक्षित स्थान में रखकर गाँव के मुखिया या सरपच की आज्ञा से उचित कार्य में खर्च किया जाय। उसके आमद-खर्च का हिसाब ठीठ-ठीक और साफ-साफ़ बही-खाते में लिखा जाय। यदि गाँव-गाँव मे इस तरह का सङ्गठन हो, तो फिर कोई भी गाँव सुधरे विना या स्वावलम्बी हुए विना नहीं रह सकता।

प्रेम-मंत्र

चढ़ पहाड़ पर यही पुकारो, मैदानों में यही उचारो।
घृणा-द्वेष सब दूर धरेंगे, सबसे मिल-मिल प्रेम करेंगे॥१॥

प्रेम-फ़ौज का साज सजाकर, प्रेम-दुंदुभी मधुर बजाकर।
सहमत हो सब काम करेंगे, भारत में आनन्द भरेंगे॥२॥

दिन में निशि में सभी समय में, मस्तक में औ मृदुल हृदय में।
यह विचार मित्रों के भरना, पारस्परिक द्वेष परिहरना॥३॥

द्वेष-भाव में आग लगाकर, झूठ और अन्याय भगाकर।
सबपर प्रेम-वारि ढारेंगे, भारत के सुकार्य सारेंगे॥४॥

जल में थल में और पवन में, हिन्दू-गण में और यवन में।
फैला दो विचार शुभ ऐसा, हममें तुममें अन्तर कैसा ॥५॥
भाई! है घर एक हमारा, भाई बनकर करो गुजारा।
तब सबके सब कार्य सरेंगे, भारत में सुख-चैन भरेंगे ॥६॥
लोभ-क्रोध को मार भगाओ, वैर-वाद में आग लगाओ।
प्रेम-राज्य जग मे फैलाओ, प्रेम-प्रेम की धूम मचाओ ॥७॥
भारत का जो भला विचारो, यह सिद्धान्त हृदय में धारो।
प्रेम-मन्त्र जिसने मन धारा, उसने विजय किया जग सारा ॥८॥
प्रेम-रज्जु सिंहों को बाँधे, प्रेम-मंत्र सब कारज साधे।
प्रेम-आँच पत्थर पिघलावे, प्रेम-वायु ब्रह्माण्ड हिलावे ॥९॥
प्रेम-चोट हीरे को फोड़े, प्रेम-गोंद टूटे को जोड़े।
हिन्दू-मुसलमान ईसाई, चखो परस्पर प्रेम-मिठाई ॥१०

महात्माओं के उपदेश

जिस ईश्वर की दया से हमको भाँति-भाँति के उत्तमोत्त पदार्थ प्राप्त होते हैं, उसे सुमिरन करते रहना हर हालत में उचि है। ईश्वर के कर-कमलों से हमको कोटिशः सुख प्राप्त होते हैं; अतएव यदि कुछ क्लेश भी हो तो हम उससे मुँह क्यों मोड़ें?

जिसका बाप नहीं उसके सिर पर छाया नहीं। जिसका भाई नहीं उसकी भुजा का बल नहीं। जिसके लड़का नहीं उसके हाथ में वृद्धावस्था की लकड़ी नहीं। जिसकी स्त्री नहीं उसको शरीर का सुख नहीं। जिसके पास कुछ नहीं उसको कोई चिन्ता नहीं।

संसार में धन पाँच प्रकार का होता है—(१) सुन्दरता, (२) शारीरिक बल, (३) विद्या, (४) रुपया-पैसा, (५) सन्तान। वह समय जबतक मनुष्य को इनकी कामना होनी चाहिये, दस-दस वर्ष उत्तरोत्तर बढ़ाकर मतिमानों ने नियत किया है। अर्थात् जो २० वर्ष की अवस्था तक सुन्दर न निकला, फिर आशा न रक्खे। जो तीस वर्ष की अवस्था तक बलवान न हुआ, तो फिर क्या होगा। ऐसे ही, चालीस वर्ष की अवस्था तक विद्या की चाह, पचास वर्ष की अवस्था तक धन की कामना, और साठ वर्ष की अवस्था तक सन्तान की कामना उचित समझी गई है।

आयु बढ़ाना चाहे तो भोग कम करे। बीमार न पड़ना चाहे तो पेट भरकर न खाये और छाती की सदा रक्षा करे। प्रतिष्ठा के साथ रहना चाहे तो ऋण न ले और किसीसे याचना न करे। जो मुख से कहे वही हो, ऐसा चाहे तो झूठ न बोले। दुनिया का सुख चाहे तो परिश्रम करके विद्या पढ़े। चाहे कि हमारा कोई शत्रु न हो तो क्रोध न करे। संसार में सबका मित्र बनना चाहे तो सत्य किन्तु मीठा वचन बोले। अपनी आँख और जिह्वा को निरन्तर अपने वश में रक्खे, और अपना शरीर पवित्र रक्खे।

प्रभु-प्रार्थना

चाँद औ सूरज गगन में घूमते हैं रात-दिन।
तेज औ तम से, दिशा होती है उजली औ मलिन॥
वायु बहती है, घटा उठती है, जलती है अगिन।

है अचानक वज्र से बढ़कर कठिन ॥
जिस अलौकिक देव के अनुकूल केलि-कलाप-बल।
वह करे सब काल में संसार का मंगल सकल ॥
है कहीं लाखों-करोड़ो कोस में जल ही भरा।
है करोड़ो मील मे फैली कहीं सूखी धरा ॥
हैं कहीं पर्वत जमाये दूर तक अपना परा।
देख पड़ता है कहीं मैदान कोसों तक हरा ॥
बह रही नदियाँ कहीं, हैं गिर रहे झरने कहीं।
किस जगह उसकी हमें महिमा दिखाती है नहीं ? ॥
जब जनमने का नहीं था नाम भी हमने लिया।
था तभी तैयार उसने दूध का कलसा किया ॥
दूर की बहु आपदाएँ, बुद्धि-बल-वैभव दिया।
की भलाई की न जानें और भी कितनी क्रिया ॥
तीन पन बीते मगर तब भी तनिक चेते नहीं ॥
हैं पतित ऐसे कि उसका नाम तक लेते नहीं ॥
हे प्रभो ! है भेद तेरा वेद भी पाता नहीं।
शेष, शिव, सनकादि को भी अन्त दिखलाता नहीं ॥
क्या अजब है जो हमें गाने सुयश आता नहीं।
व्योम-तल पर चींटियों का जी कभी जाता नहीं।
मन, मनाने के लिये जो कुछ ढिठाई की गई।
कीजिये उसको क्षमा, है बात वह अनुचित हुई ॥४